श्रीजवाहिर स्मारक साहित्य
का
प्रथम पुष्प

(श्री मज्जैनाचार्य पूज्य श्रीजवाहिराचार्य के व्याख्यानों में से)

★

जवाहिर-किरणावली

की

किरण ७ वीं

सम्पादक
(श्रीजवाहिर स्मारक फंड तरफ से)
पं. पूर्णचन्द्र दक न्यायतीर्थ

प्रकाशक
श्री जैन साधुमार्गी
पूज्य श्रीहुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय
का
श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल ऑफिस
रतलाम – मालवा

मुद्रक
राधाकृष्ण बालमुकुन्द शर्मा
अध्यक्ष–श्री शारदा प्रिन्टिग प्रेस, रंगरेज़-रोड़ रतलाम

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य १॥) | वि. संवत् २००३

* श्री *

किञ्चिद् वक्तव्य

पानी ऐसा पदार्थ है जिसपर किसी का एकाधिपत्य नही हो सकता वह सबके अधिकारकी उपयोगी वस्तु है। फिरभी जो उसे संग्रह करता या उसके संग्रहार्थ खर्च व परिश्रम ऊठाता है वह व्यक्ति व्यवहार में उस संग्राहित पानी का अधिकारी बन जाता है उस भोग या उपभोग रूप उपयोग से कोई इन्कार नहीं कर सकता तदनुसार महापुरुषों के आप्त वचनामृत या उनकी उपदेशमयी वाणी पर किसी का एकाधिकार नही हो सकता। महापुरुषों की वाणी सर्वदा सबके लिये ही होती है। वे किसी खास जाति व्यक्ति या देश को सम्बोधन करके कोई वचन नहीं निकालते। पानी की तरह उनकी वाणी सर्वोपयोगी और जीवनदायिनी है फिर उस प्रवचनरूप वाणी का जो व्यक्ति संग्रह नहीं करताहै परिश्रम नहीं उठाताहै या खर्च करनेसे हाथ खिंचता है वह अनन्तर चाहे लाभ उठाले परम्पर में लाभ नहीं उठा सकता किन्तु जो संग्रह कर लेता है वही उससें अनन्तर एवं परम्पर दोनों लाभ ऊठाता है इतना ही नहीं उससें अन्य स्थान की जनता और भविष्य की प्रजा भी लाभ उठाती है।

आज जैन समाज या जैन धर्म का जो अस्तित्व है और संसार की धर्म क्रांतियों में सें गुजरकर टिक रहा है वह इसके संग्राहित साहित्य के बल पर ही। जैन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त द्वादशांगी में से द्रष्टिवाद का संग्रह नही होसका इससे वह विच्छेद हो गया है और एकादश अंग जो श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय में संग्राहित कर लिये गये वे आज भी जैन धर्म एवं जैन समाज को टिकाये रखने में आधारभूत बन रहे हैं और भविष्य में भी टीकाकार रखने में समर्थ बनेंगे।

सूत्रों में अंग सूत्रों के लिये जो वर्णन दिया गया है आज उतने अंश में पूर्ण रूपेण उपलब्ध न भी हो परन्तु जो संग्रह हुवा है जैन समाज के ही लिये नहीं समस्त मानव समाज के लिये एवं प्राणी मात्र के लिये उपकारक सिद्ध हुवा है।

भगवान महावीर के शासन में समय २ पर अनेक ज्योतिर्धर महापुरुष हुए हैं उन्होंने जो प्रवचन किये है वे उस समय अद्भुत चमत्कारिक एवं प्रभावोत्पादक माने जाते थे परन्तु वे तत्सामयिक मनुष्यों को ही उपयोगी हो सके भविष्य की प्रजा उसके लाभ से सर्वथा वञ्चित ही है क्योंकि उनका संग्रह नहीं होसका।

जैन दर्शन के अन्तर्गत साधुमार्गी जैन समाज और उसके अन्तर्गत प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय सुप्रसिद्ध है इस सम्प्रदाय के आचार्यों में से स्वर्गस्थ पूज्य श्री उदयसागरजी महाराज बड़े ही प्रवचनी और सुप्रसिद्ध वक्ता थे उनके प्रभावोत्पादक ललित व्याख्यानों को श्रवण करने के लिये जनता उमड़ी पड़ती थी जिस रोज व्यास पीठ पर पूज्य महाराज साहब का पाटिया लगता कि बाजार में हर्ष की उर्मियें उछलने लगती थीं और जनता खचाखच भर जाती थी ऐसा पूर्व पुरुषों से सुना जाता है। उनके परम्पर उत्तराधिकारी स्वर्गीय पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज साहब के प्रवचनों का तो मुझे स्वतः अनुभव है तथा अन्य लोगों को भी है। उनकी वाणी में भी जादू का सा असर था उनका वचनातिशय भी उत्कृष्ट श्रेणी का था किन्तु अफसोस है कि उस समय उनके वचनामृत संग्रह करने की भावना ही पैदा नहीं हुई।

उन्हीं के उत्तराधिकारी स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहिराचार्य भी अद्वितीय वक्ता थे। आप केवल वक्ता ही नहीं थे किन्तु कलाकार भी थे कलाकार जिस प्रकार रत्नों को स्थानापन्न करते समय उसके साथ जिस सामग्री की जरूरत होती है वैसे ही साज से उस रत्न की शोभा बढा देता है इसी तरह श्रीमज्जवाहिराचार्य भी जैन सिद्धान्तों के अन्दर रहे हुए वाक्यरूपी रत्नों को वर्तमान समय के विज्ञान द्वारा तुलनात्मक दृष्टि से अनुसन्धान करके उनको सर्व ग्राह्य बना देते थे और प्रत्येक सूत्र की तलस्पर्शी व्याख्या करते थे यह देखकर जिस समय पूज्य श्री दक्षिण खानदेश से मालवा में पधारें उस समय यानि सं० १९८२ की मण्डल की चतुर्थ बैठक रतलाम में यह प्रश्न आया था कि पूज्य श्री के व्याख्यान नोट कराये जायं तो जनता को भविष्य में बहुत लाभ हो सकेगा उसी समय एक प्रस्ताव द्वारा व्याख्यानों को नोट कराया जाना ठहराया गया तदानुसार मंडल आफ़िस ने सं. १९८३ के ब्यावर चातुर्मास से ही व्याख्यानों का लिखाया जाना शुरू कराया गया था सो सं. १९९६ के अहमदाबाद चातुर्मास तक नोट हुए हैं। इस कार्य में मंडल के हजारों रूपये व्यय हुए हैं। मंडल के अन्य कार्यों में यह कार्य वर्तमान तथा भविष्य की प्रजा के लिये अत्युपयोगी सिद्ध हुवा है।

श्रीमज्जवाहिराचार्य संसार के नियमानुसार अपने भौतिक शरीर से आज हमारे बीचमें नहीं रहे है किन्तु उनकी लिपि बद्ध हुई वाणी विद्यमान है। पूज्यश्री के प्रवचनों में से पृथक २ विषयों पर तात्विक विभाग एवं कथा विभाग की बीस पुस्तकें मंडल ऑफिस ने प्रसिद्ध की हैं तथा भीनासर देहली आदि के चातुर्मास में से चुने हुए व्याख्यानों की कुछ पुस्तकें श्री जवाहिर किरणावली के नाम से प्रसिद्ध हुई हैं इसे देखकर जैन एवं जैनेतर जनता की रूची इतनी बढ़ गई है कि साहित्य की कुछ पुस्तकें तो स्टाक में भी नहीं रही हैं। और कोई २ साहित्य के तो तीन और चार २ संस्करण निकल चुके हैं फिर भी मांग बढ़ती जा रही है।

सं० २००० के आषाढ़ मास में पूज्य श्री का स्वर्गवास हो जाने पर चौतरफ से यह आवाज ऊठी की ऐसे महापुरुष का स्मारक कायम किया जाय और उनके उपदेशों को मूर्त रूप में परिणत किये जायं जिसके लिये विद्वानों की तरफ से अनेक योजनाएं आयी थी वे मंडल की देशनौक की बैठक के समय रजू की गई और विचार करके श्रीमान् सेठ चम्पालालजी साहब बांठिया का अदम्य उत्साह देखकर इस कार्य को वेग देने का भार उन्हीं के ऊपर छोडकर मंडल ने ठहराव नं० १८ किया था परन्तु लोगों की ईच्छा के अनुकूल वह कार्य आगे न बढ़कर केवल बीकानेर भीनासर गंगाशहर तक ही रह गया।

गत वर्ष ब्यावर की मंडल की बैठक में फिर वह प्रश्न उपस्थित हुआ उस पर बहुत विचार होकर सर्व सम्मति से यही ठहरा कि पूज्यश्री का सच्चा स्मारक उनके प्रवचनों को सुन्दर ढंग से सम्पादन कराके प्रचार करना है जिसके लिये प्रस्ताव होकर एक फंड कायम हुआ है और उसकी व्यवस्था करने व साहित्य तैयार कराने के लिये एक कमिटी भी कायम हुई है उस विभाग के तरफ से श्री जवाहिर स्मारक का प्रथम पुष्प एवं श्री जवाहिर किरणावली की किरणों में से यह सातवीं किरण आपके कर कमलों में पहुंचाते हुए हमें परमानन्द का अनुभव होता है। और आशा रखते हैं कि इस साहित्य द्वारा जहां सन्त सतियों का सदा सर्वदा योग नहीं रहता वहां के बन्धुओं की आवश्यकता पूर्ति का यह साहित्य उत्तम साधन साबित होगा।

यह साहित्य ऐसे ढंग से सम्पादन एवं प्रकाशित किया गया है कि जिससे पाठक व्याख्यान का पुरा पुरा आनन्द ले सकें। आगे के व्याख्यान भी इसी ढंग से प्रकाशित किये जावेंगे इसलिये सर्व पाठकों एवं साहित्य प्रेमियों से हमारा अनुरोध है कि आप अपना नाम स्थायी ग्राहकों में दर्ज करवा दें। ताकि साहित्य का पुष्प प्रकाशित होते ही आपको भेज दिया जाय। स्व. पूज्य श्री के प्रवचन रूप यह साहित्य इतना मर्म स्पर्शी ठोंस और उच्च कोटि का है कि पुस्तकाकार में प्रकाशित होते ही हाथो हाथ पुस्तके बिक जाती हैं अतः हमारा यही अनुरोध है कि आप अपना नाम स्थायी ग्राहकों में दर्ज करादें। इत्यलम्।

श्री जैन
हितेच्छु श्रावक मण्डल ऑफिस
रतलाम
आश्विन शुक्ला १ सं० २००३

भवदीय
बालचन्द श्रीश्रीमाल
सेक्रेटरी
हीरालाल नांदेचा
प्रेसिडेन्ट

अमृत मय स्वादिष्ट फल !

आपको मालुम है कि महापुरुषों के प्रवचनरूप ये अमृतमयी स्वादिष्टफल कहां से प्राप्त हो रहे हैं। श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल आफिस रतलाम के परिश्रमका प्रताप है कि हमें ऐसा उत्तम साहित्य अध्ययन करने को मिलरहा है अतः हमारा यह प्रथम कर्तव्य होजाता है कि मंडल को तन मन धन से सहायता देकर इसे व्यापक एवं सुदृढ बनावे। भारत के कौने कौने में इसके सभ्य बनाकर इससे समुन्नत करें। मंडल के सभ्य बनने के तरीके।

१ जो महानुभाव मंडल को रूपये पांचसो से अधिक देंगे वे मंडल के प्रथम श्रेणी के वंशपरम्परा के सभ्यमाने जावेंगे।

२ जो महानुभाव मंडल को रूपये एकसो से अधिक भेंट करेंगे वे मंडल के द्वितीय श्रेणिके आजीवन सभ्य माने जावेंगे।

३ जो महानुभाव मंडल को रूपये दो प्रति वर्ष देते रहेंगे या एक साथ देंगे वे तृतीय श्रेणिके जितनी तादादमें देंगे उतने वर्ष के सभ्य माने जावेंगे।

४ जो मंडल की किसी भी प्रवृतिमें आर्थिक मदद देंगे वे रकम की तादद पर से उसी श्रेणिके सभ्य माने जावेंगे।

मंडल की मुख्य २ प्रवृतियां निम्न प्रकार हैं

१ श्री जवाहिराचार्य के प्रवचनोपर से साहित्य सम्पादन करा कर उसको प्रकाशित करके अल्प मूल्य में प्रचार किया जाता हैं।

२ अपनी सामाजिक धार्मिक सम्थाओं में अभ्यास करते हुए छात्र छात्राओं की परीक्षा लेकर उनको पारितोषिक एवं प्रमाण पत्र देता है।

३ अपनी सामाजिक संस्थाओं को आर्थिक सहायता देकर उनका गौरव बढ़ाया जाता है।

४ मंडल आफिस मे प्रतिमाह रिपोर्ट रूपमें 'निवेदन पत्र' निकलता है जो प्रत्येक श्रेणिके सभ्योंको बिना शुल्क भेजा जाता है।

५ सम्प्रदाय तथा समाज के गौरव के कार्यों मे भी प्रयत्नकरता है सन्त सतियोंके ज्ञान दर्शन चारित्र की विशुद्धि बढ़ाने में सहायक है।

भवदीय—

मंत्री.

विषय सूची

जवाहिर किरणावली

किरण ७वीं

श्रीजवाहिराचार्य
के
व्याख्यान

दो शब्द और

इस पुस्तक के छपते छपते कितनेक हितैषियों का ऐसा आग्रह हुआ कि मंडल ऑफिस से अब जो भी साहित्य प्रकाशित हो, वह श्री जवाहिर किरणावली के किरणरूप में ही हो उनके आग्रह को मान देकर इस पुस्तक को श्री जवाहिर किरणावली की छठी किरण पुस्तक के प्रारम्भ के पृष्ठ पर छपवाया है परन्तु पीछे से खबर मिली कि छठी किरण दूसरी जगह छप रही है। इस लिये इसे सातवीं किरण जाहिर किया जाता है।

प्रकाशक--
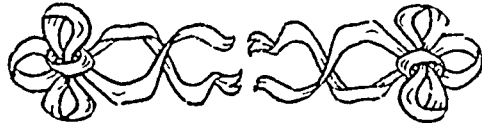
* श्री महावीरायनमः *

श्री जवाहिर किरणावली

किरण ६

(जवाहिर स्मारक पुष्प प्रथम)

१

वास्तविक शांति
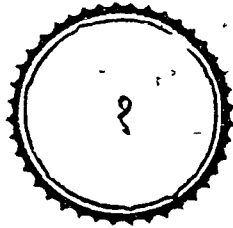
"श्री शांति जिनेश्वर सायब सोलवाँ.................."

यह भगवान शान्तिनाथ की प्रार्थना है। भक्त भगवान् से क्या चाहता है? यह कि 'हे प्रभो! तू शांति का सागर है, तू स्वयं शान्ति का स्वरूप है, तेरे में शान्ति का भण्डार भरा है, मै अशान्त हूं (आशा और तृष्णा के कारण) मुझे शान्ति की आवश्यक्ता है, अतः मेरे शान्ति रहित हृदय को शान्ति प्रदान कर'।

जिसको शान्ति की जरूरत होती है, जिसके हृदय में अशान्ति भरी पड़ी हो, वही व्यक्ति शान्ति की चाहना करता है। पानी की चाह प्यासा ही करता है। रोटी की मांग भूखा ही रखता है। जिसमें जिस बात की कमी होती है वह उसे दूर करना चाहता है। तदनुसार भक्त भी भगवान् से कहते है (प्रार्थना करते है) कि 'हे प्रभो! तू शान्ति का

सागर है, किन्तु मुझ में अशान्ति है, अतः मैं तुझ से शान्ति चाहता हूं। यों तो संसा में शान्ति देने वाले अनेक पदार्थ माने हुए है। मैंने उन सब पदार्थों को खोजा किन्‍ किसी भी पदार्थ में मुझे शान्ति नहीं मिली। वास्तव में संसार के किसी भी जड़ पदार्थ शान्ति है ही नहीं।

यह कहा जा सकता है कि जब प्यास लगी हो तब ठण्डा पानी और भूख लगा पर रोटी मिलजाने से शांति मिलती है और यह प्रत्यक्ष अनुभूत बात भी है। वैसी हालत यह कैसे कहा जा सकता है कि संसार के किसी भी पदार्थ में शांति नहीं है? इसका उत्त यह है कि सयाने लोग शान्ति उसी को कहते हैं जिसमें अशान्ति का लवलेश भी न हो। जो शान्ति एकान्तिक और आत्यन्तिक है वही सच्ची शान्ति है। जिस पदार्थ में एकान्तिक और आत्यंतिक शान्ति नहीं है, वह शान्ति दायक नहीं कहा जा सकता। पदार्थों में शान्ति क आभास होता है, किन्तु शान्ति का वास्तविक स्रोत अन्य ही है। उदाहरण के लिए समझ लीजिये कि किसी को प्यास लगी है और उसने पानी पी लिया है। यदि उसी व्यक्ति को उसी समय पुनः पानी पीने के लिए कहा जाय, तो क्या वह पानी पीयेगा? नहीं पियेगा। यदि पानी में शान्ति है तो वह व्यक्ति पुनः पुनः पानी पीने से क्यों इन्कार करता है दूसरी बात-एक बार पानी पीने से उस समय उसकी प्यास बुझ गई थी, उस समय उसने पानी में शान्ति का अनुभव किया था किन्तु दो एक घण्टा बीत जाने पर वह फिर पानी पीता है या नहीं? फिर पानी पीने का क्या कारण है? यही कि उस समय पानी पीने से उस समय की प्यास बुझ गई थी लेकिन कायम के लिए उस पानी से प्यास न बुझी थी। कल रोटी खाई थी। क्या आज पुनः खानी पड़ेगी? यदि रोटी से भूख मिट जाती है तो पुनः क्यों खानी पड़ती है! इससे ज्ञात होता है कि रोटी पानी आदि भौतिक पदार्थों में सुख नहीं है किन्तु सुख का आभास मात्र है। शान्ति नहीं है किन्तु शान्ति का आभास है। संसार के किसी भी पदार्थ में एकान्तिक या आत्यन्तिक सुख नही है। जब भूख लगी हो तब लड्डू कितने प्यारे लगते है। यदि भूख न हो तो क्या लड्डु खाये जा सकते हैं। भूख में प्यारे लगनेवाले वे ही लड्डु भूख के अभाव में कितने बुरे लगते हैं? इस बुरे लगने का कारण क्या है? यह कि अब भूख जन्य दुःख नहीं है। जब मनुष्य दुःखी होता है तब उसे सांसारिक पदार्थों में शांति मालूम देती है। लेकिन जब वह दुःख मिट जाता है तब सांसारिक पदार्थ में शान्ति नहीं मालूम पड़ती बल्कि अशांति जान पडने लगती है। इसी से ज्ञानीजन कहते हैं कि सांसारिक पदार्थों में एकान्तिक या आत्यंतिक शान्ति नहीं है। किसी दुःख के समय उनमें शान्ति जान पड़ती है मगर वास्तव में संसार के किसी

भी पदार्थ में न पहले सुख था और न अब। भौतिक पदार्थ शान्ति या सुख के निमित्त कारण अवश्य हैं। शान्ति का उपादान कारण कुछ अन्य ही है!

भक्त कहते हैं कि हे प्रभो! मैंने संसार के समस्त पदार्थों को छानबीन कर खोज डाला किन्तु किसी भी पदार्थ में शान्ति नहीं मिली। अतः अब मैं तेरी शरण आया हूँ। और तेरे से शान्ति के लिए प्रार्थना करता हूं।

वेदादि ग्रन्थों में "ॐ शान्तिः, शान्ति, शान्तिः" इस प्रकार तीन वार शान्ति का उच्चारण किया गया है। तीन बार शान्ति का उच्चारण इसलिए किया गया है कि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक इस तरह तीन प्रकार की शान्ति की कामना (चाहना) कीगई है। आधिभौतिक शान्ति चाहने का अर्थ यह है कि अभी हमारा आत्मा शरीर में निवास करता है। अभी आत्मा का काम शरीर की सहायता से चलता है। अभी आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त नहीं हुई है। इन्द्रियों की सहायता से ही आत्मा जानना, सुनना, देखना आदि क्रियाएं करता है। आत्मा को अतीन्द्रिय शक्ति प्राप्त होजाय तब की बात अलग है। किन्तु अभी तो अतीन्द्रिय शक्ति न होने से शरीर, आंख, कान, नाक, जिह्वा से आत्मा सहायता लेकर अपना निर्वाह करता है।

इस प्रकार यह भौतिक शरीर आत्मा के लिए सहायक है। किन्तु इस भौतिक शरीर के पीछे अनेक भौतिक अशान्तियां लगी हुई हैं। इन भौतिक अशान्तियों को मिटाने के लिए भी शान्ति का उच्चारण किया जाता है और परमात्मा से शान्ति चाही जाती है। इस शरीर को अनेक रोग दुःख और शस्त्रघात आदि कारणों से अशान्ति रहती है। शान्ति के उच्चारण द्वारा इन सब कारणों को मिटाकर अशान्ति मिटाना इष्ट है।

यह शंका की जा सकती है कि ये आधिभौतिक अर्थात् शारीरिक कष्ट तो अन्य उपायों के द्वारा भी मिटाये जा सकते है। जैसे रोग वैद्यराज की शरण लेने से और शस्त्र घात का भय किसी वीर योद्धा की शरण में जाने से। फिर इन दुःखो से बचने के लिए परमात्मा की शरण में जाने और उससे शान्ति की चाहना करने की क्या आवश्यकता है? अन्य स्थूल उपायों के होते हुए परमात्मा तक पुकार पहुँचाने की क्या जरूरत है?

इस शंका का समाधान सच्ची शान्ति का मार्ग जानने और अनुभव करने वाले ज्ञानी जन इस प्रकार करते हैं कि यदि वैद्य या वीरयोद्धा की सहायता ली जायगी और उस

से शान्ति प्राप्त की जायगी तो उनका गुलाम बन जाना पड़ेगा। वैद्य की सहायता लेने पर पदे पदे वैद्यराज की आवश्यता होगी और उनके वश हो जाना पड़ेगा और वीर योद्धा की सहायता लेने से खुद की शक्ति का भरोसा न होने से कायरता प्राप्त होगी। अतः इस प्रकार की अशांति मिटाने के लिए भी परमात्मा की प्रार्थना करना ही उचित मार्ग है। तब किसी ऐसी जगह के ही द्वार क्यों न खटखटाए जाय जहां हमारी सब अशान्तियां दूर होकर वास्तविक सुख प्राप्त हो। वह स्थान परमात्मा की शरण के सिवा अन्य नहीं हो सकता। शान्ति का सच्चा और पूर्ण कारण वही है। इस विषय का विशद और विस्तृत वर्णन अनाथी मुनि के चरित्र वर्णन के प्रसंग में समय २ पर किया जायगा। यहां तो केवल इतना ही कहना है कि ज्ञानी लोग परमात्मा के सिवा अन्य किसी से अपने दुःख दूर करवाना नहीं चाहते।

भगवान् शांतिनाथ का नाम लेने से शांति कैसे प्राप्त हो सकती है यह बात कथा द्वारा बताई जाती है। कथा द्वारा बताने से स्त्री बाल वृद्ध आदि सब लोग सुगमता से समझ सकेंगे। भगवान् शांतिनाथ के पिता हस्तिनापुर में राज्य करते थे। उनका नाम महाराज विश्वसेन था। वे कोरे नाम के ही विश्वसेन न थे किन्तु विश्व को शांति पहुंचाने के लिए प्रयत्न किया करते थे। वे विश्व-संसार के मित्र थे। वे रात दिन सोचा करते थे कि मैं अच्छे २ अच्छे पदार्थ भोगने के लिए राजा नहीं बना हूं किन्तु मुझ में जो शक्ति मौजूद है वह खर्च करके प्रजा को शांति पहुंचा सकूं तब सच्चा राजा कहलाऊं। वे हर क्षण संसार को शांति पहुंचाने का विचार किया करते थे। यही कारण है कि उनके यहां साक्षात् शांति के अवतार भगवान् शांतिनाथ का जन्म हुआ था।

महाराजा विश्वसेन के विचारों पर आप लोग भी गौर कीजिये। आप शान्ति दायक पुत्र चाहते हैं या अशान्ति दायक? चाहते तो होंगे आप भी शान्दिायक ही। शान्तिदायक पुत्र प्राप्त करने की इच्छा वालों को स्वय कैसा बनना चाहिए? दूसरों को शान्ति प्रदान करने वाले या दूसरों की शान्ति में अशान्ति उत्पन्न करने वाले? यदि अशान्तिदायक बनोगे तो पुत्र भी अशान्तिदायक ही उत्पन्न होगा। जैसी बेल होती है उसका फल भी वैसा ही होता है। " बोये पेड़ बबूल के आम कहां ते होय। "

एक आदमी दूसरे देश में गया। उसके देश में इन्द्रायण का फल नहीं होता था अतः उसने कभी वह फल देखा न था। नये देश में इन्द्रायण का फल देख

कर वह बहुत प्रसन्न हुआ । प्रशंसा करने लगा कि यह कैसा सुन्दर देश है। यहां जमीन पर पड़ी हुई वेल में ही ऐसे सुन्दर फल लगते हैं। मेरे देश में तो ऊँचे वृक्ष पर ही फल लगते हैं। उस वक्त उसे भूख लग रही थी अतः एक फल तोड़कर खाया। किन्तु फल उसे कडुआ लगा। वह थू थू करता हुआ सोचने लगा कि इतने सुंदर फल में यह कडुआपन कहाँ से आ गया? यह सोचकर कि देखूं फल कडुआ है पर पत्ते कैसे हैं, उसने पत्ते चखे। पत्ते भी कडुए निकले। फिर उसने फूल चखा तो वह भी कडुआ मालूम हुआ। अन्त में उसने उस वेल का मूल (जड़) चखा। बड़े दुख के साथ उसने अनुभव किया कि उस वेल का मूल भी कडुआ ही था। उस व्यक्ति ने निर्णय किया कि जिसका मूल ही कडुआ होगा उसके सब अंश कडुए ही होंगे।

सारांश यह है कि आप लोग अपने पुत्र को तो शान्तिदायक पसन्द करते हैं किन्तु खुद को भी तपासिये कि आप स्वयं कैसे हैं? कोई अच्छे कपड़े पहन कर अच्छा बनना चाहे तो इससे उसकी अच्छा बनने की मुराद पूरी नहीं हो जाती। कपड़ों के परिवर्तन करने से या सुन्दर साज सजाने से आत्मा अच्छा नहीं बन जाता। इससे तो शरीर अच्छा लग सकता है। यदि खुद के आत्मा में दूसरों को शान्ति पहुंचाने का गुण होगा तभी मनुष्य अच्छा लगेगा और तभी संतान भी शान्तिदायिनी हो सकती है।

महाराजा विश्वसेन सब को शांति पहुँचाने के इच्छुक रहते थे इसी से उनकी रानी अचिरा के गर्भ में भगवान् शान्तिनाथ ने जन्म धारण किया। जिस समय भगवान् शांतिनाथ गर्भ में थे उस समय महाराजा विश्वसेन के राज्य में महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ। प्रजा महामारी का शिकार होने लगी। यह देख सुन कर महाराजा बहुत चिन्तित हुए और विचार करने लगे कि जिस प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिए मैंने इतने कष्ट उठाये हे वह किस प्रकार काल कवलित हो रही है। मेरी कितनी कमजोरी है कि जो मेरे सामने मरती हुई प्रजा का मै रक्षण नहीं कर पाता हूँ। इस प्रकार महामारी का प्रकोप होना और प्रजा का विनाश होना केवल प्रजाके पापों का ही परिणाम नहीं है किन्तु मेरे पापों का भी परिणाम है। जो कुछ हो, मुझे पाप पाप करके ही न बैठे रहना चाहिए किन्तु ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे प्रजा की रक्षा हो और उसे शान्ति प्राप्त हो। यदि मेरे शरीर से यह कार्य न हो सके तो फिर इस शरीर का धारण करना ही व्यर्थ है। मै निश्चय करता हूं कि अब प्रजा में कोई नया रोगी न होगा और जो रोगी है वे जब तक अच्छे न हो जायगें तब तक मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगा।

महाराजा विश्वसेन ने इस प्रकार सत्याग्रह या अभिग्रह किया, वह अपने निजी स्वार्थ हित के लिये नहीं किन्तु जनता के हित के लिए किया था। जन हित के लिए इस प्र का दृढ़ निश्चय करके महाराजा परमात्मा के ध्यान में बैठ गये। ध्यान में यह विचारने कि मेरे किस पाप के कारण यह माहमारी उपस्थित हुई है और प्रजा मरने लगी है। किस कमी या असावधानी के कारण प्रजा को यह दुःख सहन करना पड़ रहा है।

जो अपने दुःख का तो दुःख समझता है किन्तु दूसरों के दुःख को महसूस न करता वह धर्म का अधिकारी नहीं हो सकता। वस्तुतः धर्म का अधिकारी वह है अपने दुःखों की चिन्ता न करे किन्तु दूसरों के दुःखो को दूर करने की कोशिश करे। दूसरों सुखी देखकर प्रसन्न हो और दुःखी देखकर दुःखी हो वही सच्चा धर्माधिकारी है। यदि आ धर्मात्मा बनने की ख्वाहिश रखते हैं तो यह निश्चय करिये कि हे दीनानाथ! हम हम दुःख सहन कर लेंगे किन्तु अज्ञानी लोग जो कि दुःख से घबड़ाते है उसको सहन न करें उसे दूर करने का भरसक प्रयत्न करेंगे। "**अत्तसमं मन्निज्ज छप्पि कायं**" **अर्थात्** पृथ्वी, पा **अग्नि**, वायु, वनस्पति और चलते फिरते त्रस जीव इन छः काया के जीवों को अप **आत्मा के समान मानना चाहिए। ज्ञानी जन ही यह विचार कर सकता है कि कोई प्राणी दु** से पीड़ित न हो। अज्ञानी लोग ऐसा विचार नहीं कर सकते।

महाराजा विश्वसेन अन्न जल त्याग का अभिग्रह ग्रहण कर के परमात्मा के ध्य में तल्लीन होकर बैठे हुए थे। उधर महारानी अचिरा भोजन करने के लिए पतिदेव प्रतीक्षा कर रही थी। भारतीय सभ्यता के अनुसार पतिव्रता स्त्री पति के भोजन करने पूर्व भोजन नहीं करती है। गुजराती भाषा में कहावत है कि '**माटी पहली बैयर खाय तेनो जमारो एले जाय**।' आज भी भले घरों की स्त्रियाँ पति के भोजन करने के पह भोजन नहीं करती किन्तु पति के भोजन कर चुकने पर भोजन करती है।

भोजन करने का समय हो चुका था और भोजन भी तैय्यार था फिर भी महारा के न पधारने से महारानी अचिरा ने दासी को बुलाकर उससे कहा कि तू जाकर महारा से अर्ज कर कि भोजन तय्यार है। राजा को भोजन निश्चित समय पर ही करना चाहि ताकि शरीर रक्षा हो और शरीर रक्षा होने से प्रजा की भी रक्षा हो सके। दासी महारा के पास गई किन्तु उन्हें ध्यान में तल्लीन देखकर बोलने की हिम्मत न कर सकी। साधार लोगों को तेजस्वी महापुरुषों की ओर देखने की हिम्मत न होती है। तेजस्वियों के मुख से ए क प्रकार का तेज निकलता है जिसके कारण साधारण आदमी उनकी ओर नहीं देख सकता।

दासी महाराजा विश्वसेन का ध्यान भंग न कर सकी। वह दूर से ही धीरे २ कहने लगी कि भोजन तय्यार है, आप आरोगने के लिए पधारिये। उसका शब्द इतना धीमा था कि वह महाराजा के कान में पड़ा हो या न पड़ा हो। महाराजा का ध्यान भग न हुआ। वे तो ध्यान में यही सोच रहे थे कि हे प्रभो! मेरे किस पाप के उदय के कारण मेरी प्यारी प्रजा महामारी का शिकार बन रही है। मै राजा हूं। प्रजा मुझे पिता कहती है, मेरे पैरों पड़ती है। और अपनी शक्ति मुझे सौंपती है। फिर उसका कल्याण कर सकूं तो मुझ पर बड़ा भार बढ़ता है।

राजकोट श्री संघ के सेक्रेटरी मुझसे कहने लगे कि महाराज! आप यहां क्या पधारे हैं, हमारे लिए तो साक्षात् गंगा अवतीर्ण हुई है। मैं कहता हूं कि गंगा तो यहां का श्री संघ है। यहां का संघ या समाज मुझको जो मान बड़ाई प्रदान करता है उससे मुझ पर भार बढ़ता है, मेरी जिम्मेवरी बढ़ती है। यदि मै यहां की समाज का वास्तविक कल्याण न कर सकूं तो आपका दिया हुआ मान मुझपर भार ही है। आप लोग बेंक में रूपये रखते है। बेंक का काम आपके रूपयों की रक्षा करना है। यदि वह रक्षा न करे तो उस पर भार है। बेंक तो कभी दिवाला भी निकाल दे किन्तु क्या हम साधु लोग भी दिवाला निकाल सकते है। आप लोग हम साधुओं के लिए कल्याण मंगल आदि शब्द कहते है। हमारा ऊपरी साधु भेष देखकर ही आप लोग ऐसा कहते है। कल्याण मंगल आदि - शब्द कहला कर भी यदि हम आपका कल्याण न करें तो सचमुच हम पर भार बढ़ता है। आपके दिए हुए मान के बदले में हमारा कुछ कर्तव्य हो जाता है और वह आपके लिए कल्याण कार्य करना ही है।

यह तो हम साधुओं की बात हुई। अब आपकी बात कहता हूं। आप भी तीर्थ कहलाते है। तीर्थ उसे कहते है जो दूसरों को तारे-पार उतारे। दूसरों को वही तार सकता है जो खुद तरता है। जो स्वयं न तरता हो वह दूसरों को क्या तारेगा। रेल यदि आप लोगों को अपने में बैठाकर दूसरी जगह न पहुंचाये तो क्या आप उसे रेल कहेंगे। इसी तरह तीर्थ होकर भी यदि दूसरों को न तारो तो तीर्थ कैसे कहला सकते हो। दूसरों को तभी तार सकते हो जब स्वयं तिरो।

एक भाई का मुंह बासता था। मैने पूछा क्या बीड़ी पीते हो? उसने उत्तर दिया, हां पीता हूं। मेरे पीछे यह दुर्व्यसन लग गया है। मैंने कहा कि भगवान् महावीर के श्रावक होकर आपमें यह कमजोरी कैसी। बिना कष्ट सहन किये कोई कार्य नहीं होता।

कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमें तुम्हारा और हम दोनों का कल्याण है। आपके तीर्थङ्कर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए अन्न त्याग देते हैं और आप बीड़ी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सकें यह मुझ पर कि भार है। मैं इस विषय में क्या कहूं। यदि आप लोग बीड़ी पीना छोड़ दें तो मै सकता हूं कि राजकोट का संघ बीड़ी नहीं पीता है।

बीड़ी पीने वाले कहते हैं कि बीड़ी पीने से दस्त साफ आता है। पेट में किसी प्रकार गड़बड़ नहीं रहती। पहले से लोग पीते आये हैं अतः हम भी पीते हैं। यदि यह क ठीक है तो मैं पूछता हूं कि बहिने बीड़ी क्यों नहीं पीती। उन से यदि बीड़ी पीने लिए कहा जाय तो वे यही उत्तर देंगी कि हम क्यों पीयें, हमारी बलाय पीये। स्त्रियाँ यों कहती है और आप लोग पगड़ी बांधने वाले पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। यह ठीक है। पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीड़ी से लाभ नहीं होता। बीड़ी न पीने से किसी प्रकार की हानी होगी तो इस बात की मैं जि वारी लेता हूं। मैं कहता हूं कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी अतः भाइयों! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डाक्टरों का कहना है कि तमाखू में निकोटा नामक ज़हर रहता है जो पेट में जाकर भयकंर हानि पहुंचाता है। डाक्टरों का यह कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय उससे सात मेंढ़क मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुंचाने वाली तमाखू से क्या ल हो सकता है। हाँ, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बी पीने लगते हैं। आपके फेंके हुए टुकड़े को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की ज करते है कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पिया करते हैं उसमें क्या म रहा हुआ है। बीड़ी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीड़ी नहीं पीते है वे धन्यवाद पात्र हैं। जो पीते है उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दुःख का का है। ऐसे दुःख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ। इससे आपकी आत्मा आनंद की वृद्धि होगी। मैं दिल्ली से जमना पार गया था। वहां तमाखू पीने का बहुत रिव है। यहांतक कि बहुतसी स्त्रियों भी बीड़ी पीती हैं। मैंने तमाखू त्यागनेका उपदेश दिया। उस उपदे से हमारे कई श्रावकों ने तमाखू पीना छोड़ दिया। किन्तु मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि ए मुसल्मान जो कि साठ सालों से हुक्का पीता था यह कहकर कि जब मेरा मालिक तमा नहीं पीता है, मैं कैसे पी सकता हूं, तमाखू छोड़ देता है। जब वह मुसलमान दुबारा मु

से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने हुक्का पीना क्या छोड़ दिया है गोया एक बीमारी छोड़ दी है ।

बीड़ी न पीने से रोग रहता है । यदि यह बात ठीक मानी जाय तो बहोरे लोग जोकि बीड़ी नहीं पीते है, क्या रोगी रहते है ? मारवाड़ में विश्नोई जाति लोग रहते है, जो न मांस खाते, न दारू पीते, न बीड़ी ही पीते है वे बड़े तन्दुरूस्त रहते है ! वे फुरसद के समय पुस्तकें पढ़ते हैं । किसी भी दुर्व्यसन में नहीं फंसते । इससे वे वडे सुखी है ।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ में लिखा हुआ ही है अब हम चाहे जैसे काम किया करें । यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेंगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे । आज मैं इस विषय पर थोड़ाही कहता हूं । बीड़ी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है ।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नहीं टूटा । दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नहीं हुई । वह महारानी के पास चली गई । महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाँ व्यस्त है ? दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बड़े गंभीर बने बैठे हैं । आज की तरह गंभीर बने हुए महाराजा को मैंने कभी नहीं देखा । मैं उन का ध्यान भंग न कर सकी । यदि उनका ध्यान भंग करना है तो आप स्वयं पधारिये । आप उनकी अर्धाङ्गिना हैं अतः आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भंग कर सकती है । मुझ दासी से यह काम नहीं हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार सागर में डूबे हुए है । किसी नये मसले पर विचार करते होंगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वयं महाराजा के पास चली गई । वे गर्भवती है फिर भी इस नियम को नही तोड़ा कि पति के जीमाये बिना पत्नि नहीं जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नही रह सकती थी । यदि उनका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । और गर्भ को भूखा नही रखा जा सकता था ।

यहां पर इस प्रसंग में मै कुछ कहना आवश्यक समझता हूं । मैं तपस्या करने का पक्षपाती हूं । लेकिन गर्भवती स्त्री तप करती है यह मैं ठीक नहीं समझता ।

कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमें तुम्हारा और ह दोनों का कल्याण है। आपके तीर्थङ्कर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए अन त्याग देते है और आप बीड़ी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सकें यह मुझ पर कि भार है। मैं इस विषय में क्या कहूं। यदि आप लोग बीड़ी पीना छोड़ दें तो मै सकता हूं कि राजकोट का संघ बीड़ी नहीं पीता है।

से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैंने हुक्का पीना क्या छोड़ दिया है गोया एक बीमारी छोड़ दी है ।

बीड़ी न पीने से रोग रहता है । यदि यह बात ठीक मानी जाय तो बहोरे लोग जोकि बीड़ी नहीं पीते हैं, क्या रोगी रहते है ? मारवाड़ में विश्नोई जाति लोग रहते है, जो न मांस खाते, न दारू पीते, न बीड़ी ही पीते है वे बडे तन्दुरुस्त रहते है ! वे फुरसद के समय पुस्तकें पढ़ते हैं । किसी भी दुर्व्यसन में नहीं फंसते । इससे वे वडे सुखी हैं ।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ में लिखा हुआ ही है अब हम चाहे जैसे काम किया करें । यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेंगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे । आज मैं इस विषय पर थोड़ाही कहता हूं । बीड़ी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है ।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नहीं टूटा । दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नहीं हुई । वह महारानी के पास चली गई । महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाँ व्यस्त है ? दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बड़े गंभीर बने बैठे हैं । आज की तरह गंभीर बने हुए महाराजा को मैंने कभी नहीं देखा । मैं उन का ध्यान भंग न कर सकी । यदि उनका ध्यान भंग करना है तो आप स्वयं पधारिये। आप उनकी अर्धाङ्गिना हैं अतः आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भंग कर सकती हैं । मुझ दासी से यह काम नहीं हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार सागर में डूबे हुए हैं । किसी नये मसले पर विचार करते होंगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वयं महाराजा के पास चली गईं । वे गर्भवती है फिर भी इस नियम को नहीं तोड़ा कि पति के जीमाये बिना पत्नि नही जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नही रह सकती थी । यदि उनका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता हैं । और गर्भ को भूखा नही रखा जा सकता था ।

यहां पर इस प्रसंग में मै कुछ कहना आवश्यक समझता हूं । मैं तपस्या करने का पक्षपाती हूं । लेकिन गर्भवती स्त्री तप करती है यह मै ठीक नहीं समझता ।

कष्ट सहन करके भी यदि इस दुर्व्यसन को तिलाञ्जली दे सको तो इसमें तुम्हारा और हमा दोनों का कल्याण है। आपके तीर्थङ्कर के माता पिता जगत् के कल्याण के लिए अन्न त्याग देते हैं और आप बीड़ी जैसी तुच्छ वस्तु को भी न छोड़ सकें यह मुझ पर कित भार है। मैं इस विषय में क्या कहूं। यदि आप लोग बीड़ी पीना छोड़ दें तो मैं क सकता हूं कि राजकोट का संघ बीड़ी नहीं पीता है।

बीड़ी पीने वाले कहते हैं कि बीड़ी पीने से दस्त साफ आता है। पेट में किसी प्रकार गड़बड़ नहीं रहती। पहले से लोग पीते आये हैं अतः हम भी पीते हैं। यदि यह क ठीक है तो मैं पूछता हूं कि बहिनें बीड़ी क्यों नहीं पीती। उन से यदि बीड़ी पीने के लिए कहा जाय तो वे यही उत्तर देंगी कि हम क्यों पीयें, हमारी बलाय पीये। स्त्रियाँ त यों कहती है और आप लोग पगड़ी बांधने वाले पुरुष होकर उनकी बलाय बनते हैं। अ यह ठीक है। पेट साफ रहता है आदि कथन बीड़ी पीने का बहाना मात्र है। बीड़ी पी से लाभ नहीं होता। बीड़ी न पीने से किसी प्रकार की हानी होगी तो इस बात की मैं जिम्मे वारी लेता हूं। मैं कहता हूं कि बीड़ी न पीने से किसी भी प्रकार की हानि न होगी अतः भाइयों! बीड़ी पीना छोड़ दीजिये। डाक्टरों का कहना है कि तमाखू में निकोटा नामक जहर रहता है जो पेट में जाकर भयकंर हानि पहुंचाता है। डाक्टरों का यह कहना है कि एक बीड़ी में जितनी तमाखू होती है यदि उसका अर्क निकाला जाय उससे सात मेंढ़क मर सकते हैं। इस प्रकार हानि पहुंचाने वाली तमाखू से क्या ला हो सकता है। हाँ, हानि अवश्य होती है। आप की देखा देखी आपके बच्चे भी बी पीने लगते हैं। आपके फेंके हुए टुकड़े को उठाकर बच्चे पीते हैं और इस बात की जां करते है कि हमारे पिताजी जिस बीड़ी को दिन में कई बार पिया करते हैं उसमें क्या म रहा हुआ है। बीड़ी त्याग देना ही उचित है। जो लोग बीड़ी नहीं पीते है वे धन्यवाद पात्र हैं। जो पीते हैं उनसे हमारा अनुरोध है कि वे इसे छोड़ दें। बीड़ी दुःख का कार है। ऐसे दुःख के कारणों को आप परमात्मा के समर्पण करते जाओ। इससे आपकी आत्मा आनंद की वृद्धि होगी। मै दिल्ली से जमना पार गया था। वहां तमाखू पीने का बहुत रिवा है। यहांतक कि बहुतसी स्त्रियाँ भी बीड़ी पीती हैं। मैने तमाखू त्याग का उपदेश दिया। उस उप से हमारे कई श्रावकों ने तमाखू पीना छोड़ दिया। किन्तु मुझे यह जानकर ताज्जुब हुआ कि ए मुसलमान जो कि साठ सालों से हुक्का पीता था यह कहकर कि जब मेरा मालिक तमा नहीं पीता है, मैं कैसे पी सकता हूं, तमाखू छोड़ देता है। जब वह मुसलमान दुबारा

से मिला तब कहने लगा कि महाराज आपके उपदेश से मैने हुक्का पीना क्या छोड़ दिया है गोया एक बीमारी छोड़ दी है ।

बीड़ी न पीने से रोग रहता है । यदि यह बात ठीक मानी जाय तो बहोरे लोग जोकि बीड़ी नहीं पीते है, क्या रोगी रहते है ? मारवाड़ में विश्नोई जाति लोग रहते है, जो न मांस खाते, न दारू पीते, न बीड़ी ही पीते है वे बड़े तन्दुरूस्त रहते है । वे फुरसद के समय पुस्तकें पढ़ते है । किसी भी दुर्व्यसन में नहीं फंसते । इससे वे बड़े सुखी है ।

कहने का मतलब यह है कि आप लोग दुर्व्यसन त्यागो ! यह न सोचो कि हमारा नाम तीर्थ में लिखा हुआ ही है अब हम चाहे जैसे काम किया करें । यह विचार करो कि यदि हम ऐसे दुर्व्यसन को भी न त्यागेंगे तो श्रावक नाम कैसे धरायेंगे । आज मै इस विषय पर थोड़ाही कहता हू । बीड़ी तमाखू पर एक स्वतन्त्र और पूरा व्याख्यान हो सकता है ।

महाराजा विश्वसेन का ध्यान दासी की आवाज से नही टूटा । दासी की हिम्मत इससे अधिक कुछ करने की नहीं हुई । वह महारानी के पास चली गई । महारानी ने पूछा कि आज महाराजा कहाँ व्यस्त है ? दासी ने उत्तर दिया कि आज महाराजा बड़े गंभीर बने बैठे हैं । आज की तरह गंभीर बने हुए महाराजा को मैने कभी नहीं देखा । मै उन का ध्यान भंग न कर सकी । यदि उनका ध्यान भंग करना है तो आप स्वयं पधारिये। आप उनकी अर्धाङ्गिना है अतः आपको अधिकार है कि आप उनका ध्यान भी भंग कर सकती हैं । मुझ दासी से यह काम नही हो सकता ।

यह बात सुन कर महारानी सोचने लगी कि अवश्य आज महाराजा किसी गहरे विचार सागर में डूबे हुए है । किसी नये मसले पर विचार करते होंगे । उनकी ध्यान मुद्रा को देखकर दासी इतनी चकित हो गई है ।

इस प्रकार विचार कर महारानी स्वयं महाराजा के पास चली गई । वे गर्भवती थी फिर भी इस नियम को नही तोड़ा कि पति के जीमाये बिना पत्नी नही जीम सकती । गर्भवती होने के कारण रानी भूखी भी नही रह सकती थी । यदि उनका खुद का प्रश्न होता तो वे भूखी भी रह सकती थी किन्तु गर्भ के भूखा रहने का प्रश्न था । गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है । और गर्भ को भूखा नही रखा जा सकता था ।

यहां पर इस प्रसंग में मै कुछ कहना आवश्यक समझता हूं । मैं तपस्या करने का पक्षपाती हू । लेकिन गर्भवती भी तप करती है यह मै ठीक नहीं समझता ।

गर्भ का भोजन माता के भोजन पर निर्भर होता है। जब माता भूखी होती है तब गर्भ को भी भूखा रहना पड़ता है। वैद्यक शास्त्र में कहा है कि गर्भ की माता प्रथम पहर में नहीं खाती लेकिन द्वितीय पहर का उल्लंघन नहीं कर सकती। इसके उपरान्त गर्भवती के भूखी रहने से गर्भ पर उससे दया नहीं हो सकती। प्रथम अहिंसा व्रत मे '**भत्तपाण वुच्छेए**' अर्थात् भोजन और पानी का विच्छेद करना-अन्तराय डालना अतिचार कहा गया है। यदि गर्भवती तपस्या करके भूखी रहेगी तो बलात् गर्भ को भी भूखे रखना पड़ेगा और इस तरह वह गर्भ पर दया नहीं कर सकती। आप लोग संवत्सरी का उपवास करते हैं। क्या उस दिन घरमें रही हुई गाय को भी उपवास कराते हैं या घास डालते हैं? स्वयं चाहे उपवास करो किन्तु गाय को तो घास डालते ही हो। यदि गाय को घास न डालो तो '**भत्तपाण वुच्छेए**' नामक अतिचार लगेगा। और इस प्रकार दया का लोप होगा। गर्भवती को भूखा रहने से गर्भ को भूखा रहना पड़ेगा और इस तरह गर्भ की दया न रहेगी। भगवती सूत्र में कहा है कि गर्भ का भोजन वही है जो माता का भोजन है। अतः गर्भवती को तपस्या करके गर्भ को भूखा नहीं रखना चाहिए।

महारानी अचिरा महाराज के पास गई। उसने देखा कि महाराज ध्यान मग्न है। उसने कहा, मेरी सखी ठीक ही कहती थी और ऐसी अवस्था में उसकी क्या हिम्मत हो सकती थी कि वह महाराजा का ध्यान भंग करती। रानी ने अपने अधिकार का खयाल करके कहा कि हे महाराज! आज आप इस प्रकार ध्यानमग्न अवस्था में क्यों बैठे हुए है। किस बात की चिन्ता में लीन है। चिन्ता का क्या कारण है। यदि चिन्ता का कोई कारण है तो वह मुझे बताइये और यदि कारण नहीं है तो चलिये भोजन करिये। भोजन का समय हो चुका है।

महारानी की बात सुन कर महाराज का ध्यान भंग हुआ। महारानी को देख कर उन्होंने सोचा कि महारानी नीचे खड़ी रहे और मै सिंहासन पर बैठा रहूं यह ठीक नही है। उसी समय उन्होंने भद्रासन मंगवाया और उस पर महारानी को बिठाया।

जिस घर में पति पत्नी को और पत्नी पति को आदर सत्कार नहीं देते, समझ लेना चाहिए कि उन्होंने लग्न का महत्व नही समझा है। जहां पारस्परिक आदर सत्कार देने का साधारण नियम भी न पाला जाता हो वहां अन्य नियमों की बात ही क्या करना।

नार का सब के बड़ा पाया लान पद्धति । लेकिन आज इस पद्धति की क्या शा हो रही है ।

महाराज ने कहा कि आज मैं किसी विचार में डूब गया था । अतः भोजन रने का भी खयाल न रहा । कहिये आपने तो भोजन कर लिया है न ! महारानी कहा, क्या मै आपके पूर्व ही भोजन कर लेती । महाराजा ने कहा—हाँ, आप गर्भ ी है । अतः आपको भूखी न रहना चाहिए । हम पुरुष हैं । हम पर राज्य के अनेक ठिन कामों का बोझा है । आप स्त्री हैं और आप पर गर्भ रक्षा का बड़ा भारी बोझा । इसकी हर प्रकार रक्षा करना आपका कर्तव्य है । निमित्तिये ने कहा था कि आपके र्भ में महापुरुष हैं । अतः आपको भूखी न रहना था ।

महाराजा की बात के उत्तर में महारानी ने कहा कि मेरे गर्भ में महापुरुष है तो सकी चिन्ता आपको भी तो होनी चाहिए । न मालूम आज आप किस चिन्ता में पड़े हुए हैं । अपनी चिन्ता का कारण मुझे भी तो बताइये । महाराजा ने कहा कि हे रानी ! आज मुझे बहुत बड़ी चिन्ता हो रही है । 'प्राण जाय पर प्रण नहीं जाई' के अनुसार आज मुझे बर्ताव करना है । मुझे प्रजा की रक्षा करने विषयक चिन्ता है । आप इस चिन्ता का कारण जानने के उलझन में न पड़ो । पहले जाकर भोजन करलो । रानी ने उत्तर दिया कि हे महाराज ! जिस प्रकार प्रजा रक्षा के नियम पर आप अटल हैं उसी प्रकार मैं भी आपके भोजन किए बिना भोजन न करने के नियम पर अटल हूं । आप को प्रजा रक्षा की चिन्ता है मगर कृपा कर के मुझे भी यह बतलाइये कि किस बात के कारण चिन्ता है । रानी का आग्रह देखकर महाराजा विश्वसेन असमञ्जस में पड़गये । कुछ देर सोच कर बोले कि महारानी ! मेरे राज्य में महामारी रोग फैला हुआ है और प्रजा मर रही है । प्रजा में बहुत भय छाया हुआ है । कौन कब मर जायगा इस का कुछ भी विश्वास नहीं है । सारी प्रजा में त्राहि त्राहि मची हुई है । अतः मैंने प्रतिज्ञा ली है कि जब तक प्रजा का यह कष्ट दूर न होगा, मैं अन्न जल ग्रहण न करूंगा । महारानी ने उत्तर दिया कि जो प्रतिज्ञा आपकी है वह मेरी भी है । मैं आपकी अर्धाङ्गना हूं । जो पुरुष स्त्री की शक्ति को विकसित नहीं होने देता वह अपनी ही शक्ति का ह्रास करता है । स्त्री को पतिपरायणा और धर्मनिष्ठ बनाने के लिए पति को भी कुछ त्याग करना पड़ता है । पति को नियमोपनियम का पालन करना पड़ता है ।

महारानी ने कहा—मैं केवल भोजन करने के लिए ही अर्धाङ्गना नहीं हूं । किन्तु

आपके कर्त्तव्य में हिस्सा बटाने के लिए रानी हूं। जो जवाबदारी आपके सिर पर है मेरे सिर पर भी है। सीता को वनवास करने के लिए किसी ने नहीं कहा था। न पर वनवास करने की जिम्मेवरी ही थी। फिर भी सीता वन गई थी। क्योंकि उन्होंने अनुभव किया था कि जो जवाबदारी मेरे पति पर है वह मुझ पर भी है। अतः प्रजा को आप पुत्रवत् मानते है वह मेरे लिए भी पुत्रवत् है। जो प्रतिज्ञा आपने ली वह मेरे लिए भी है।

रानी का कथन सुनकर महाराजा ने कहा कि महारानी आप गर्भवती हैं आपके लिए अन्न जल त्यागना ठीक नहीं है। रानी ने कहा आप चिन्ता मत करिये। प्रजा पर आई हुई आफत गई ही समझिये! रानी के मन में कुछ विचार आये। विचारों के सम्बन्ध में कहने का समय नहीं है। इतना अवश्य कहता हूं कि लोग बा बातों का विचार करते है और बाहरी बातें ही देखते है। किन्तु खयाल करना चाहिये बाहरी बातों के सिवाय आन्तरिक बातें भी है और उनका प्रभाव बहुत अधिक है। पर विचार करना चाहिये।

'अब आप प्रजा में से रोग गयाही समझिये' कहकर रानी ने स किया और हाथ में जल पात्र लेकर महल पर चढ़गई। उस समय उनकी आंखों में अ ज्योति थी। वे हाथ में जल लेकर कहने लगी कि यदि मैने यावज्जीवन पतिव्रता धर्म पालन किया हो, मेरे गर्भ में महापुरुष हो, तथा मैंने कभी झूठ कपट का सेवन न कि हो तो हे रोग! तू मेरे पति की रक्षा के लिए गर्भस्थ बालक के प्रभाव से चला जा। कह कर रानी ने पानी छिड़का। रानी के द्वारा पानी छिड़कते ही प्रजा में से रो महामारी चली गई।

महारानी ने जो पानी छिड़का था उसमें महामारी को भगाने की शक्ति नही थ यह शक्ति रानी के शील में थी। पानी कोई भी छिड़क सकता है। पानी छिड़कने मात्र से रोग नहीं चले जाते। पानी छिड़कने के पीछे सदाचार की शक्ति चाहिये। सुन कि महाराना प्रताप का भाला उदयपुर में रखा है। दो आदमियों के उठाने से वह उ है। वह भाला प्रताप का है। उसके उठाने के लिए प्रताप की सी शक्ति चाहिए। . प्रकार पानी के साथ भीतर के पानी की भी जरूरत है।

पानी के छींटे डालकर महारानी चारों ओर महाशक्ति की तरह देखने लगी।

ओर देखती हुई वे उस तरह ध्यान मग्न हो गई जिस तरह राजा हुए थे। रानी इस प्रकार ध्यान मग्ना थीं कि इतने में लोगों ने महाराजा से आकर कहा कि महामारी के रोगी अच्छे होगये हैं और अब प्रजा में शांति वरत रही है। राजा विचार कर रहे थे कि रानी गर्भवती है अतः भूखे रखने से गर्भ को न मालूम क्या होगा किन्तु यह समाचार सुनकर प्रसन्न हुए और गर्भस्थ आत्मा का ही यह चमत्कारिक प्रभाव है, ऐसा माना। रानी के गर्भ में रहे हुए महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शांति छायी है। महाराजा ऐसा सोच रहे थे कि इतने में दासी ने आकर कहा कि महारानी देवी या शक्ति की तरह महल के ऊपर खड़ी हैं। इस समय की उनकी मुद्रा के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। दासी से यह समाचार सुनकर महाराजा रानी के पास दौड़े गये और कहने लगे कि हे देवि! अब क्षमा करो। अब प्रजा में शांति है। आपके प्रताप से सब रोग दूर हो गये हैं।

बन्धुओं! राजा रानी को इस प्रकार बढ़ावा देते हैं, उनकी कदर करते हैं। आप लोगों के घरों में इसके विपरीत तो नहीं होता है न! ज्ञातासूत्र में मेघकुमार के अधिकार में यह पाठ आया है कि **"उरालेणं तुझे देवी सुविणे दिट्ठे"** आदि। मेघकुमार की माता स्वप्न देखकर जब पतिदेव को सुनाने गई थी तब उनके द्वारा कहे हुए ये प्रशंसा वचन हैं। स्त्री और पुरुष को परस्पर किस प्रकार ऊंची सभ्यता से बर्ताव करना चाहिए उसका यह नमूना है। शास्त्र में पारस्परिक बर्ताव में कैसी सभ्यता दिखानी चाहिए, शिक्षा दी हुई है। यदि शास्त्र ठीक ढंग से सुनाये और सुने जाय तो बहुत कुछ सुधार हो सकता है। मेघकुमार के पिता ने कहा कि हे रानी तुमने जो स्वप्न देखे हैं वे बहुत उदार, सुखकारी तथा मंगलकारी हैं। इन स्वप्नों के प्रताप से तुम को राज्य और पुत्र का लाभ होगा। रानी को लाभ होने से राजा को लाभ है ही। फिर भी ऐसा न कहा कि मुझे लाभ होगा। किन्तु यह कहा कि रानी तुझे लाभ होगा।

महाराजा विश्वसेन ने प्रजा में शान्ति होने का सारा यश रानी के हिस्से में ही बतलाया और स्वयं यश के भागी न बने। रानी चलो, अब भोजन करें। रानी ने कहा महाराज इस प्रकार बड़ाई करके मुझ पर बोझा क्यों डाल रहे हैं। मैं तो आपके पीछे हूं। आपके कारण मैं रानी कहलाती हूं। मेरे कारण आप राजा नहीं कहलाते। जो कुछ हुआ है वह सब आप [illegible] ही प्रताप से हुआ है। मुझ में जो शील की शक्ति है वह आपकी प्रदान की हुई है। [illegible] मुझ पर इस प्रकार बोझा न डालिये। इस प्रकार दोनों एक दूसरे को यश का भागी [illegible] थे। [illegible] करते हैं।

पुनः राजा कहने लगे। हे रानी यदि मेरे प्रताप से प्रजा में शान्ति हुई होती तो जब मैं ध्यानमग्न होकर बैठा था तब क्यों नहीं हुई। अतः जो कुछ हुआ है वह मेरे प्रताप नहीं किन्तु तुम्हारे प्रताप से हुआ है। आप साक्षात् शक्ति है। आपके कारण ही यह सब आनन्द हुआ है। राजा की दलील के उत्तर में रानी ने कहा कि शक्ति शिव की ही होती है। आप शिव हैं तभी मैं शक्ति बन सकी हूं। अतः कृपया मुझ पर यह बोझा न डालिये।

राजा ने कहा-अच्छा, अब मेरी तुम्हारी दोनों की बात रहने दो। इस प्रकार इस बात का अन्त न आयेगा। एक दूसरे को यश प्रदान करने का यह गेंद का सा खेल ऐसे समाप्त न होगा। जैसे गेंद दूसरे को दी जाती है उसी प्रकार यह यश किसी तीसरी शक्ति को दे डाले। इस कीर्ति का भागी तुम हम नहीं है किन्तु तुम्हारे उदर में विराजमान महापुरुष है। उस महापुरुष के प्रताप से ही प्रजा में शान्ति हुई है। यह सब यश हम हमारे पास न रखकर उस महापुरुष को समर्पण कर हलके बन जायं।

महाराजा और महारानी की तरह आप लोग भी सब यशः कीर्ति परमात्मा को सौंप दो। अपने लिए न रखो। यदि आप ऐसा करें कि हे प्रभो! जो कुछ है वह सब आप ही का है तो कितना अच्छा रहे। विचार इस बात का करना चाहिये कि परमात्मा को अच्छे काम समर्पण करने या बुरे। अच्छे कामों का परिणाम सुनकर मनुष्य को गर्व आ जाता है कि मैंने ऐसा किया है अतः अच्छे कामों का फल ईश्वर के समर्पण कर देना चाहिए। बुरे कामों की जिम्मेवारी खुद पर लेनी चाहिए ताकि भविष्य में बुराई से बचें।

महाराजा की बात सुनकर महारानी ने कहा कि अच्छी बात है जो कुछ शुभ हुआ है वह गर्भ के प्रताप से ही हुआ है। जिसका ऐसा प्रताप है उसका जन्म होने पर क्या नाम रखना चाहिये। राजा ने कहा उस प्रभु के प्रताप से राज्य में शान्ति हुई है अतः शान्तिनाथ नाम रखना बहुत उपयुक्त है। वैसे संसार में जितने भी अच्छे २ नाम हैं वे सब परमात्मा के ही नाम हैं। आपने भगवान् शान्तिनाथ को पहचाना है या नहीं? भगवान् शान्तिनाथ को मारवाड़ की इस कहावत के अनुसार तो नहीं जाना है कि **"शान्तिनाथ सोलमा, लाडू देवे गोलमा, कृपा करे तो कसार का, दया करे तो दाल का,, मीठा मोती चूर का, लेरे भूंडा लट, उतर जाय गट"**। इस प्रकार सांसारिक कामना के लिए भगवान् के नाम का प्रयोग करना ठीक नहीं है। खुद की और संसार की वास्तविक शान्ति के लिए भगवान का नाम का प्रयोग करना चाहिये। अपनी की हुई सब अच्छाइयां परमात्मा

के समपर्ण करनी चाहिये और सकल संसार की शान्ति की कामना करनी चाहिये। आप दूसरों के लिये शान्ति चाहेंगे तो आपको खुद को शान्ति जरूर मिलेगी। महाराज विश्वसेन ने प्रजा को शान्ति पहुंचाने के लिए कष्ट सहन किये तो उनको खुद को भी शान्ति प्राप्त हुई है। भक्त भगवान् से यही चाहता है:—

नत्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं ना पुन र्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां, प्राणि नामार्ति नाशनम् ॥

अर्थः—हे परमात्मन् ! मुझे राज्य नहीं चाहिये, न स्वर्ग और न अपुनर्भव। दुःख से तपे हुए प्राणियों के दुःख दूर करने की शक्ति चाहता हूं।

'अपने सब दुःखों को सह लूं, परदुःख सहा न जाय'' यह चाहता हूँ। परमात्मा की प्रार्थना करने का यही रहस्य है। उसके दरबार में से यही भिक्षा मांगना चाहिए। भगवान् शान्तिनाथ की प्रार्थना यही बात सीखाती है।

राजकोट
५—७—३६ का
व्याख्यान

सूत्रारम्भ में मंगल

२
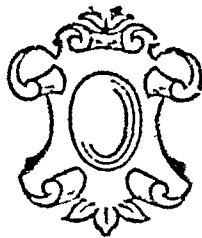
"कुन्थु जिनराज तू ऐसो नहीं कोई देव तों जैसो.............. ।"
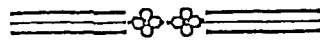
यह भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना की गई है । भगवान् की प्रार्थना हम हमारी बुद्धि के अनुसार करें चाहे पूर्व के महात्माओं द्वारा मागधी भाषा में जिस प्रकार प्रार्थना की गई है तदनुसार करें, एक ही बात है । आज मै उन्हीं विचारों को सामने रखकर प्रार्थना करता हूँ जो पूर्व के महात्माओं ने प्राकृत भाषा में कहे है । शास्त्रानुसार परमात्मा की प्रार्थना करना ही ठीक है । शास्त्र में प्रत्येक स्थल पर परमात्मा की प्रार्थना ही है, ऐसा मैं मानता हूँ । मेरी इस मान्यता से किसी का मतभेद भी हो सकता है लेकिन पूरी तरह से विचार करने पर कोई मतभेद नहीं रह सकता । अर्हन्तों के द्वारा कहे हुए द्वादशांगी मे से जो ग्यारह अग इस समय मौजूद हैं, उन में परमात्मा की प्रार्थना ही भरी हुई है । आत्मा से परमात्मा बनने के उपाय ही तो शास्त्रों में वर्णित हैं । आत्म स्वरूप का वर्णन प्रार्थना रूप ही है । भगवान् महावीर ने जगत् कल्याण के लिए निर्वाण से पूर्व जो सब मे अन्तिम वाणी कही है वह (उत्तराध्ययन) के नाम से प्रसिद्ध है। इस उत्तराध्ययन सूत्र को यदि

समस्त जैन शास्त्रों का सार कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी । इस में छत्तीस अध्ययन है ।

सारे उत्तराध्ययन सूत्र को क्रमशः आद्योपान्त पढ़ने में बहुत समय की आवश्यकता होती है । अकेले उत्तराध्ययन के लिए यह बात है तो समस्त द्वादशांगी वाणी के लिए बहुत समय शक्ति और ज्ञान की आवश्यकता है । भगवान् की समस्त वाणि को समझाना और समझना हमारी शक्ति के बाहर है । हमारी शक्ति गागर उठाने की है । सागर उठाने की हमारी शक्ति नहीं है । हमारा सद्भाग्य है कि पूर्वाचार्यों ने हम अल्प शक्ति वाले लोगों के लिए भगवान् की द्वादशांगी वाणी रूपी सागर को इस उत्तराध्ययन रूपी गागर में भर दिया है। इस गागर को हम उठा सकते हैं, समझ सकते है पूर्व के उपकारी महात्माओं ने यह प्रयत्न किया है मगर शास्त्रों को समझने की असली कुंजी हमारी आत्मा में है । शास्त्र तो निमित्त कारण है । कागज और स्याही के लिखे होने से जड़ वस्तु है । शास्त्र समझने का वास्तविक कारण—उपादान कारण हमारी आत्मा है । उदाहरण के लिए, सब लोग पुस्तकें पढ़ते हैं किन्तु जिनका हृदय विकासित हो, पूर्व भव के निर्मल संस्कार हो, उन्हीं की समझ में पुस्तकों में रही हुई गूढ बातें आती है । हर एक को समझ नहीं पड़ती । इसी बात को ध्यान में रख कर कक्षा—दर्जा के अनुसार पुस्तकें बनाई जाती है । सातवीं कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक यदि पहले दर्जे वाले विद्यार्थी को पढ़ाई जाय तो उसकी समझ में कुछ न आयगा ।

कारण कि प्रथम कक्षा के विद्यार्थी का दिमाग अभी उतना विकसित नहीं हुआ है । यही बात शास्त्र के विषय में भी है । जिसकी बुद्धि का जितना विकास हुवा होगा उतना ही उसे शास्त्र ज्ञान हासिल हो सकता है । शास्त्र समझने का असली उपादान कारण आत्मा है और जिसका आत्मा जितना निर्मल-वासना रहित होगा उतना ही वह समझ सकेगा। हृदय में धारण करके आचरण में भी उतार सकेगा ।

समस्त उत्तराध्ययन का वर्णन करना, उसमें रहे हुए गूढ़ विषयों का भावार्थ समझाना बहुत कठिन है । समय भी अधिक चाहिये सो नहीं है अतः उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन का वर्णन किया जाता है ।

यह बीसवां अध्ययन इस जमाने के लोगों के लिए (नौका) समान है । म[illegible] [illegible] में जितनी भी शंकाएं उठती है उन सब का समाधान इस अध्ययन में है ऐसा [illegible]

धारणा है। इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया था अतः अब ।
वर्णन करने की जरूरत नहीं है । किन्तु मेरे सन्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन
यहां भी पुनः विवेचन किया जाय। सन्तों के कहने से मैं इसपर व्याख्यान प्रारम्भ क
हू। इस अध्ययन को आधार बनाकर मै कुछ कहना चाहता हूं।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है । उस में कहा गया है कि
महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की शरण में न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार क
चाहिए। आत्मा का हा सुधार करना या जगाना इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थविर क
साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता न ले। स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता
सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है। शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा दारु
उत्सर्ग मार्ग नहीं है। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्म
अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जागृति में ही तल्लीन रहे। इस बीसवें अ
में इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यों की शरण न ले। वैद्य या अन्य कुटुम्बी
भी इस आत्मा का त्राण करने में समर्थ नहीं हैं। इस अध्ययन में यह बताया गया है
आत्मा में बहुत शक्ति रही हुई है। भूतकाल में आत्मा कैसी भी स्थिति में रहा हो, व
में कैसी भी स्थिति में हो और भविष्य में भी कैसी भी स्थिति में रहे इस बात की चिन्त
किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा में अनन्त शक्ति का विका
सकता है और वह सब कुछ करने में समर्थ भी हो सकता है।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा हुआ है उस सब का सार यह है
खुद के डाक्टर खुद बनो। ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्य
न रहेगी। आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रक
ताप—कष्ट दूर हो सकते हैं। त्रयताप के विनाश हो जाने पर आत्मा में किसी प्रका
सन्ताप नहीं रहता। संसार का कोई भी प्राणी सन्ताप नहीं चाहता। कोई भी अ
अशान्ति नहीं चाहता। सब कोई शान्ति चाहते हैं। किन्तु शान्ति प्राप्त करने के लिए
प्रकार के प्रयत्न अब तक किये हैं, यह शास्त्रीय दृष्टि से देखना चाहिए। हमारे प्रयत्न
क्या कमी है कि जिससे चाहने पर भी सुख शान्ति हम से दूर भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया है यह बताते हु
इसी अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा परमात्मा की प्रार्थना करता हूं।

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे।

यह मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हें शिक्षा देता हूं। तुम्हे मुक्ति का मार्ग बताता हूँ। किन्तु यह कार्य मैं अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नहीं करता। सिद्ध और संयतियों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हूं।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है वहीं का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता है। गुरु कहते है कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूं। पहले अर्थ का--अर्थ समझ लेना चाहिए।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मात्मभिरिति अर्थः। स च प्रकृते मोक्षः,
संयमादिर्वा। स एव धर्मः। तस्य गतिः ज्ञानम्
यस्यां तां अनुशिष्टिं मे शृणुत इत्यर्थः॥

अर्थः—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसकी चाहना की जाय वह अर्थ है। यहां अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से है। मोक्ष या संयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग ज्ञान है। उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो।

जिसकी इच्छा की जाय उसे अर्थ कहते हैं। सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते है। और धन के लिए ही रात दिन दौड़ धूप किया करते हैं। किन्तु यहां अर्थ का मतलब धन नहीं है। आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये हैं। धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं। धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं। और वही ग्रहण करने के लिए यहां आये हो। कदाचित् किसी गृहस्थ की यह मंशा हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियाँ जो यहां आये हुए हैं किसी भौतिक पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं। सन्त और सतियां आई हैं इसी से मालूम होजाता है कि अर्थ का अर्थ धन नहीं किन्तु कोई अन्य वस्तु है। वह अन्य वस्तु [illegible] से पूरी नहीं हो सकती। मुक्ति संसार के बंधनों से छुटकारा पाने की इच्छा-ही [illegible] है।

धारणा है। इस अध्ययन का वर्णन मैंने पहले बीकानेर में किया था अतः अब पु
वर्णन करने की जरूरत नहीं है। किन्तु मेरे सन्तों का आग्रह है कि उसी अध्ययन
यहां भी पुनः विवेचन किया जाय। सन्तों के कहने से मैं इसपर व्याख्यान प्रारम्भ क
हूं। इस अध्ययन को आधार बनाकर मैं कुछ कहना चाहता हूं।

उन्नीसवें अध्ययन में मृगापुत्र का वर्णन है। उस में कहा गया है कि
महात्माओं को वैद्य डाक्टरों की शरण में न जाकर अपनी आत्मा का ही सुधार क
चाहिए। आत्मा का हा सुधार करना या जगाना इसका अर्थ यह नहीं है कि स्थविर क
साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता न ले। स्थविर कल्पी साधु वैद्य डाक्टरों की सहायता
सकते हैं मगर यह अपवाद मार्ग है। शारीरिक बीमारी मिटाने के लिए दवा दारु
उत्सर्ग मार्ग नहीं है। उत्सर्ग मार्ग तो यही है कि सिवा भगवान् या अपनी आत्मा
अन्य किसी की सहायता न लेकर आत्म जागृति में ही तल्लीन रहे। इस बीसवें अ
में इसी बात का वर्णन है कि साधु वैद्यों की शरण न ले। वैद्य या अन्य कुटुम्बी
भी इस आत्मा का त्राण करने में समर्थ नहीं है। इस अध्ययन मे यह बताया गया है
आत्मा में बहुत शक्ति रही हुई है। भूतकाल में आत्मा कैसी भी स्थिति में रहा हो, वर्त
में कैसी भी स्थिति में हो और भविष्य में भी कैसी भी स्थिति में रहे इस बात की चिन्ता
किन्तु इस स्थिति का यदि त्याग कर दिया जाय तो आत्मा में अनन्त शक्ति का विकास
सकता है और वह सब कुछ करने में समर्थ भी हो सकता है।

इस बीसवें अध्ययन में जो कुछ कहा हुआ है उस सब का सार यह है
खुद के डाक्टर खुद बनो। ऐसा करने से किसी का आसरा (शरण) लेने की आवश्य
न रहेगी। आत्मा की शक्ति से आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार
ताप–कष्ट दूर हो सकते हैं। त्रयताप के विनाश हो जाने पर आत्मा में किसी प्रकार
सन्ताप नहीं रहता। संसार का कोई भी प्राणी सन्ताप नहीं चाहता। कोई भी आ
अशान्ति नहीं चाहता। सब कोई शान्ति चाहते हैं। किन्तु शान्ति प्राप्त करने के लिए
प्रकार के प्रयत्न अब तक किये हैं, यह शास्त्रीय दृष्टि से देखना चाहिए। हमारे प्रयत्नों
क्या कमी है कि जिससे चाहने पर भी सुख शान्ति हम से दूर भागती है।

इस बीसवें अध्ययन का वर्णन किस प्रकार किया गया है यह बताते हुए
इसी अध्ययन की प्रथम गाथा द्वारा परमात्मा की प्रार्थना करता हूं।

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ।
अत्थ धम्म गइं तच्चं, अणुसिट्ठिं सुणेह मे।

यह मूल सूत्र है।

गुरु शिष्य से कहते हैं कि मैं तुम्हें शिक्षा देता हूं। तुम्हे मुक्ति का मार्ग बताता हूँ। किन्तु यह कार्य में अपनी शक्ति पर ही भरोसा रख कर नहीं करता। सिद्ध और संयतियों को नमस्कार करके, उनकी शरण लेकर, उनके आधार पर यह काम करता हूं।

वैसे तो जहाँ का मार्ग पूछा जाता है वहीं का मार्ग बताया जाता है किन्तु यहां मुक्ति का मार्ग बताया जाता है। गुरु कहते है कि मैं अर्थ धर्म का मार्ग बताता हूं। पहले अर्थ का--अर्थ समझ लेना चाहिए।

अर्थ्यते प्रार्थ्यते धर्मात्मभिरिति अर्थः। स च प्रकृते मोक्षः,
संयमादिर्वा। स एदु धर्मः। तस्य गतिः ज्ञानम्
यस्यां तां अनुशिष्टिं में शृणुत इत्यर्थः॥

अर्थः—धर्मात्मा लोगों के द्वारा जिसकी चाहना की जाय वह अर्थ है। यहां अर्थ से मतलब मोक्ष या संयम से है। मोक्ष या संयम ही धर्म है। उसकी गति या मार्ग ज्ञान है। उस ज्ञान का वर्णन मुझ से सुनो।

जिसकी इच्छा की जाय उसे अर्थ कहते हैं। सामान्य-मोटी बुद्धि वाले लोग अर्थ का मतलब धन करते हैं। और धन के लिए ही रात दिन दौड़ धूप किया करते हैं। किन्तु यहां अर्थ का मतलब धन नहीं है। आप लोग मेरे पास धन लेने नहीं आये हैं। धन का मैं कतई त्याग कर चुका हूं। धन के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु आप चाहते हैं। और वही ग्रहण करने के लिए यहां आये हो। कदाचित् किसी गृहस्थ की यह मंशा हो सकती है कि महाराज के व्याख्यान श्रवण करने से या किसी अन्य बहाने से धन मिल सकता है किन्तु ये सन्त और सतियाँ जो यहां आये हुए हैं किसी भौतिक पौद्गलिक चाहना से नहीं आये हैं किन्तु परमार्थ की भावना से आये हैं। सन्त और सतियां आई है इसी से मालूम होजाता है कि अर्थ का अर्थ धन नहीं किन्तु कोई अन्य वस्तु है। वह अन्य वस्तु मुक्ति से जुदा नही हो सकती। मुक्ति संसार के बंधनों से छुटकारा पाने की इच्छा-ही वास्तविक अर्थ है।

जिसकी इच्छा की जाय वह अर्थ है। किन्तु इस में इतना और बढ़ा
चाहिए कि धर्मात्मा लोग जिसकी इच्छा करें वह अर्थ है। धर्मात्मा लोग धर्म की ही इच्छा
करते है। अतः सिद्ध हुआ कि यहां अर्थ का मतलब धर्म है। आगे और स्पष्ट कहा
कि धर्म रूपी अर्थ में जिससे गति होती है वह शिक्षा देता हूं। धर्म रूपी अर्थ में ज्ञान
गति होती है। ज्ञान द्वारा ही धर्म रूपी अर्थ प्राप्त किया जा सकता है। अतः सारे कथ
का यह भावार्थ निकलता है कि मै ज्ञान की शिक्षा देता हू। ज्ञान प्रकाश है और अज्ञा
अंधकार। ज्ञान रूपी प्रकाश से आत्मदेव के दर्शन सुलभ है।

ज्ञान का अर्थ भी बड़ा लम्बा होता है। संसार-व्यवहार का ज्ञान भी ज्ञान ही कहला
है। आधुनिक भौतिक विज्ञान भी ज्ञान ही है। किन्तु यहां कहा गया है कि धर्म रू
अर्थ में गति कराने वाले तत्त्व का ज्ञान देता हूं। अर्थात् संसार प्रपंच का ज्ञान नहीं दे
किन्तु तत्त्व का ज्ञान देता हूं। यह ज्ञान शिष्य में भी मौजूद है मगर जागृत अवस्था
नहीं है, दबा हुआ है। उस छिपे हुए ज्ञान को मै प्रकट करने की कोशिश करूंग
शिक्षा देकर उस ज्ञान को जगाऊँगा।

दीपक में तैल भी हो और बत्ती भी हो किन्तु यदि अग्नि का संयोग न हो
दीपक जल नही सकता। प्रकाश नहीं कर सकता। इसी प्रकार हर आत्मा में ज्ञान रू
प्रकाश मौजूद है मगर गुरू अथवा महापुरुष के सत्संग बिना विकसित नहीं हो सकत
महापुरुष का सत् समागम हमारे ज्ञान को विकसित करता है किन्तु ज्ञान हमारे में
मौजूद है। यदि हमारे में ज्ञान मौजूद न हो तो अनेक महापुरुष मिल कर भी कुछ
कर सकते। ज्ञान, बीज रूप में आत्मा में विद्यमान है। महापुरुष रूपी बाह्य निमित्त क
के मिलने से बीज वृक्ष का रूप धारण करता है और फलता-फूलता है। यदि दीपक में
तैल हो और न बत्ती हो तो दूसरे दीपक से भेंटने पर भी वह जल नही सकता। तैल
होने पर दूसरा दीपक सहायक हो सकता है। कहावत भी है कि खाली चूल्हे में
मारने से आंखों मे राख ही पहुँचती है। इसी प्रकार यदि आत्मा में ज्ञान शक्ति मौजूद
हो तो महापुरुप की भेंट या उनके द्वारा दी हुई शिक्षा कुछ भी कारगर नहीं हो सकती।

यहाँ यह कहा गया है कि "मै शिक्षा देता हूं"। इस से हमें समझ

चाहिए कि हमारे में शक्ति विद्यमान है इसीसे आचार्य हमें शिक्षा देते हैं। ऊसर भूमि में बीज बोने का कष्ट जानबूझ कर महापुरुष नहीं करते। हमारे में अविकसित रूप में रही हुई शक्ति का विकास करने के लिए अथवा राख में दबी हुई अग्नि को गुरु ज्ञान रूपी फूंक से प्रज्वलित करने के लिए हमे गुरु की दी हुई शिक्षा बड़ी सावधानी से सुननी चाहिए।

शिक्षा देने वाले महापुरुष ने कहा है कि--मैं सिद्ध और संयति को नमस्कार करके शिक्षा देता हूं। स्वयं शिक्षक जिन्हें नमस्कार करता हो और बाद में शिक्षा शुरू करता हो उनका स्वरूप समझ लेना आवश्क है। पहले सिद्ध शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। नवकार मंत्र में एक पद में सिद्ध को नमस्कार किया गया है और शेष चार पदों में साधु को नमस्कार किया है। अर्थात् सिद्ध और साधक दोनों को ही नमन किया गया है। यहा भी आचार्य ने सिद्ध और साधक दोनों को नमस्कार किया है।

पहले सिद्ध किसे कहते हैं यह देखलें। '**षिञ् बन्धने**' धातु से सित् शब्द बना है। इसका अर्थ यह है कि अष्ट कर्म रूपी बन्धे हुए लकड़ी के भारे को जिसने '**ध्मातम्**' यानी शुक्लध्यान रूपी जाज्वल्यमान अग्नि से जला दिया है वह सिद्ध है। अथवा '**षिधुगतौ**' से भी सिद्ध शब्द बन सकता है। जिस स्थान पर पहुँच कर फिर वहाँ से नहीं लौटना पड़ता, उस स्थान पर जो पहुँच गये है उन्हें भी सिद्ध कहते हैं।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि सिद्ध होकर भी पुनः संसार में लौट आते है। जैसे कहा है:—

ज्ञानिनो धर्म तीर्थस्य, कर्त्तारः परमंपरम् ।
गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपिभवं तीर्थ निकारतः ॥

अर्थात्—धर्मरूपी तीर्थ के कर्त्ता ज्ञानी लोग अपने तीर्थ का पराभव देखकर परम पद को पहुँच कर भी पुनः संसार में लौट आते है।

यदि सिद्धि स्थल में पहुँच कर भी वापस संसार में आ जाते हों तो वह स्थल सिद्धि ही न कहा जायगा। सिद्धि--मुक्ति तो उसे ही कहते हैं कि जहाँ पहुँच कर वापस नहीं लौटना पड़ता। कहा है—

यत्र गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

अर्थात्—जहां जाकर वापस न आना पड़े वह परम धाम है और वही सिद्धों क
स्थान है। उसे ही सिद्धि कहते हैं। जहां जाकर वापस आना पड़े वह तो संसार ही है।

व्युत्पत्ति के अनुसार सिद्ध शब्द का तीसरा अर्थ भी होता है। '**षिधु संराद्धौ**'
जो कृतकृत्य हो चुके हैं, जिनको अब कोई काम करना बाकी न रहा है, वे भी सिद्ध कहे
जाते है।

जैसे पकी हुई खिचड़ी को पुनः कोई नहीं पकाता। यदि कोई पकी हुई खिचड़ी
को पकाता है तो उसका यह काम व्यर्थ समझा जाता है। इसी प्रकार जिसने सब काम
कर लिए हैं और करने के लिए शेष कुछ नहीं रहा है वह सिद्ध है। इस प्रकार सिद्ध शब्द
के ये तीन अर्थ है। शब्द एक ही है किन्तु जैसे एक शब्द में नाना घोष होते हैं उसी
प्रकार एक शब्द के अनेक अर्थ भी हो सकते हैं।

सिद्ध शब्द का एक चौथा अर्थ भी किया जाता है। '**षिधूञ् शास्त्रे मांगल्ये वा**' इसका अर्थ है जो दूसरों को कल्याण मार्ग का उपदेश देता है और उपदेश देकर
मोक्ष को पहुंचा है वह साक्षात् सिद्ध है। शासिता अर्थात् दूसरों को उपदेश देने वाला।

यदि दूसरे को उपदेश देकर मुक्ति जाने वाले को सिद्ध कहा जायगा तो अरिहन्त
होकर जिन्होंने मुक्ति पाई है वे ही सिद्ध कहे जायंगे अन्य नहीं। किन्तु सिद्ध तो पन्द्रह प्रकार
के कहे गये हैं। इसके उपरान्त मूक केवली जो कि किसी को उपदेश नहीं देते तथा अन्त
कृत् केवली जो कि अन्तिम समय में केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति पहुंच जाते है, जिनके
लिए दूसरों को उपदेश देने का अवसर ही नहीं रहता, क्या वे सिद्ध नही कहे
जायंगे? क्या ध्यान मौन द्वारा आत्म कल्याण करने वाले महात्मा के लिए (सिद्ध
शब्द के लिए) प्रयुक्त यह शास्ता शब्द लागू नही होगा?

इसका उत्तर यह है कि जो महात्मा मौन रहकर जीवन व्यतीत करते हैं तथा
जिन्हें उपदेश देने का अवसर ही न मिला हो, वे भी जगत् का कल्याण करते ही है।
उनके लिए भी यह शास्ता शब्द लागू होता है। ध्यान मौन द्वारा मोक्ष प्राप्त करने वाले
महात्मा भी संसार को शिक्षा देते हैं और वह शिक्षा भी महान् है। संसार को मौन शिक्षा
की भी बहुत आवश्यकता है। हिमालय की गुफा में बैठकर या किसी एकान्त शान्त स्थान
में ध्यानस्थ होकर एक योगी संसार को जो सहायता पहुँचाता है और उसके द्वारा जगत् का

जो कल्याण साधता है, उसकी बराबरी बहुत उपदेश झाड़ने वाले किन्तु आचरण शून्य व्यक्ति कभी नहीं कर सकते। यह संसार अधिकतर न बोलने वालो की सहायता से ही चलता है। मूक सृष्टि के आधार पर ही यह बोलने वाली सृष्टि निर्भर रही है। पृथ्वी पानी आदि के जीव मूक ही है। ये मूक जीव ही इस बोलती हुई सृष्टि का पालन करते है। इस से यह बात समझ में आ जायगी कि उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत् का कल्याण करते ही है। वासनाओं से रहित उनकी शान्त, दान्त और संयत आत्मा से वह प्रकाश-आध्यात्मिक तेज निकला है कि जिससे आधि व्याधि और उपाधि से संतप्त आत्माओं को अपूर्व शांति मिल सकती है।

गुरोस्तु मौनं शिष्यास्तु छिन्न संशयाः

अर्थात्—गुरु के मौन होने पर भी उनकी आकृति आदि के दर्शन मात्र से संशय छिन्न भिन्न हो जाते है। नास्तिक से नास्तिक शिष्य भी गुरु की ध्यानावस्थित आकृति से आस्तिक बनने के दृष्टान्त मौजूद है। अतः यह बात सिद्ध हो जाती है कि मौखिक उपदेश न देने वाले महात्मा भी जगत का कल्याण करते ही हैं। उनके आचरण से जगत बहुत शिक्षा ग्रहण करता है।

दूसरी बात सिद्ध भगवान मोक्ष गये है इसीसे लोग मोक्ष की इच्छा करते है। यदि वे मोक्ष न पहुंचते तो कोई मोक्ष की इच्छा नही करता। वे महात्मा मन, वचन और काया को साध कर मोक्ष गये और इस तरह संसार के लोगों को अपना आदर्श रख कर मोक्ष का मार्ग बताया। ससार के प्राणियों में मुक्ति की ख्वाहिश पैदा की। अतः उनको शासिता कहा जा सकता है।

'षिधून् शास्त्रे मांगल्ये वा' में शास्ता के साथ ही साथ जो मांगलिक है वे भी सिद्ध है, कहे गये हैं। मांगलिक का अर्थ पाप नाश करने वाला होता है। **मां अर्थात् पापं गालयतीति मांगलिक**। जो पाप का नाश करने वाले हैं वे सिद्ध है।

यहां यह शका होती है कि जो पाप का नाश करने वाला है, वह सिद्ध है तो बड़े बड़े महात्मा, जो कि पाप के नाश करने वाले थे उनको पाप का उदय कैसे हुवा? उन महात्माओं को रोग तथा दुःख कैसे हुए? गज सुकुमार मुनि के सिर पर खीरे रखे गये और भगवान् महावीर को लोहीठाण की बीमारी हुई। क्या उनमें सिद्धों की मांगलिकता न थी?

बात यह है कि कष्ट पाने वाला व्यक्ति कष्ट देने वाले व्यक्ति के प्रति राग द्वे पूर्ण भावना लाता है तब तो उसकी मांगलिकता नष्ट होती है। रागद्वेष करने के कार वह मंगल रूप न रहकर अमंगलरूप बन जाता है। किन्तु जो महापुरुष क देनेवाले के प्रति प्रेम की वर्षा करता है, उसके लिए सद्‌भाव रखता है, उस सुधार की कामना करते हैं, वे सदा मांगलिक ही है। गजसुकुमार मुनि ने सि पर अग्नि के अंगारे रखने वाले का मन में बड़ा उपकार माना कि इस सोमिल ब्राह्मण मेरी शीघ्र मुक्ति में बड़ी सहायता की है। तथा भगवान् महावीर ने अपने पर तेजो लेश्या फेंकने वाले गोशालक पर क्रोध नहीं किया था। वे मंगलरूप ही बने रहे इस प्रकार उनमें मांगलिकता घटित होती है। पूर्व जन्म के बेर बदले के कार वेदना या दुःख आदि हो सकते हैं मगर उन वेदनाओं और दुखों में जो अविच रहता है वह सदा मांगलिक है।

सिद्ध भगवान् में भाव मांगलिकता है। द्रव्य मांगलिकता नहीं है। आप लो द्रव्य मंगल देखते हैं। जिसमें भाव मंगल हो वह द्रव्य मंगल जन्य चमत्कार दिखा सक है किन्तु सिद्धि पद को पाने वाले महात्मा ऐसा नहीं करते। न ऊंचे पहुँचे हुए महात् ही चमत्कार दिखाने की झंझट में पड़ते है। वे अपनी आत्म शांति में मशगुल रहते है यदि उन्हें चमत्कार दिखाने की इच्छा होती तो वे चक्रवर्ती का राज्य और सोलह २ हजा देवों की सेवा का त्याग क्यों करते और संयम क्यों लेते। चमत्कार करने वाले देव ही स्व सेवक हो तब क्या कमी रह जाती है।

जिस प्रकार सूर्य की कोई पूजा करता है और कोई उसे गाली देता है। किन् सूर्य पूजा करने वाले और गाली देने वाले को समान रूप प्रकाश प्रदान करता है। व पूजा करने वाले पर प्रसन्न नहीं होता और गाली देने वाले पर अप्रसन्न भी नहीं होता दोनों पर सम्भाव रखता हुआ अपना प्रकाश प्रदान रूप कर्त्तव्य करता रहता है। इस प्रकार सिद्ध भगवान् भी किसी की बुराई पर ध्यान न देते हुए सब का कल्याण रू मंगल करते हैं।

सिद्ध शब्द का पाँचवा अर्थ यह भी होता है कि जिनकी आदि तो है लेकिन अन्त नहीं है।

गुरू महाराज शिष्य से कहते है कि मैं ऐसे सिद्ध भगवान् को नमस्कार करके धर्मरूपी अर्थ का सच्चा मार्ग बताता हूं।

सिद्ध को नमस्कार करके सूत्रकार भाव से संयति को नमस्कार करते हैं। संयति शब्द का अर्थ साधु होता है। साधु दो प्रकार के हो सकते है। द्रव्य साधु और भाव साधु। यहां शास्त्रकार द्रव्यसाधु को नमस्कार नहीं करते मगर जो भावसाधु हैं उन्हें नमस्कार करते है। शास्त्र के रचनेवाले गणधर चार ज्ञानके स्वामी थे फिर भी वे उनको नमस्कार करते है जो भाव से संयति हो। आजकल के साधुओं को ख्याल करना चाहिए कि यदि उनमें भाव साधुता है तो गणधर भी उनको नमन करते है। भाव साधुता से ही द्रव्य साधुता शोभती है। कोरा वेष शोभा नहीं देता। गुणों के साथ वेष देदीप्यमान होता है। भाव साधुता न हो तो कुछ भी नही है।

इस बीसवे अध्ययन में जो कुछ कहा गया है वह सब शास्त्रकार ने संक्षेप में इस पहली गाथा में ही कह डाला है। पहली गाथा में सारे अध्ययन का सार किस प्रकार दिया गया है यह बात कोई विशेषज्ञ ही समझ सकता हैं। केवल जैन सूत्रों के विषय में ही यह बात नहीं है किन्तु जैनेतर ग्रन्थों में भी यह परिपाटी देखी जाती है कि सूत्र के आदि मे ही सारे ग्रंथ का सार कह दिया जाता है।

मैने कुरानशरीफ का अनुवाद देखा है। उसमें बताया गया है कि १२४ इलाही पुस्तकों का सार तोरत, एंजिल, जबूब और कुरान इन पुस्तकों में लाया गया और इन चारों का सार कुरान में लाया गया है। सारे कुरान का सार उसकी पहली आयत में है:---

बिस्मिल्लाह रहिमाने रहीम

सारे कुरान का सार इस एक ही आयत में कैसे समाया हुआ है। यह बात समझने लायक है, जब कि इस आयत में रहमान और रहीम दोनों आगये तब कुरान में और क्या रह जाता है? हिन्दु धर्म ग्रन्थों में भी कहा गया है कि '**दया धर्म का मूल है**'। यद्यपि इस शब्द में केवल दो ही अक्षर हैं किन्तु इसमें धर्म का संपूर्ण सार आगया है। दया में संपूर्ण धर्म का सार आगया है, यह बात कुरान, पुरान, वेद या आगम से तो सिद्ध होती ही है मगर हमारी आत्मा इसका सब से बड़ा प्रमाण है।

मान लीजिये कि आप एक निर्जन जगल में जा रहे है। वहां कोई व्यक्ति नंगी तलवार लेकर आपके सामने उपस्थित होता है और आपकी जान लेना चाहता है। उस समय आप उस व्यक्ति में किस बात की खामी अनुभव करेंगे। यही कि उस व्यक्ति में दया नहीं है। ठीक उसी वक्त एक दूसरा व्यक्ति उपस्थित होता है और आप दोनों के बीच में

होकर उस आततायी–हत्यारे से कहता है कि ऐ पापी ! इस व्यक्ति को मत मार । यदि तू खून का ही प्यासा है तो मुझे मार कर-अपनी प्यास बुझाले मगर इस व्यक्ति को मत मार । कहिये यह दूसरा व्यक्ति आपको कैसा मालुम देगा । इसमें आपको क्या विशेषता नजर आयगी । आप कहेंगे यह दूसरा व्यक्ति बड़ा दयालु है इसमें दया बसी है इस व्यक्ति में दया है और उस व्यक्ति में हिंसा है यह बात आपने कैसे जानी । किस प्रमाण से जानी । मानना होगा कि इसमें हमारी आत्मा ही प्रमाण है । आत्मा अपनी रक्षा चाहता है अतः रक्षण और भक्षण करने वाले को वह तुरत पहचान जाती है । दया–अहिंसा आत्मा का धर्म है । यदि आपको धर्मात्मा बनना हो तो दया को अपनाइये । शास्त्र में कहा है:—

एवं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचणम् ।

यदि तू अधिक न जाने तो इतना तो अवश्य जान कि जैसा तेरा आत्मा है वैसा ही दूसरे का भी है । जो बात तुझे बुरी लगती है वह दूसरे को भी वैसी ही लगती है। एक फारसी कवि ने कहा है कि—

ख्वाहि कि तुरा हेच बदी न आयद पेश ।
तात्वानी बदी मकुन अज कमोबेश ॥

यदि तू चाहता है कि मुझपर कोई जुल्म न करे तो जिन्हें तू जुल्म मानता है, जुल्म तू स्वयं दूसरों पर मत कर ।

यदि कोई आपको मार पीटकर आपके पास की वस्तु छीनना चाहे या बोलकर आपको ठगना चाहे अथवा आपकी बहू बेटी पर बुरी नजर करे तो आप उ जुल्मी मानोगे न ? ऐसी बातें समझने के लिए किसी पुस्तक या गुरू की जरूरत न होती । आत्मा स्वयं गवाही दे देता है कि अमुक बात भली है या बुरी । ज्ञानी कह हैं कि जिन कामों को तू जुल्म मानता है वे दूसरों के लिए मत कर । किसी का न दुखाना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, पराई स्त्री पर बुरी निगाह न करना औ आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग वस्तुएं संग्रह करके न रखना ये पांच महा नियम जिनके पालन करने से कोई जुल्मी नहीं बनता । जो बात हमें अच्छी लगती है वही दू के लिए करना चाहिये यदि आप जुल्मी न बनोगे तो दूसरा भी जुल्म करना छोड़ देगा इस बात को जरा गहराई से सोचिये । केवल दूसरे के जुल्मों की तरफ ही खयाल न क अपने आपको भी देखो । करीमा में कहा है:—

चहल साल उम्रे अज़ीजो गुजश्त।
मिजाजे तो अज हाल तिफ़ली न गश्त ॥

यानी तेरी उम्र के चालीस साल बीत गये तब भी तेरा बचपन नहीं गया। अब तो बचपन छोड़कर बात समझो। जिनको तुम जुल्म या अत्याचार मानते हो वे कार्य यदि दूसरे त्यागें या न त्यागें किन्तु यदि तुम्हें धर्मी बनना है तो तुम स्वयं ऐसे काम छोड़ दो।

कोई राजा यह कभी नहीं सोचता कि मैं अकेला ही राजा क्यों हू, सब लोग राजा क्यों नहीं है। दूसरे ने जुल्म त्यागे हैं या नहीं इसका विचार न करके जो बात बुरी है उसे हमें त्याग देना चाहिए।

सिद्ध या बिस्मिल्लाह कह कर किसी बात के शुरू करने का क्या अर्थ है ? क्या सिद्ध से कोई बात छिपी हुई रह सकती है ? सिद्ध का नाम लेकर कोई कार्य शुरू किया जाय, किन्तु हृदय में पाप रखा जाय, कपट पूर्वक कार्य किया जाय तो क्या सिद्ध का नाम लेना सार्थक है ? कभी नहीं। रहम और रहमान को जान लेने पर कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

विद्वान् लोग कहते हैं कि-कयामत के वक्त या और किसी वक्त जो मोमिन और काफिर पर रहम करता है वह रहमान है। वह रहमान है इसीलिए बिना भेद भाव के सब पर दया करता है कोई कह सकता है कि रहमान मोमिनों पर दया करे यह तो ठीक है मगर काफिरों पर दया कैसी ? काफिरों पर क्यो दया की जाय। इसका उत्तर यह है कि मोमिन और काफिर अपने अपने कामों से होते हैं। कोई हिन्दु है अतः काफिर है और कोई मुसलमान है अतः मोमिन है, यह बात नहीं है। यदि दो मुसलमान आपस में लड़ रहे हों और कोई तीसरा हिन्दु आकर उनकी लड़ाई मिटादे तो उस हिन्दु को काफिर कहा जायगा ? कदापि नहीं। और क्या लड़ने वाले उन दोनों मुसलमानों को मोमिन कहा जायगा? नहीं। काफिर और मोमिन किसी जाति विशेष में जन्म लेने से नहीं होता किन्तु जिसमें रहम-दया हो, शैतानियत का अभाव हो वह मोमिन है और जिस में रहम--दया न हो, शैतानियत हो वह काफिर है।

शास्त्र में यह कहा गया है कि—मै कल्याण की शिक्षा देता हूं। क्या यह शिक्षा केवल साधुओं के लिए ही है अथवा केवल श्रावकों के लिए ही। या सब के लिए है। जब सूर्य बिना भेद भाव के सब के लिए प्रकाश प्रदान करता है तब जिन भगवान् के ~~

सूर्यातिशायि महिमासि जिनेन्द्र लोके

हे जिनेन्द्र ! जगत् में आपकी महिमा सूर्य से भी बढ़कर है, इत्यादि कह हो, वे भगवान् जगत् में शिक्षा देने में क्या भेद भाव कर सकते हैं अनन्त महिमा भगवान् की वाणी किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होगी। सब के लिए होगी।

सूर्य सब के लिए प्रकाश करता है फिर भी यादि कोई यह कहे कि हमें प्रकाश नहीं देता, अन्धेरा देता है, तो क्या यह कथन ठीक हो सकता है ! कदापि न चिमगादड़ और उल्लू यह कहें कि हमारे लिए सूर्य किस काम का ? सूर्य के उदय पर हमारे लिए अधिक अन्धेर छा जाता है इस के लिए कहना होगा कि इस में का कोई दोप नहीं है, वह तो सब के लिए समान रूप से प्रकाश प्रदान करता है। यह उनकी प्रकृति का दोष है कि जिससे प्रकाश देने वाली किरणें भी उनके अन्धकार का काम देती है ।

सूर्य के समान ही भगवान् की वाणी सब के लाभ के लिए है। किसी प्रकृती ही उल्टी हो और वह लाभ न ले सके तो दूसरी बात है। जिनके हृदय में अभि भरा हो वे लोग भगवान् की वाणी से लाभ नहीं उठा सकते। भगवान् की वाणि किरणें ऐसे लोगों के हृदय प्रदेश में प्रकाश नही पहुँचा सकती।

भगवान् की वाणी का सहारा और लाभ किस प्रकार लिया जा सकता है बात चारित्र कथन के द्वारा समझाता हू जिससे कि सब की समझ में आ जाय। चारित्र जरिये प्रत्येक बात की समझ बहुत जल्दी पड़ती है। जो लोग तत्त्वज्ञान की बातें तरह नहीं समझ सकते उनके लिए चारितानुवाद बहुत सहायक है। यदि कोई मन् अपने हाथ में रंग लेकर कहे कि मेरे हाथ में हाथी है या घोड़ा है, तो सामान्य मनुष्य इस में गतागम न पड़ेगी। किन्तु यदि वही मनुष्य रग में पानी डाल कर उससे हाथी घोडा का चित्र बनाकर पूछे कि यह क्या है तो बड़ी सरलता से कोई भी बता सकत कि क्या है। जो चित्र बनाया गया है वह रंग ही का है। किन्तु साधारण बुद्धि व व्यक्ति उस रंग के पीछे रही हुई कर्त्ता की शक्ति विशेष को नही पहचान सकता

उसे रंग में हाथी घोड़ा नहीं दिखाई दे सकता। इसी प्रकार भगवान् की वाणी जब सीधी तरह समझ में नहीं आती तब उसे समझाने के लिए चारितानुवाद का सहारा लेना पड़ता है। चरित्र प्रथमानुयोग कहा जाता है। अर्थात् प्रथम सीढ़ी वालों के लिए यह बहुत लाभ प्रद है। मैं चरितानुयोग का कथन बहुत कठिन मानता हूं, चरित्र के द्वारा सुधार भी किया जा सकता है और बिगाड़ भी। अतः चरित्र वर्णन में बहुत सावधानी रखने की आवश्यक्ता है।

धर्म की गूढ़ बातें समझाने के लिए चरित्र वर्णन करता हूं। इस चरित्र के नायक साधु नहीं किन्तु एक गृहस्थ हैं जो अपनी पिछली अवस्था में साधु बने हैं। गृहस्थ के चरित्र का वर्णन करके महापुरुषों नें यह बता दिया है कि गृहस्थ भी कितने ऊंचे दर्जे तक धर्म का पालन करते है। साधुओं को, ग्रहण किये हुए पंच महाव्रत किस प्रकार पालन करने चाहिए यह इस से शिक्षा लेनी होगी। चरित्र नायक का नाम सेठ सुदर्शन है मेरी इच्छा इन्हीं के गुणानुवाद करने की है अतः आज से प्रारंभ करता हूं।

सिद्ध साधु को शीश नमा के, एक करूं अरदास।
सुदर्शन की कथा कहूं मैं, पूरो हमारी आस॥
धन सेठ सुदर्शन, शीयल शुद्ध पाली, तारी आतमा॥

धर्म के चार अंग हैं। दान, शील, तप और भावना। चारों का वर्णन एक साथ नही किया जा सकता अतः कथा द्वारा शील का कथन किया जाता है। शील के साथ २ गौण रूप से दान तप और भाव का भी कथन रहेगा किन्तु मुख्य कथा शील की है। जैसे नाटक दिखाने वाले यह कहते है कि आज राम का राज्याभिषेक दिखाया जायगा। किन्तु इसका अर्थ यह नही होता कि राज्याभिषेक के सिवा अन्य दृश्य न दिखाये जायगें। राज्याभिषेक मुख्य रूप से बताया जाता है किन्तु गौण रूप से अन्य दृश्य भी दिखाये जाते है। इस कथा के नायक ने मुख्यतः शील का पालन किया है अतः प्रत्येक कड़ी में उसे धन्यवाद दिया गया है। कितनी कठिनाई के समय भी चारितनायक शील धर्म से विचलित न हुए और अपना यह आदर्श चरित्र पीछे वालों के लिए छोड़ गये है।

शील का पालन करके अनन्त जीव अपना कल्याण साध चुके हैं। उन सब के चरित्र का वर्णन शक्य नही है। किसी एक के चरित्र का ही वर्णन किया जा सकता है। रंग से अनेक हाथी घोड़े चित्रित किये जा सकते है मगर जिस समय जितने की आवश्यकता

होती है उतने ही चित्रित किये जाते है। एक समय में एक का ही चरित्र कहा जा सकता है अतः सुदर्शन का चरित्र कहा जाता है।

साधारण तया शील का अर्थ स्त्री--प्रसंग या अन्य तरीकों से वीर्यनाश न करना लिया जाता है। किन्तु यह अर्थ एकांगी है। शील का पूर्ण अर्थ नहीं है। शील की व्याख्या बहुत विस्तृत है। बुरे काम से निवृत्त होकर अच्छे काम में प्रवृत्त होने को शील कहते है। कार्य के प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप दो अंग हैं बिना प्रवृत्ति के निवृत्ति नहीं हो सकती और बिना निवृत्ति के प्रवृत्ति भी शक्य नहीं है। साधु के लिए समिति हो और गुप्ति न हो अथवा गुप्ति हो और समिति न हो तो काम नही चल सकता। समिति और गुप्ति दोनों की आवश्यकता है। समिति प्रवृत्ति है और गुप्ति निवृत्ति।

यदि सूर्य आपको प्रकाश न दे, पानी प्यास न बुझाये और आग भोजन न पकाये तो आप इनकी प्रशंसा न करेंगे। इसी प्रकार यदि महापुरुष अपना ही कल्याण साध ले किन्तु लोक कल्याण के लिए प्रवृत्त न होंतो आप उनको वंदना क्यों करने लगेंगे। महापुरुष यदि जगत् कल्याण के कार्यों में भाग न लें तो बड़ा गजब हो जाय। तब संसार न मालूम किस रसातल तक पहुँच जाय।

शील का अर्थ बुरे काम छोड़ कर अच्छे काम करना है। पहले यह देखें कि बुरे काम क्या है। हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार, आवश्यकता से अधिक भोगोपभोग, शराब आदि का नशा तथा अन्य दुर्व्यसन ये बुरे काम हैं। बीड़ी, तमाखू, भंग आदि नशैली वस्तुओं का सेवन भी बुरे काम में गिना जाता है। इन सब कामों का त्याग करना संक्षेप में बुराई से निवृत्त होना कहा जाता है।

दूसरे के साथ बुरा काम करना अपनी आत्मा के साथ बुराई करना है। दूसरे को ठगना अपनी आत्मा को ठगना है। अतः किसी की हिंसा न करना, किसी से झूठ बात न कहना, किसी की बहन बेटी पर बुरी निगाह न करना किन्तु मां बहिन समान समझना, नशे से तथा जुआ आदि व्यसनों से बचना, बुरे कामों से बचना है। इन बुरे कामों से बचकर दया, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुण धारण करना तथा खान पान में गृद्धि न रखना अच्छे कामों में प्रवृत्त होना है। पर स्त्री त्यागी भी यदि स्वस्त्री से ब्रह्मचर्य का खण्डन करता है तो वह अपूर्णशील है। जो स्व पर दोनों का त्याग करता है वह पूर्ण

शील पालने वाला है। शील की यह व्याख्या भी अधूरी है। शील की व्याख्या में पांचों महाव्रत भी आ जाते हैं।

सुदर्शन सेठ करोड़ों की सम्पत्ति वाला था। फिर भी वह किस प्रकार अपने शील व्रत पर दृढ़ रहा यह यथा शक्ति और यथावसर बताने का प्रयत्न किया जायगा। इस कथा को सुनकर जो अशुभ से निवृत्त होंगे और शुभ में प्रवृत्त होंगे वे अपनी आत्मा का कल्याण करेंगे तथा सब सुख उनके दास बन कर उपस्थित रहेंगे।

राजकोट
६—७—३६ का
व्याख्यान
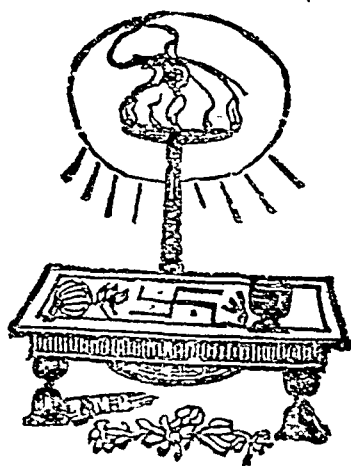
महा निर्ग्रन्थ व्याख्या

चेतन भज तू अरहनाथ ने ते प्रभु त्रिभुवन राया ।
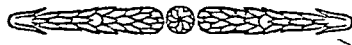
यह अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है । समय कम है (इस प्रार्थना पर विशेष विचार न करके शास्त्रीय प्रार्थना पर विचार करता हूँ । कल उत्तराध्ययन का बीसवां अध्ययन शुरू किया है । इसका नाम महा निर्ग्रन्थ अध्ययन है महान् और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ समझने है । पूर्वाचार्यों ने महान् शब्द के अर्थ हुए अनेक बातें समझाई है । उन सब का विवेचन करने जितना समय नही है । सूत्र के समान अथाह हैं । उनका पार हम जैसे कैसे पा सकते है । फिर भी कुछ कहना चाहिए अतः कहता हूँ ।

शास्त्रों में महान् आठ प्रकार के बताये गये हैं । १ नाम महान् २ स्थापना म० ३ द्रव्य महान् ४ क्षेत्र महान् ५ काल महान् ६ प्रधान महान् ७ अपेक्षा महान् ८ भ महान् । बीसवें अध्ययन में इन आठ प्रकार के महान् में से किस प्रकार का महान् गया है यह जानने के पूर्व इनका अर्थ समझ लेना ठीक होगा ।

१ नाम महान्—जिसमे महानता का कोई गुण नहीं है किन्तु केवल नाम से महान् हो वह नाम महान् है। जैन शास्त्रों ने आरम्भ और अन्त समझाने का बहुत प्रयत्न किया है। वस्तु पहले नाम ही से जानी जाती है। मगर नाम जानकर ही न बैठ जाना चाहिए किन्तु उसका स्वरूप भी जानना समझना चाहिए।

२ स्थापना महान्—किसी भी वस्तु में महानता का आरोपण कर लेना स्थापना महान् है।

३ द्रव्य महान्—द्रव्य महान् का अर्थ समझाने के लिए यह द्रष्टान्त बताया गया है कि केवल ज्ञानी अन्त समय में जब केवली समुद्घात करते है तब उनके कर्म प्रदेश चौदहराजू प्रमाण समस्त लोकाकाश में छा जाते है। उस समय उनके शरीर से निकला हुआ कार्माण शरीर रूप महास्कन्ध चौदह राजू लोक में पूर जाता है। यह द्रव्य महान् है।

४ क्षेत्र महान्—समस्त क्षेत्र में आकाश ही महान् है। आकाश लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है।

५ काल महान्—काल में भविष्य काल महान् है। जिसका भविष्य सुधरा उसका सब कुछ सुधर गया। भूत काल चाहे जैसा रहा हो वह बीती हुई बात हो गया। अतः भविष्य ही महान् है। वर्तमान तो समय मात्र का है।

६ प्रधान महान्—जो प्रधान-मुख्य माना जाता है। वह प्रधान महान् है। इसके सचित्त, अचित्त और मिश्र ये तीन भेद है। सचित्त भी द्विपद, चतुष्पद और अपद के भेद से तीन प्रकार का है। द्विपद में तीर्थंकर महान् है। चतुष्पद में सरभ अर्थात् अष्टापद पक्षी महान् है। अपद में पुण्डरीक-कमल महान् है। वृक्षादि अपद जीवों में कमल महान् है। अचित्त महान् मे चिन्तामणि रत्न महान् है। मिश्र महान् में राज्य संपदा युक्त तीर्थङ्कर का शरीर महान् है। तीर्थंकर का शरीर तो दिव्य होता ही है किन्तु वे जो वस्त्राभूषणादि धारण करते हैं वे भी महान् हैं। स्थापना के कारण वस्तु का महत्त्व बढ़ जाता है। अतः मिश्र महान् में वस्त्राभूषण युक्त तीर्थंकर शरीर है।

७ प्रतीत्य अपेक्षा महान्—सरसों की अपेक्षा चना महान् है और चने की अपेक्षा बेर महान् है।

८ भाव महान्—टीकाकार कहते हैं कि प्रधानता से क्षायिकभाव महा और आश्रय की अपेक्षा पारिणामिक भाव महान् है। पारिणामिक भाव के आश्रित और अजीव दोनों हैं किसी आचार्य का यह भी मत है कि आश्रय की दृष्टि से उदय महान् है। क्योंकि संसार के अनन्त जीव उदय भाव के ही आश्रित हैं। इस प्रकार जुदा मत है। किन्तु विचार करने से मालूम होता है कि आश्रय की अपेक्षा पारिण भाव महान् है।। इस में सिद्ध और संसारी दोनों प्रकार के जीव आ जाते हैं। प्रधानता से क्षायिक भाव और आश्रय से पारिणामिक भाव महान् है।

यहां महा निर्ग्रन्थ कहा गया है सो द्रव्य क्षेत्र आदि की दृष्टि से नहीं किन्त की दृष्टि से कहा गया है। जो महा पुरुष पारिणामिक भाव से क्षायिक में वर्तते है महान कहा है।

अब निर्ग्रन्थ शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिये। ग्रन्थ शब्द का अर्थ ह गांठ। गांठें दो प्रकार की होती है। द्रव्य गांठ और भाव गांठ। जो द्रव्य और भाव प्रकार के बंधनों से रहित होता है उसे निर्ग्रन्थ कहते है। द्रव्य ग्रन्थी नौ प्रकार और भाव ग्रन्थी १४ चौदह प्रकार की है।

कोई व्यक्ति द्रव्य ग्रन्थी अर्थात् धन दौलत स्त्री पुत्र मकानादि छोड़दे किन्तु ग्रन्थी अर्थात् क्रोधमानादि विकार न छोड़े तो वह निर्ग्रन्थ न कहा जायगा। निर्ग्रन्थ है लिये निश्चय और व्यवहार दोनों प्रकार की ग्रन्थी छोड़ना आवश्यक है। यह बात र कि सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते है और उनमे गृहलिङ्ग सिद्ध भी होते है जो द्रव्य परिग्रह नहीं किन्तु वे भाव की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं। द्रव्य से तो स्वलिङ्गी ही सिद्ध होत जिन्होने द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के बंधन या ग्रन्थी छोड़दी है वे निर्ग्रन्थ है जिन्होंने सर्वथा प्रकार से ग्रन्थी परिग्रह का त्याग कर दिया है वे महा निर्ग्रन्थ हैं। को ग्रन्थी को छोड़ता है तो कोई भाव ग्रन्थी को। अतः यहां यह समझ लेना चाहिये जिन्हों ने दोनों प्रकार की गुंथियां छोड़ दी हैं वे महानिर्ग्रन्थ हैं।

ऐसे महान् निर्ग्रथ के चरित्र का आश्रय ले कर गुरु शिष्य को देते हैं। कहते हैं—

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ। इत्यादि

अर्थात्—मै अर्थ की शिक्षा देता हूं। गृहस्थ लोग अर्थ का मतलब धन करते है किन्तु यहां धन कमाने की शिक्षा नहीं दी जाती किन्तु सब सुखों का मूल स्रोत रूप धर्म की शिक्षा दी जाती है। निर्ग्रंथ धर्म की शिक्षा देता हू।

आज कल के बहुत से लोग जो कोई उपदेशक आता है उसी के बन बैठते है। किन्तु शास्त्र कहते है कि तुम किसी व्यक्ति विशेप के अनुयायी नहीं हो। तुम निर्गन्थ धर्म के अनुयायी हो। जो निर्गन्थ धर्म की बात कहे उसे मानो और जो इस के विपरीत कहे उसे मत मानो। निर्ग्रन्थ धर्म का प्रतिपादन निर्ग्रन्थ प्रवचन करते है। निर्ग्रन्थ प्रवचन द्वादशांगों में विद्यमान है। जो शास्त्र या ग्रन्थ द्वादश अंगों में रही हुई वाणी का समर्थन करते है या पुष्टि करते है वे निर्ग्रन्थ प्रवचन ही है। किन्तु जो ग्रंथ बारह अंगो की वाणी का खण्डन करते हों उन मे प्रतिपादित किसी भी सिद्धान्त के विरूद्ध प्ररूपणा करते हों वे निर्ग्रन्थ प्रवचन नहीं है। जो निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुयायी होगा वह ऐसे किसी ग्रंथ या शास्त्र को न मानेगा जो द्वादशांग वाणी से समर्थित न हो। मैं निर्ग्रंथ प्रवचन से मिलती हुई सभी बातें मानता हूं चाहे वे किसी भी ग्रंथ या शास्त्र में कही गई हों। निर्ग्रन्थ प्रवचन से विरूद्ध कोई बात मानने के लिए मै तैय्यार नहीं हूं।

शास्त्र के आरंभ में चार बातें होना जरूरी है। इन चारों बातों को अनुबन्ध चतुष्टय कहा गया है। वे चार बातें ये है। **१ प्रवृत्ति २ प्रयोजन ३ सम्बन्ध ४ अधिकारी।** किसी भी कार्य की प्रवृत्ति के विषय में पहले विचार किया जाता है। किसी नगर में प्रवेश करने के पूर्व उसके द्वार का पता लगाया जाता है। यदि द्वार न हो तो नगर में नही जाया जा सकता। अनुबन्ध चतुष्टय में कही गई चार बातों का विचार रखने से शास्त्र में सुख से प्रवृत्ति हो सकती है। अनुबंध चतुष्टय से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है। जैसे लाखों मन अनाज और हजारों गज कपड़े की परीक्षा उनके नमूने से हो जाती है। शास्त्र में जो कुछ कहा जाने वाला हो उनकी वानगी प्रथम गाथा में ही बतादी जाती है जिससे वाचकों को मालूम हो जाता है कि अमुक ग्रंथ में क्या विषय होगा।

पहले प्रवृत्ति होना चाहिए। अर्थात् यह शास्त्र वाचक को कहां ले जायगा उसका कोई उद्देश्य होना चाहिए। किस मकसद को लेकर ग्रंथ आरंभ किया जाता है यह पहले बताना चाहिए। आप जब घर से बाहर निकलते है तब कोई न कोई उद्देश्य जरूर नक्की कर लेते है कि अमुक स्थान पर जाना है यह बात अलग है कि उद्देश्य भिन्न भिन्न हो

सकते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि हर प्रवृत्ति का कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता
दूध दही लेने के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति दूध दही मिलने के स्थान की तरफ ज
और शाक भाजी के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति शाक मार्केट की ओर जायगा
जिस उद्देश्य से निकला है वह उसकी पूर्ति जिधर होती है उधर ही जाता है।
मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ा है वह मुक्ति की ओर जायगा अतः प्रथम शास्त्र का
बताया जाता है।

शास्त्र का उद्देश्य अर्थात् विषय जान लेने के बाद प्रयोजन जानना जरूरी
इस शास्त्र के पढ़ने से किस प्रयोजन की सिद्धि होगी यह बात दूसरे नम्बर पर है। प्र
के बाद अधिकारी का विचार किया जाता है। इस शास्त्र का अध्ययन-मनन करने के
कौन व्यक्ति पात्र है और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना चा
किस प्रसंग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहां से ली गई है, इस शास्त्र का कहने
कौन है और सुनने वाला कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारों बातों से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है यह पहले कह दिया
है। इस महा निर्ग्रंथ अध्ययन में ये चारों बातें हैं, यह बात इस के नाम से ही प्रकट
अभी समय कम है अतः फिर कभी अवसर होने पर अपनी बुद्धि के अनुसार यह ब
की चेष्टा करूँगा कि किस प्रकार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन में समावेश है।

अब इसी बात को व्यावहारीक ढंग से कहा जाता है जिससे कि सामान्य स
वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ सकें। यह सब की इच्छा रहती है कि महान् पुरुष
सेवा की जाय लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भागवत में कहा है कि

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितांसंगिसंगम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये॥

अर्थ—मुक्ति का द्वार महान् पुरुषों की सेवा करना है और नरक द्वार कामि
की संगति करने वाले की सोवत करना है। महान् वे है जो समचित्त है, प्रशान्त
क्रोध रहित है, सब के मित्र और साधु चरित है।

महान् पुरुष की सेवा को मोक्ष का द्वार बताया गया है और कनक कामिनी
फंसे हुओं की सेवा को नरक का द्वार। इस पर से हमारी उत्सुकता बढ़ जाती है कि मह
पुरुष कौन है जिसकी उपासना करने से हमारे बंधन टूट जाते हैं। जो बड़ी २ जा

भोगते हैं, अच्छे गहने और कपड़े पहनते हैं, आलीशान बंगलों में निवास करते है, उन्हें महान् समझें अथवा किन्हीं दूसरों को ।

जैन शास्त्रानुसार इस का खुलासा किया ही जायगा किन्तु पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ लें । भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की उपाधि वालों को महान् नहीं मानना चाहिए । महान् उसे समझना चाहिए जो समचित्त हो । महान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए । शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए । जिसका मन आत्मा में हो, पुद्गल में न हो वह समचित्त है और वही महान् भी है ।

समचित्त का अर्थ जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही मानना भी है । आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड़ पदार्थ पुद्गल रूप है । इन दोनों को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी जुदा २ मानना समचित्त का लक्षण है । कोई यह शका कर सकता है कि कार्माण शरीर की अपेक्षा से संसारी जीव के पीछे अनादि काल से उपाधि लगी हुई है जिससे यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है, यह मेरा मुख है, आदि रूप से जड़ वस्तुओं को भी अपनी मानता है तब वह समचित्त कैसे रहा । यह ठीक है कि उपाधि के कारण जीवात्मा परवस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधिको उपाधि मानना यह भी समचित्त का लक्षण है ।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को कंकर कहे और कंकर को रत्न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है । जब कि रत्न और कंकर दोनों ही जड़ वस्तु है । कोई व्यक्ति जंगल में जा रहा था । भ्रमवश उसने सीप को चांदी मान लिया और चांदी को सीप । उसके मान लेने से सीप चांदी नहीं हो गई और न चांदी ही सीप होगई । किसी के उल्टा मान लेने से वस्तु अन्यथा नहीं हो जाता । किन्तु ऐसा मानने या कहने वाला जगत् में मूर्ख गिना जाता है । इसी प्रकार जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कहने मानने वाले भी अज्ञानी समझे जाते हैं । इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा तेरा कहा करता है । जो इस प्रकार की उपाधि में फंसे हैं वे महान् नहीं है । वे जड़ पदार्थ के गुलाम है । वे आत्मानदी नहीं कहे जा सकते । महान् वे हैं जो खुद के शरीर को भी अपना नही मानते । अन्य वस्तुओं के लिए तो कहना ही क्या । व्यावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान, नाक आदि कहेंगे मगर निश्चय में वे जानते हैं कि ये सब हमारे नही हैं । कहने का सारांश यह है कि समचित्त वाले उपाधि को उपाधि मानते है ।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् की सेवा किस लिए करें ? कोई यह ख्याल करके महापुरुष की सेवा करे कि वे उसके कान में मंत्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ धर

सकते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि हर प्रवृत्ति का कोई न कोई उद्देश्य जरूर होता है दूध दही लने के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति दूध दही मिलने के स्थान की तरफ जाय और शाक भाजी के इरादे से निकला हुआ व्यक्ति शाक मार्केट की ओर जायगा। जिस उद्देश्य से निकला है वह उसकी पूर्ति जिधर होती है उधर ही जाता है जिस मुक्ति पाने के लिए घर छोड़ा है वह मुक्ति की ओर जायगा अतः प्रथम शास्त्र का उद्दे बताया जाता है।

शास्त्र का उद्देश्य अर्थात् विषय जान लेने के बाद प्रयोजन जानना जरूरी है इस शास्त्र के पढ़ने से किस प्रयोजन की सिद्धि होगी यह बात दूसरे नम्बर पर है। प्रयोज के बाद अधिकारी का विचार किया जाता है। इस शास्त्र का अध्ययन मनन करने के लि कौन व्यक्ति पात्र है और कौन अपात्र है। इसके बाद शास्त्र का सम्बन्ध बताना चाहिए किस प्रसंग से यह शास्त्र बना है, कौन वस्तु कहां से ली गई है, इस शास्त्र का कहने वाल कौन है और सुनने वाला कौन है आदि बताया जाना चाहिए।

इन चारों बातों से शास्त्र की परीक्षा भी हो जाती है यह पहले कह दिया गय है। इस महा निर्ग्रंथ अध्ययन में ये चारों बातें हैं, यह बात इस के नाम से ही प्रकट है अभी समय कम है अतः फिर कभी अवसर होने पर अपनी बुद्धि के अनुसार यह बता की चेष्टा करूँगा कि किस प्रकार अनुबन्ध चतुष्टय का इस अध्ययन में समावेश है।

अब इसी बात को व्यावहारीक ढंग से कहा जाता है जिससे कि सामान्य समझ वाले व्यक्ति भी सरलता से समझ सकें। यह सब की इच्छा रहती है कि महान् पुरुष की सेवा की जाए लेकिन महान् का अर्थ समझ लेना चाहिए। भागवत में कहा है कि

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितांसंगिसंगम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

अर्थ—मुक्ति का द्वार महान् पुरुषों की सेवा करना है और नरक द्वार कामिनी की संगति करने वाले की सोबत करना है। महान् वे हैं जो समचित्त हैं, प्रशान्त हैं, क्रोध रहित है, सब के मित्र और साधु चरित है।

महान् पुरुष की सेवा को मोक्ष का द्वार बताया गया है और कनक कामिनी में फंसे हुओं की सेवा को नरक का द्वार। इस पर से हमारी उत्सुकता बढ़ जाती है कि महान् पुरुष कौन है जिसकी उपासना करने से हमारे बंधन टूट जाते हैं। जो बड़ी २ जागीरें

भोगते है, अच्छे गहने और कपड़े पहनते हैं, आलीशान बंगलों में निवास करते है, उन्हें महान् समझें अथवा किन्हीं दूसरों को ।

जैन शास्त्रानुसार इस का खुलासा किया ही जायगा किन्तु पहले भागवत पुराण के अनुसार महापुरुष की व्याख्या समझ लें । भागवत पुराण कहता है कि इस प्रकार की उपाधि वालों को महान् नहीं मानना चाहिए । महान् उसे समझना चाहिए जो समचित्त हों । महान् पुरुष का चित्त सम होना चाहिए । शत्रु और मित्र पर समभाव होना चाहिए । जिसका मन आत्मा में हो, पुद्गल में न हो वह समचित्त है और वही महान् भी है ।

समचित्त का अर्थ जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही मानना भी है । आत्मा चैतन्य स्वरूप है और जड़ पदार्थ पुद्गल रूप है । इन दोनों को जुदा मानना तथा इनके धर्म भी जुदा २ मानना समचित्त का लक्षण है । कोई यह शंका कर सकता है कि कार्मण शरीर की अपेक्षा से संसारी जीव के पीछे अनादि काल से उपाधि लगी हुई है जिससे यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है, यह मेरा मुख है, आदि रूप से जड़ वस्तुओं को भी अपनी मानता है तब वह समचित्त कैसे रहा । यह ठीक है कि उपाधि के कारण जीवात्मा परवस्तु को भी अपनी कहता है लेकिन उपाधिको उपाधि मानना यह भी समचित्त का लक्षण है ।

यदि कोई व्यक्ति रत्न को कंकर कहे और कंकर को रत्न कहे तो वह मूर्ख गिना जाता है । जब कि रत्न और कंकर दोनो ही जड़ वस्तु है । कोई व्यक्ति जंगल में जा रहा था । भ्रमवश उसने सीप को चांदी मान लिया और चांदी को सीप । उसके मान लेने से सीप चांदी नहीं हो गई और न चांदी ही सीप होगई । किसी के उल्टा मान लेने से वस्तु अन्यथा नहीं हो जाता । किन्तु ऐसा मानने या कहने वाला जगत् में मूर्ख गिना जाता है । इसी प्रकार जड़ को चैतन्य और चैतन्य को जड़ कहने मानने वाले भी अज्ञानी समझे जाते हैं । इसी अज्ञान के कारण जीव मेरा तेरा कहा करता है । जो इस प्रकार की उपाधि में फंसे हैं वे महान् नहीं है । वे जड़ पदार्थ के गुलाम है । वे आत्मानंदी नहीं कहे जा सकते । महान् वे हैं जो खुद के शरीर को भी अपना नहीं मानते । अन्य वस्तुओं के लिए तो कहना ही क्या । व्यावहारिक भाषा से ज्ञानी जन भी मेरा शरीर, मेरा कान, नाक आदि कहेंगे मगर निश्चय में वे जानते हैं कि ये सब हमारे नही हैं । कहने का सारांश यह है कि समचित्त वाले उपाधि को उपाधि मानते है ।

अब इस बात पर भी विचार करें कि महान् की सेवा किस लिए करें ? कोई यह खयाल करके महापुरुष की सेवा करे कि वे उसके कान में मंत्र फूंक देंगे या सिर पर हाथ धर

देगे तो वह ऋद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है । यह महान पुरुष की सेवा नहीं गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी । जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फंसा हुआ हूं, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूं, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊं, उसकी सेवा सफल है । ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है ।

समचित्त वालों को कोई लाखों गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नहीं आता । कहते है कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठजी के बाजार में और शायद उन्हीं के मकान में विराजते थे । उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था, और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी । पूज्यश्री की प्रशंसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भवना पैदा हुई । अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ । उस समय पूज्यश्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्मक्रियाएं कर रहे थे उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दी । उसकी गालियां ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे । किन्तु पूज्यश्री समचित्त थे । वे गालियां सुनकर भी विकृत न हुए । हँसते ही रहे । उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नज़र न आये । आखिर वह मुसलमान हाथ जोड़ कर पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है। वास्तव में आप सच्चे फकीर है । माफी मांगकर वह चला जाता है ।

लेक्चर झाड़ते वक्त श्रोताओ को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बड़ा सरल है किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आये तब प्रशान्त रहना बड़ा कठिन है । महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहन शीलता दिखाता है । कोई पूछ सकता है कि क्या दूसरों की गालियाँ सुनते रहना और उनकी उदण्डता में सहायता करना सहन शीलता है । हाँ, महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित रहता है महान् उन गालियों को अपने लिए नहीं मानते । वे उनमें से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते है। जब उनसे कोई यह कहे कि **"ओ दुष्ट यह क्या करते हो"** तब वे अपने सम्बोधन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते है । महान् पुरुष अपने लिये दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दुष्ट बनता है वे कार्य मुझ में तो नहीं पाये जाते । यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जाती

तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उप-
ार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने
ी कोई सामग्री नहीं है तो वे खयाल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह
िसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और
ल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य
यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु
स में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रक्खा है। किसी ने आपको बुलाने के
लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज
ोंगे ! नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे
ाले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी खयाल कर सकते हैं
कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा
विचार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसंग ही। इसके विपरीत
यदि आपने यह खयाल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे
कहता है, इसकी भूल का मज़ा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको
अपने सिर पर बांधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न
हें। सर्वत्र शांति छा जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते
हैं कि एक समझता है 'मै ऐसा नहीं हूं फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'।
इसके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मै ऐसा हूं ही नहीं तब इसका ऐसा कहना
व्यर्थ है, तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नहीं हो सकता आप लोग
निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह गुण अपनाओ
और समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण करो। संसार में कोई किसी का अपमान नहीं कर
सकता। हमारा आत्मा ही हमारा अपमान करता है।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते ध्रुवं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थ—हमारी आत्मा ने पहले शुभ या अशुभ जो भी कृत्य किया है उसीका
फल अब मिल रहा है। यदि यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर

देंगे तो वह ऋद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है । यह महान पुरुष की सेवा नहीं गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी । जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फंसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूं, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊं, उसकी सेवा सफल है । ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है ।

समचित्त वालों को कोई लाखों गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नहीं आता । कहते हैं कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठ के बाजार में और शायद उन्हीं के मकान में विराजते थे । उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था, और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी । पूज्यश्री की प्रशंसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भावना पैदा हुई । अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ । उस समय पूज्यश्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्मक्रियाएं कर रहे थे उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दीं । उसकी गालियां ऐसी थीं कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे । किन्तु पूज्यश्री समचित्त थे । वे गालियां सुनकर भी विकृत न हुए । हँसते ही रहे । उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नज़र न आये । आखिर वह मुसलमान हाथ जोड़ कर पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है वास्तव में आप सच्चे फकीर हैं । माफी मांगकर वह चला जाता है ।

लेक्चर झाड़ते वक्त श्रोताओं को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बड़ा सरल है किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आये तब प्रशान्त रहना बड़ा कठिन है । महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहन शीलता दिखाता है । कोई पूछ सकता है कि क्या दूसरों की गालियाँ सुनते रहना और उनकी उदण्डता में सहायता करना सहन शीलता है । हाँ महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित रहता है महान् उन गालियों को अपने लिए नहीं मानते । वे उनमें से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते हैं जब उनसे कोई यह कहे कि **"ओ दुष्ट यह क्या करते हो"** तब वे अपने सम्बोधन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते हैं । महान् पुरुष अपने लिए दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दुष्ट बनता है वे कार्य मुझ में तो नहीं पाये जाते । यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जाती

तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उप-
ार मानते हैं, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने
ी कोई सामग्री नहीं है तो वे खयाल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह
सी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और
ल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य
क्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु
ह में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रक्खा है। किसी ने आपको बुलाने के
ए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज
ंगे ! नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे
ले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी खयाल कर सकते हैं
क भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा
िचार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसंग ही। इसके विपरीत
दि आपने यह खयाल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे
हता है, इसकी भूल का मज़ा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको
पने सिर पर बांधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न
हें। सर्वत्र शांति हो जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते
ैं कि एक समझता है 'मै ऐसा नहीं हूं फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'।
सके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मै ऐसा हूं ही नहीं तब इसका ऐसा कहना
यर्थ है, तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नहीं हो सकता आप लोग
नर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह गुण अपनाओ
ौर सहनशील बन कर आत्मा का कल्याण करो। संसार में कोई किसी का अपमान नहीं कर
कता। हमारा कर्म ही हमारा अपमान करता है।

देंगे तो वह ऋद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है । यह महान पुरुष की सेवा नहीं गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी । जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फंसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूं, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊं, उसकी सेवा सफल है । ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है ।

समचित्त वालों को कोई लाखों गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विकार नहीं आता । कहते हैं कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठजी के बाजार में और शायद उन्हीं के मकान में विराजते थे । उस समय रतलाम बहुत उन्नत शहर माना जाता था, और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी । पूज्यश्री की प्रशंसा सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भावना पैदा हुई । अवसर देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ । उस समय पूज्यश्री स्वाध्याय तथा अन्य धर्मक्रियाएं कर रहे थे उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अनेक गालियां दी । उसकी गालियां ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे । किन्तु पूज्यश्री समचित्त थे । वे गालियां सुनकर भी विकृत न हुए । हँसते ही रहे । उनके चेहरे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नज़र न आये । आखिर वह मुसलमान हाथ जोड़ कर पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है वास्तव में आप सच्चे फकीर हैं । माफी मांगकर वह चला जाता है ।

लेक्चर झाड़ते वक्त श्रोताओं को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बड़ा सरल किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आये तब प्रशान्त रहना बड़ा कठिन है । महान् वह है जो सहन करने के अवसर पर सहन शीलता दिखाता है । कोई पूछ सकता है कि क्या दूसरों की गालियाँ सुनते रहना और उनकी उदण्डता में सहायता करना सहन शीलता है । महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित्त रहता है महान् उन गालियों को अपने लिए नहीं मानते । वे उनमें से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते हैं जब उनसे कोई यह कहे कि **"ओ दुष्ट यह क्या करते हो"** तब वे अपने सम्बोधन में कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते हैं । महान् पुरुष अपने लिए दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दुष्ट बनता है वे कार्य मुझ में तो नहीं पाये जाते । यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जा

तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उपकार मानते है, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने की कोई सामग्री नहीं है तो वे खयाल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते है कि यह किसी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और भूल करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते है। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य व्यक्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु इस में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रक्खा है। किसी ने आपको बुलाने के लिए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज होंगे! नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे वाले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी खयाल कर सकते हैं कि भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा विचार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसंग ही। इसके विपरीत यदि आपने यह खयाल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे कहता है, इसकी भूल का मज़ा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको अपने सिर पर बांधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न हों। सर्वत्र शांति छा जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते हैं कि एक समझता है 'मैं ऐसा नहीं हूं फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'। इसके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मै ऐसा हूं ही नहीं तब इसका ऐसा कहना व्यर्थ है, तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नहीं हो सकता आप लोग निर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह गुण अपनाओ और समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण करो। संसार में कोई किसी का अपमान नहीं कर सकता। हमारा आत्मा ही हमारा अपमान करता है।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते ध्रुवं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थ—हमारी आत्मा ने पहले शुभ या अशुभ जो भी कृत्य किया है उसीका फल अब मिल रहा है। यदि यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर

देगे तो वह ऋद्धि शाली हो जायगा महान् पुरुष का अपमान करना है। यह महान पुरुष की सेवा नही गिनी जायगी किन्तु माया की सेवा गिनी जायगी। जो इस भावना से महान पुरुष की सेवा करता है कि मैं अनन्त काल से संसार की माया जाल में फंसा हुआ हूँ, अज्ञान के कारण दुःख सहन कर रहा हूं, जड़ को अपना मान बैठा हूं, इन सब से महापुरुष की सेवा करके छुटकारा पाऊ, उसकी सेवा सफल है। ऐसी सेवा ही मुक्ति का द्वार है।

समचित्त वालों को कोई लाखों गालियां दे तो भी उनके मन में किंचित् विका नहीं आता। कहते है कि एक बार पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज रतलाम शहर में सेठों के बाजार में और शायद उन्हीं के मकान में विराजते थे। उस समय रतलाम बहुत उन्न शहर माना जाता था, और सेठ भोजाजी भगवान् की खूब चलती थी। पूज्यश्री की प्रश सुनकर एक मुसलमान भाई के मन में उनकी परीक्षा लेने की भवना पैदा हुई। अवस देखकर वह एक दिन उनके ठहरने के मकान पर उपस्थित हुआ। उस समय पूज्यश्री स्वाध्या तथा अन्य धर्मक्रियाएं कर रहे थे उस मुसलमान ने जैसी उसके मन में आई वैसी अने गालियां दी। उसकी गालियां ऐसी थी कि सुनने वाले को गुस्सा आये बिना न रहे। कि पूज्यश्री समचित्त थे। वे गालियां सुनकर भी विकृत न हुए। हँसते ही रहे। उनके चे पर किसी प्रकार की तब्दीली के चिह्न नज़र न आये। आखिर वह मुसलमान हाथ जोड़ पूज्यश्री से कहता है कि आप सचमुच वैसे ही हैं जैसी मैने आपकी प्रशंसा सुनी है वास्तव में आप सच्चे फकीर है। माफी मांगकर वह चला जाता है।

लेक्चर झाड़ते वक्त श्रोताओं को प्रशान्त रहने का उपदेश देना बड़ा सरल किन्तु प्रशान्त रहने का मौका आये तब प्रशान्त रहना बड़ा कठिन है। महान् वह है सहन करने के अवसर पर सहन शीलता दिखाता है। कोई पूछ सकता है कि क्या दूस की गालियाँ सुनते रहना और उनकी उदण्डता में सहायता करना सहन शीलता है। महान् पुरुष वह है जो गालियाँ सुनते वक्त भी शान्तचित रहता है महान् उन गालियों अपने लिए नहीं मानते। वे उनमें से भी अपने अनुकूल सार बात ग्रहण कर लेते है जब उनसे कोई यह कहे कि **"ओ दुष्ट यह क्या करते हो"** तब वे अपने सम्बोधन कहे हुए दुष्ट विशेषण से भी कुछ न कुछ नसीहत ग्रहण करते है। महान् पुरुष अपने लि दुष्ट शब्द का प्रयोग सुनकर यह विचार करते हैं कि जिन कार्यों के करने से मनुष्य दु बनता है वे कार्य मुझ में तो नहीं पाये जाते। यदि दुष्टता कि कोई बात उनमें पाई जा

तो वे आत्म निरीक्षण करके उसे बाहर निकाल फेंकते हैं और दुष्ट कहने वाले का उप-
र मानते हैं, किन्तु यदि उन्हें आत्म निरीक्षण के बाद यह ज्ञात हो कि उनमें दुष्ट बनाने
। कोई सामग्री नहीं है तो वे खयाल करके दुष्ट कहने वाले को माफ कर देते हैं कि यह
सी अन्य के लिए कहता होगा अथवा भूल या अज्ञान से कह रहा होगा। अज्ञानी और
ऊ करने वाले सदा क्षमा करने योग्य होते हैं। मेरे समान वेष भूषा वाले किसी अन्य
क्ति को दुष्टता करते देखकर इसने मेरे लिए भी दुष्ट शब्द का व्यवहार किया है। किन्तु
ा में इसकी भूल है। यह सोचकर महान् अपनी महत्ता का परिचय देते हैं।

मान लीजिये आपने सफेद साफा बांध रक्खा है। किसी ने आपको बुलाने के
ए पुकारा कि ओ काले साफे वाले इधर आओ। क्या आप यह बात सुनकर नाराज
गे! नहीं। आप यही विचार करेंगे कि मेरे सिरपर सफेद साफा है और यह काले साफे
ले को बुला रहा है सो किसी अन्य को बुलाता होगा अथवा यह भी खयाल कर सकते हैं
ा भूल से सफेद शब्द के बजाय काला शब्द इसके मुख से निकल गया है। ऐसा
चार करने पर न क्रोध आवेगा और न नाराज होने का प्रसंग ही। इसके विपरीत
दि आपने यह खयाल कर लिया कि यह मनुष्य मुझे काले साफे वाला कैसे
हता है, इसकी भूल का मज़ा इसे चखाना चाहिए तो मानना होगा कि आपको
पने सिर पर बांधे हुए सफेद साफे पर विश्वास ही नहीं है।

यदि लोग इस सिद्धान्त को अपना लें तो संसार में झगड़े टंटे ही न
ं। सर्वत्र शांति छा जाय। पिता पुत्र या सास बहू में झगड़े इसी कारण होते
: कि एक समझता है 'मै ऐसा नहीं हूं फिर भी मुझे ऐसा कैसे कह दिया'।
सके बजाय यदि यह समझने लगे कि जब मै ऐसा हूं ही नहीं तब इसका ऐसा कहना
पर्थ है, तब अशांति या झगड़े का कोई कारण खड़ा ही नहीं हो सकता आप लोग
नेर्ग्रन्थ मुनियों की सेवा करने वाले हो, अतः सहनशीलता का यह गुण अपनाओ
मौर समचित्त बन कर आत्मा का कल्याण करो। संसार में कोई किसी का अपमान नहीं कर
कता। हमारा आत्मा ही हमारा अपमान करता है।

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते ध्रुवं स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा॥

अर्थ—हमारी आत्मा ने पहले शुभ या अशुभ जो भी कृत्य किया है उसीका
फल अब मिल रहा है। यदि यह माना जाय कि दूसरा व्यक्ति हमारा शुभ या अशुभ कर

रहा है तो खुद का किया हुआ कृत्य व्यर्थ हो जायगा।

कहने का सारांश यह है कि जो प्रसंग पर क्रोधादि विकारों को काबु में रख सके और सामने वाले को अपने प्रेम पूर्ण बर्ताव से जीत सके वही महान् है और वही समर्थ भी है। ऐसे पुरुष जड़ पदार्थों के वश में नहीं होते। वे यह सोचते हैं कि

जीव नावि पुग्गली नैव पुग्गल कदा पुग्गलाधार नहीं तास रंगी।
परतणो ईशनहीं अपर ए एश्वर्यता वस्तु धर्मे कदा न परसंगी॥

श्री देवचन्द्र चौवीसी

जिस व्यक्ति की परमात्मा के साथ लौ लगी होगी वह यह सोचेगा कि मैं **नहीं हूं और पुद्गल भी मेरे नहीं है। मैं पुद्गलों का** मालिक बन कर भी नहीं चाहता तो उनका गुलाम होने की बात ही क्या है?

आज लोगों को जो दुःख है वह पुद्गलों का ही है। वे पुदगलों के गुलाम **रहे है। यदि धैर्य रखा जाय** तो पुद्गल उनके गुलाम बन सकते है। किन्तु लोग धैर्य। कर पुद्गलों के पीछे पड़े हुए है इसी से दुःख बढ़ रहा है, यह दुःख दूसरों का लाया हुआ नहीं है किन्तु अपने खुद के अज्ञान के कारण से ही है।

श्री समयसार नाटक में कहा है किः—

कहे एक सखी सयानी, सुनरी सुबुद्धि रानी, तेरो पति दुःखी—
लग्यो और यार है
महा अपराधी छहों माहीं एक नर सोई दुःख देत लाल—
दीसे नाना पर है।
कहे आली सुमति कहा दोष पुद्गल को आपनी हो भूल लाल—
होता आपा वार है।
खोटो नाणो आपको शराफ कहा लागे वीर काहुको न दोष—
मेरो भोंदू भरतार है।

इस प्रकार सब दोष या मूर्खता हमारी आत्मा की ही है। पुद्गलों का क्या दोष अतः पुद्गलों पर से ममता छोडो। हाय २ करने से कुछ लाभ न होगा।

अब सुदर्शन की कथा कही जाती है। मुझे सुदर्शन से किसी प्रकार का लेन-देन नहीं है। पुद्‌गल को छोड़नेवाले सब महात्माओं को मेरा नमस्कार है। सुदर्शन ने भी पुद्‌गलों पर से ममता हटाई है अतः उसका गुणानुवाद किया जाता है और धन्य धन्य कहा जाता है। पुद्‌गल माया को छोडकर जो महात्मा आगे बढे हैं उनको नमस्कार करने से हमारा आत्मा निर्मल बनता है। और आगे बढ़ता है।

चम्पापुरी नगरी अति सुन्दर दधिवाहन तिहां राय।
पटरानी अभया अति सुन्दर रूप कला शोभाय॥ रे धन०

सुदर्शन को मैंने अकेले ने ही धन्यवाद नहीं दिया है किन्तु आप सब ने भी दिया है। क्यों धन्यवाद दिया गया, इसका विचार करिये। यदि वह सेठ था तो अपने घर का था। इससे हमें क्या मिलना था। हम लोगों ने उसकी सेठाई के कारण धन्यवाद नही दिया है किन्तु उसने धर्म का पालन किया है अतः धन्यवाद दिया है। वस्तुतः यह धन्यवाद धर्म को दिया गया है। हम लोग सुदर्शन को धन्यवाद देते हैं। किन्तु कोरा धन्यवाद देकर ही न रह जाय। हम भी इनके पद चिह्नो पर चलें तभी धन्यवाद देना सार्थक है। उनके गुणों का अनुसरण न किया तो हमारा बड़ा दुर्भाग्य होगा। कल्पना करिये कि एक आदमी भूखा है। वह भूखसे कराह रहा था। वह सेठ के घर गया। उस समय सेठ स्वर्णथाल में परोसे हुए विविध व्यञ्जनों का भोग कर रहे थे। सेठ को भोजन करते देखकर वह भूखा व्यक्ति कहने लगा कि सेठ तुम धन्य हो जो ऐसे पदार्थ भोग रहे हो। मैं अन्न के बिना तरस रहा हू। भूखों मर रहा हूं। यह सुनकर सेठ ने कहा कि भाई! आ तू भी मेरे साथ बैठ जा और भोजन करले। भूख का दुःख मिटाले! सेठ के द्वारा भोजन का प्रेमपूर्ण निमन्त्रण मिलने पर भी यदि वह व्यक्ति यह कहे कि नहीं नहीं मैं न खाऊंगा मुझे भोजन नहीं करना है तो वह व्यक्ति अभागा समझा जायगा!

इस बात को आप अच्छी तरह समझ गये होंगे। ऐसे निमन्त्रण को आप कभी इन्कार न करेंगे। न कभी ऐसी भूल ही करेंगे। भूल तो धर्म कार्य में होती है। जिस चारित्र धर्म का पालन करने के कारण आप सुदर्शन को धन्यवाद दे रहे हैं वह चारित्र धर्म

आपके सामने भी मौजूद है। आप धन्यवाद देकर न रह जाइये किन्तु उस चारित्र धर्म पालन करिये जिसके पालन से सेठ धन्यवाद के पात्र बने है। धन्यवाद दे लेने से आ की भूख न मिटेगी। सुदर्शन के समान आप धर्म पर दृढ़ न रह सको तो भी उसके अंश का तो अवश्य पालन कीजिये। उसका चरित्र सुनकर उसके चरित्र का कुछ अंश यदि जीवन में उतार सको तो आपका दुर्भाग्य मिटेगा और सौभाग्य का उदय हो संसार की सब वस्तुएँ नाशवान् हैं! आप इस अविनाशी धर्म को क्यों नहीं अपनाते आप कहेंगे कि हम सुदर्शन के समान कैसे बन सकते है? खैर, सुदर्शन के ठीक स न बनें तो भी उसके चरित्र में से कुछ बातें अवश्य अपनाइये। कोशिश तो सब बातें नाने की करनी चाहिए। कीड़ी यह कहकर अपनी चाल को नहीं रोकती कि मैं की बराबरी नही कर सकती हू। वह हाथी के समान नही चल सकती तो भी च जारी रखती है और अपने खाने तथा घर बनाने का ऐसा प्रयत्न करती है कि जिसे कर बडे२ वैज्ञानिकों को दंग रह जाना पड़ता है। आप भी अपनी शक्ति व सामर्थ्य अनुसार आगे बढने का प्रयत्न कीजिये!

सुदर्शन की कथा कहने के पूर्व क्षेत्र का परिचय दिया गया है। क्षेत्री का करने के लिये क्षेत्र का परिचय आवश्यक है। शास्त्र में भी यही शैली है! वर्ण भगवान महावीर स्वामी का करना था किन्तु प्रसंग से साथ ही चम्पा नगरी का भी दे दिया है —जैसे

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामे नयरी होत्था।

सुदर्शन सेठ की कथा कहने पहले वह कहां हुआ था यह बताना आवश्यक थ यही बताया गया है।

कोई यह पूछ सकता है कि क्या क्षेत्र के साथ क्षेत्री का कोई सम्बन्ध होत हां क्षेत्री का क्षेत्र के साथ बहुत सम्बन्ध होता है। सूत्रों मे क्षेत्र विपाकी प्रकृतियों का आता है। एक आदमी भारत का निवासी है और दूसरा युरोप का। क्षेत्र वि गुण दोनों में जुदा २ होंगे। यह बात दूसरी है कि कोई अपने विशेप प्रयत्न के द्वार गुण को मिटा दे या अधिक बढ़ादे।

मनुष्य और पशु में जो भेद है वह क्षेत्र के कारण ही है। आत्मा दोनों की मान है। आत्मा समान होने से कोई मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य नहीं कहता। त्र विपाकी प्रकृति के कारण भेद होता है। उसे भूलाया नहीं जा सकता।

आप भारतीय है। भारत में जन्म लेने से भारत का क्षेत्र विपाकी गुण आप में ोना स्वाभाविक है। आज आप आपकी दस्तार रफ्तार और गुफ्तार कैसी हो रही है। जरा ौर कीजिए। दस्तार यानी कपड़े, रफ्तार यानी पहनावा और गुफ्तार यानी बातचीत। आप ारतीय है मगर क्या आपको भारतीय भाषा प्यारी लगती है? प्रिय न लगे तो यह अभाग्य ी है। अन्य देश वाले भारत की प्रशंसा करें और भारतीय स्वय अपने देश की अवहेलना करें, यह अभाग्य नहीं तो क्या है। आज भारत के निवासी दूसरे देशों की बहुत-सी बातों र मुग्ध हो रहे है वे यह नही सोचते कि दूसरे देशों की जिन बातों पर हम मुग्ध हो रहे है वे कहां से सीखी हुई है। वे बाते भारत से ही अन्य देशो ने सीखी है। हम हमारा वर भूल गये है। हमारे घर मे क्या क्या था यह बात हम नहीं जानते। अब दूसरों की नक़ल करने चले है।

एक आदमी दूसरे आदमी के यहां से बीज ले गया जो कि उसके आंगन में बिखरे पड़े थे. उसने बीज लेजा कर बोये तथा वृक्ष और फल फूल तय्यार किए एक दिन पहला व्यक्ति दूसरे के खेत मे चला गया। जाकर कहने लगा तुम बड़े भाग्यशाली हो जो ऐसे सुन्दर वृक्ष तथा फल--फूल लगा सके हो। दूसरे ने कहा यह आपही का प्रताप है जो मै ऐसे वृक्ष लगा सका हू। आपके यहां से बिखरे हुए बीज मै ले गया था जिनका यह परिणाम है। यह बात सुनकर पहले आदमी को अपने घर में रखे बीजों का ध्यान आया। इसी प्रकार विदेशों में जो तत्त्व देखे जारहे है वे भारत के ही हैं। हां, वहां के लोगों ने उन तत्त्वों की विशेष खोज अवश्य की है मगर बीजरूप में वे भारत से ही लिए हुए है। दूसरों की बातें देखकर अपने घर को मत भूल जाओ। घर की खोज करो।

सुदर्शन चम्पा नगरी का रहने वाला था। जैन और बौद्ध साहित्य में चम्पा का बहुत वर्णन है। चम्पा का पूरा विवरण उववाई सूत्र में है किन्तु उसमें से तीन बातें कह देने से श्रोताओं को खयाल आ जायगा कि चम्पा कैसी थी। चम्पा का वर्णन करते हुए उववाई सूत्र में कहा गया है:—

तेणं कालेणं तेणं समयेणं चम्पा नामं नगरी होत्था रिद्धीए ठिम्मिए स

इन तीन विशेषणों से चम्पा का पूरा परिचय हो जाता है। नगर में ती होना आवश्यक है। प्रथम ऋद्धि होना आवश्यक है। हाट, महल, मंदिर, बागबगीचे जल स्थल के स्वच्छ निवास ऋद्धि में गिने जाते हैं। किसी नगर में केवल ऋद्धि हो यदि समृद्धि न हो तो नगर की शोभा नहीं हो सकती। समृद्धि के न होने से लोग भूखे लगें। चम्पा नगरी धन धान्य से समृद्ध थी धन के साथ धान्य की भी आवश्यक केवल धन हो और धान्य न हो तो यह कहावत लागू होती है कि:—

सोना नी चलचलाट, अन्ननी कलकलाट।

जीवन निभाने के लिए धान्य की भी पूरी आवश्यकता होती है। धन और कहने से जीवनोपयोगी प्रायः सब वस्तुएं आजाती हैं। जीवनोपयोगी वस्तुओं के लिए नगरी किसी की मोहताज़ न थी। वहां सब आवश्यक चीजें पैदा होती थीं। प्राचीन में भारत के हर ग्राम में जीवनोपयोगी चीज़ें पैदा होती थीं और इस दृष्टि से भारत व गाम स्वतन्त्र था। ऐसा न था कि अमुक चीज़ आना बन्द हो गया है अतः क्या किया जाय।

पुरातन साहित्य हमें बताता है कि उस समय भारत का प्रत्येक ग्राम स्वतन्त्र कोई भी गांव ऐसा न था कि जहां आवश्यक अन्न और वस्त्र पैदा न हो। अन्न तो जगह पैदा होता ही था किन्तु वस्त्र भी सब गांवों में बनाये जाते थे। जहां रुई न होती ऊन होती थी जो रूई से भी मुलायम थी। हर ग्राम में कपड़े बुनने वाले लोग रहते इस प्रकार भारत का हर गांव स्वतंत्र था। नगर तो स्वतत्र थे ही। उनमें विशेष कला चीज़ें होती थीं।

चम्पा में ऋद्धि भी थी और समृद्धि भी। ऋद्धि और समृद्धि के होने प स्वचक्री राजा के अभाव में कष्ट होता है। चम्पा इस बात से भी वंचित न थी। विशेषण यही बतलाता है कि चम्पा की प्रजा बड़ी बहादुर थी। उसे न स्वचक्री राज सकता था और न परचक्री। अपने राजा का अत्याचार भी प्रजा सहन नहीं करती थी न अन्य देशस्थ राजा का। जो स्वयं निर्बल होता है उसी पर दूसरों का जोर चलता सबल पर किसी का बल नहीं चलता। लोग कहते हैं कि देवी बकरे का दान मांगती है

पूछता हूं कि देवी बकरे का बलिदान ही क्यों मांगती है शेर का क्यों। नहीं बकरा निर्बल है और शेर सबल है अतः ऐसा होता है।

शास्त्र में चम्पा का इस प्रकार वर्णन है। कोई भाई यह कहे कि महाराज त्यागी लोगों को इस प्रकार वर्णन करने की क्या आवश्यकता थी तो उसका उत्तर यह है कि फल बताने के पूर्व वृक्ष का और बीज का परिचय कराना भी जरूरी होता है। जो फल बताया जा रहा है वह जादू का तो नहीं है। अतः फल के पहले वृक्ष का वर्णन भी आवश्यक है। शील के साथ चम्पा का भी इसी लिए वर्णन है। इस वर्णन को सुन कर आप भी सच्चे नागरिक बनिये और शील का पालन कर आत्म कल्याण कीजिये।

राजकोट
७—७—३६ का
व्याख्यान

धर्म का अधिकार
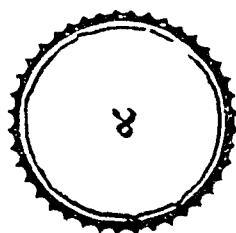
"मल्लि जिन बाल ब्रह्मचारी........।"
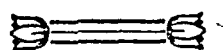
यह भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। यदि इस प्रार्थना के विषय में को महावक्ता सिद्धान्त की खोज करके व्याख्यान दे तो बहुत लोगों की उल्टी सम दूर हो जाय, ऐसा मेरा खयाल है। मुझे शास्त्र का उपदेश करना है. अतः इ विषय में इतना ही कहता हूं कि भक्ति और प्रार्थना के मार्ग में पुरुषों को अभिमा नहीं करना चाहिए। अभिमान भूले बिना भक्तिमार्ग पर नहीं चला जा सकता अहंकार दूर किए बिना भक्ति मार्ग प्राप्त नहीं हो सकता। हम पुरुष हैं, इस बात अहंकार त्याग कर चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष जो भी महापुरुष हुए है, उन सब की भ में तल्लीन हो जाना चाहिए।

बहुत से पुरुष स्त्री जाति को तुच्छ गिनते है और अपने को बड़ा मानते हैं कि यह उनकी भूल है। दुनिया में सब से बड़ा पद तीर्थङ्कर का है। जब कि स्त्री तीर्थ

हो सकती है वैसी हालत में तुच्छ कैसे मानी जा सकती है। और पुरुष को किस बात का अभिमान करना चाहिए। अतः अहंकार छोड़ कर विचार करो और गुणों के स्थान पर द्वेष मत लाओ।

भगवान् मल्लिनाथ को नमस्कार करके अब मै उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन की बात शुरू करता हूं। कल महा और निर्ग्रन्थ शब्दों के अर्थ बताये गये थे। इस द्वादशांग वाणी को सुनने से क्या क्या लाभ हैं, यह बताने के लिए पूर्वाचार्यों ने बहुत प्रयत्न किए हैं। उन्होंने शास्त्र की पहिचान के लिए अनुबन्ध चतुष्टय किया है। इस बीसवें अध्ययन में यह अनुबन्ध चतुष्टय कैसे घटित होता है, यह देखना है। हम इस बात की जॉच करें कि इस अध्ययन में भी विषय, प्रयोजन अधिकारी और सम्बन्ध हैं या नहीं।

बीसवें अध्ययन का विपय उसके नाम मात्र से ही प्रकट है। अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थ अध्ययन है। जिससे स्पष्टतया मालूम हो जाता है कि इस अध्ययन में महान् निर्ग्रन्थ की चर्चा होगी। नाम के सिवा प्रथम गाथा में यह स्पष्ट कहा गया है कि मै अर्थ धर्म में गति कराने वाले तत्त्व की शिक्षा देता हूं। इससे यह बात निश्चित हो गई कि इस अध्ययन में सांसारिक बातों की चर्चा न होगी। किन्तु जिन तत्त्वों से पारमार्थिक मार्ग में गति हो सके उनकी चर्चा होगी।

अब इस बात का विचार करें कि इस पारमार्थिक चर्चा से संसार को क्या लाभ होगा। आज संसार में इस प्रकार के मलीन विचार फैले हुए हैं कि जिनके कारण धार्मिक उपदेश और उसका प्रभाव बेकार सा साबित हो रहा है। मैले कपड़े पर रंग नही चड़ता मैले कपड़े पर रंग चढाने के लिए पहिल उसे साफ करना पड़ता है। इसी प्रकार हृदय रूपी वस्त्र यदि मैला हो तो उस पर उपदेश रूपी रंग नहीं चढ़ सकता। यह बात स्वाभाविक है। मुझे यक़िन है कि आपके सब कपड़े मलीन नहीं है अर्थात् आपका हृदय सर्वथा मलीन नहीं है। यदि सर्वथा मलीन होता तो आप यहां व्याख्यान श्रवणार्थ भी उपस्थित न होते। आप यहां आये है इससे यह प्रकट है कि आपका हृदय सर्वथा गन्दा नहीं है। जो थोड़ी बहुत गंदगी भी हृदय में रही हुई है उसे दूर किए बिना धर्म का रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ सकता।

शास्त्रकारों का कथन है कि धर्म स्थान पर जाने के पूर्व घर से निकलते ही पहले निस्सीही शब्द का उच्चारण करना चाहिए। धर्म स्थान पर पहुँच कर भी निस्सीही कहना

चाहिए। फिर गुरु के पास जाकर भी निस्सीही कहना। इस प्रकार तीन बार निस्सी शब्द का उच्चारण करने का क्या कारण है। घर से निकलते वक्त निस्सीही कहने मतलब यह है कि धर्मस्थान पर जाने के पूर्व ही सांसारिक प्रपञ्च पूर्ण विचारों को मन निकाल देना चाहिए। निस्सीही शब्द का अर्थ है पाप पूर्ण क्रियाओं का निषेध करना, उनको रोक देना।

जो संसार के कामो और विचारों को छोड़ कर धर्म स्थान पर जाता है वही पूर धर्म स्थान में पहुंच ने के मकसद को सिद्ध कर सकता है। जो घर से व्यवहार के प्रपञ्च को दिमाग में रख कर धर्म स्थान पर जाता है वह वहां जाकर क्या करेगा। वह धर्म स्था में भी प्रपञ्च ही करेगा। धर्म का क्या लाभ ग्रहण करेगा? धर्म स्थान तक पहुंचने के बा निसीही इस लिये कहा जाता है कि धर्म स्थान तक तो गाड़ी घोडा आदि सवारी पर सव होकर भी जाया जाता है लेकिन धर्म स्थान में ये सवारियां नहीं जा सकती अतः इन निषेध भी इष्ट है।

धर्म स्थान तक पहुंच कर अन्दर कैसे प्रवेश करना इसके लिये पांच अभिगम शास्त्रों में बताये गये हैं भगवान् या अन्य महात्माओं के दर्शन करने के लिये धर्म स्थान पहुचने पर पांच अभिगमन का वर्णन शास्त्रों में आया है। प्रथम अभिगमन सचित्त द्र का त्याग है। साधु के पास पान फूल आदि सचित द्रव्य नहीं ले जा सकते अतः उन त्याग कर फिर दर्शनार्थ जाना चाहिये। दुसरा अभिगमन उन अचित द्रव्यों का भी त्य करके साधु के पास जाना चाहिये जिनका त्याग जरूरी हो। अस्त्र शस्त्रादि पास हो उन्हे छोड़ कर साधु के समीप जाना चाहिये। शस्त्रादि लेकर साधु के पास जाना अनु है तथा वस्त्रादि का संकोच करना भी दूसरे अभिगमन में है। इसका अर्थ नंगे होकर द दर्शनार्थ जाना नही है। किन्तु जो वस्त्र बहुत लम्बे हों और जिनसे पास वालों की आसात हो सकती है उनका त्याग करना चाहिये। तसिरा अभिगमन उतरासंग' करना है। चौ अभिगमन जिनके दर्शनार्थ जाना हैं वे ज्योंही द्रष्टि पथ में पड़े कि तुरत हाथ जोड दे चाहिये। अर्थात् नम्रता पूर्वक धर्म स्थान में पहुंचना चाहिये। पांचवा अभिगमन मन एकाग्र करना है।

साधु के समीप पहुँचकर निसीही कहने का अभिप्राय यह है कि मै स सांसारिक प्रपञ्चों का निषेध करता हूं। निसीही का उच्चारण भी कर लिया गया हो

अभिगमन भी कर लिए गये हों किन्तु यदि मन संसार की बातों में गुंथा हुआ ही रहा तो धर्मस्थान में पहुँचने का उद्देश्य हासिल नहीं हो सकता। अतः मन को एकाग्र करके यह निश्चय करना चाहिए कि हमें श्रेय सिद्ध करना है।

सारांश यह है कि यदि आपको सिद्धान्त सुनने की रुचि है तो मन को स्वच्छ बनाकर आईये। मन स्वच्छ बनाने का भार मुझपर डालकर मत आइये। धोबी का काम धोबी करता है और रंगरेज का काम रंगरेज करता है। दोनों का काम एक पर डालने से वजन बढ़ जाता है। मैं आप पर धर्म के सिद्धान्तों का रंग चढ़ाना चाहता हूं। रंग चढ़ाया जा सकता है। किन्तु शर्त यह है कि आपका मनरूपी वस्त्र स्वच्छ होना चाहिये। मन स्वच्छ बनाकर आने का काम आपका है और उस पर धर्म का रंग चढ़ाने का काम मेरा है। धोबी वस्त्र को जितना साफ निकालकर लायेगा रंगरेज उतना ही आबदार रंग चढा सकेगा। रंगरेज को यश दिलाने का काम धोबी पर निर्भर है। आप लोगों की तरह यदि मुझे भी मान प्रतिष्ठा की चाह हृदय में बनी रही तो मैं धर्म का सच्चा उपदेश न दे सकूंगा धर्म का उपदेश देने के लिए उपदेशक को भी स्वच्छ बनना चाहिए। उपदेशक और श्रोता दोनों स्वच्छ हों तभी धर्म का रंग अच्छी तरह चढ़ सकता है।

इस अध्ययन का विषय तो बता दिया गया है। लेकिन अब यह जानना चाहिए कि इस अध्ययन के कहने का क्या प्रयोजन है। धर्म में गति कराना इस अध्ययन का प्रयोजन है। अर्थात् साधुजीवन की शिक्षा देना इस अध्ययन का प्रयोजन है।

आप कहेंगे कि यदि साधुजीवन की शिक्षा देना ही इस अध्ययन का प्रयोजन है तो हम गृहस्थ लोगों को यह अध्ययन आप क्यों सुनाना चाहते हैं। पहले आप लोग यह बात समझलें कि साधु जीवन की शिक्षाएँ आपको भी सुननी आवश्यक है या नहीं। आपने अपने जीवन का ध्येय क्या नक्की किया है। आप गृहस्थ आश्रम में हैं और साधु साध्वाश्रम में है। सब क्रियाएं अपने अपने आश्रम के अनुसार करना ही शोभनीय है। किन्तु गृहस्थ होने का अर्थ यह नहीं है कि वह धर्म का पालन न करे। यदि गृहस्थ धर्म का पालन नहीं कर सकते हो तो भगवान् जगत् गुरु कैसे कहलाते। भगवान् साधु गुरु कहलाते। भगवान् जगत गुरु कहलाते है। गृहस्थ जगत् में है अतः गृहस्थ भी धर्म पालन का अधिकारी ही है। दूसरी बात गृहस्थ जीवन का उद्देश भी आगे जाकर साधु जीवन व्यतीत करने का है अतः जो बात आगे जाकर आचरणों में लानी है उसका श्रवण पहले से ही कर लिया जाय तो क्या हानि है। अतः यह शिक्षा गृहस्थों के लिये भी उपयोगी है।

श्रेणिक राजा गृहस्थ था। उसने साधु जीवन की शिक्षाएं सुनी थी यद्यपि
साधु जीवन स्वीकार न कर सका तथापि साधु जीवन की शिक्षाएं सुन कर तीर्थङ्कर गो
बांध सका था। आपको इस शिक्षा की जरूरत क्यों नहीं है ? अवश्य जरूरत है। आप
किसी सांसारिक कामना की पूर्ति करने के लिये नही आये है किन्तु धर्म करने की आप
रूचि है, अतः आये है। इस प्रकार इस धर्म शिक्षा से आप गृहस्थों का भी प्रयोजन है
यदि यह शिक्षा केवल साधुओं के काम की ही होती तो साधु लोग किसी एकान्त श
स्थान में बैठ कर चर्चा कर लेते। आप गृहस्थों के बीच में आकर इसका वर्णन न करते।
गृहस्थों को भी इस शिक्षा की आवश्यकता है यह अनुभव करके ही आपको यह सुनाई
रही है। श्रेणिक राजा नवकारसी तप भी न कर सका था किन्तु यह शिक्षा सुन कर हृद
में धारण करके तीर्थङ्कर गोत्र बांध सका था। आप लोग भी श्रेणिक के समान गृहस्थ है
अतः इस शिक्षा की जरुरत है।

प्रयोजन बता दिया गया है। अब इस अध्ययन के अधिकारी का विचार करत
है। कौन २ व्यक्ति इस अध्ययन की शिक्षा सुनने या ग्रहण करने के पात्र हैं। जिस प्रका
सूर्य सबके लिये है। सब उसका प्रकाश ग्रहण कर सकते है। किसी के लिये भी प्रका
ग्रहण की मनाई नहीं है। उसी प्रकार यह अध्ययन सबके लिये है। इतना होने पर भी
सूर्य का प्रकाश वही देख सकता है जिसके आंखे हो और वे खुली हों तथा विकार रहि
हों। जिसकी आंखों में उल्लू की तरह किसी प्रकार का विकार हो वह सूर्य प्रका
ग्रहण नहीं कर सकता। इस अध्ययन की शिक्षा का अधिकारी भी वही है जिसके हृद
चक्षु खुले हुए है। किन्ही लोगों के हृदय चक्षु खुले हुए होते हैं और किन्ही के अज्ञान
रूपी आवरण से ढके हुए होते है। जिनके हृदय चक्षु बन्द है किन्तु खोलने की चाह
है वे भी इस अध्यन के श्रवण करने के अधिकारी है। यह शिक्षा हृदय पट के
आवरण को भी हटाती है किन्तु आवरण हटाने की इच्छा होनी चाहिये। कहने का
भावार्थ यह है कि जो इस शिक्षा से लाभ उठाना चाहे वही इसका अधिकारी है।

अब इस अध्ययन के सम्बन्ध के विषय में विचार कर लें। सम्बन्ध दो
प्रकार का होता है। १ उपायोपेय भाव सम्बन्ध २ गुरु शिष्य सम्बन्ध।

पहले गुरु शिष्य सम्बध का विचार करें कि यह शास्त्र किस गुरु ने कहा है और
किस शिष्य ने इसे सुना है।

भगवान् ने फरमाया है कि मोक्ष की इच्छा मात्र होने से मोक्ष कागजों से नहीं मिल जाता कोरे सूत्र बांचने से ही मुक्ति नहीं मिल सकती। सद्गुरु अथवा सदुपदेशक की आवश्यकता होती है। कुगुरु मोक्ष का नाम लेकर विपरीत मार्ग में भी ले जा सकते हैं अतः प्रथम यह जान लेना चाहिए कि धर्म का सच्चा उपदेशक कौन हो सकता है ? शास्त्र में कहा भी है कि

आयगुत्ते सयादन्ते छिन्नसोये अणासवे।
ते धम्मं सुद्धमक्खन्ति पडिपुन्नं मणेलिसं॥

अर्थात्—धर्म का उपदेश वे कर सकते हैं जिन्होंने अपने मन पर काबू कर लिया हो, जो सदा विकारो पर काबू रखते हों, जिनका शोक नष्ट हो गया हो, जो पाप रहित हों। ऐसे सदादान्त सन्त पुरुष ही प्रीतिपूर्ण और शुद्ध अनुपम धर्म का उपदेश कर सकते हैं। पहले यह देखना जरूरी है कि अमुक ग्रन्थ या पुस्तक का रचयिता कौन है ? ग्रंथकार की प्रामाणिकता पर ग्रंथ की प्रामाणिकता है। आज कल के बहुत से अधकचरे विद्वान् कहते है कि ग्रंथकार के व्यक्तिगत जीवन से तुम्हें क्या मतलब है, तुम्हे तो वह जो शिक्षा देता है उसे देखो कि वह ठीक है या नहीं। किन्तु ऐसा कहने वाले व्यक्ति भ्रम में हैं। शास्त्रकार कहते है कि धर्म का उपदेशक वह हो सकता है जो अपनी आत्मा को गुप्त रखता हो। संयमरूपी ढाल में इन्द्रियों को उसी प्रकार काबू में रखता हो जिस प्रकार कछुआ अपने अंगो को ढाल में रखता है। इन्द्रिय दमन करने वाला ही सच्चा उपदेशक या लेखक हो सकता है।

किसने इन्द्रिय दमन कर लिया है और किसने नहीं किया है इसकी पहचान यह है कि जिसकी आखों में विकार न हो, शारीरिक चेष्टाएं शान्त और पापशून्य हों। इन्द्रिय दमन का अर्थ आंख कान आदि इन्द्रियों का नाश कर देना नहीं है किन्तु उनके पीछे रही हुई पाप भावना को मिटा देना है। आंख से धर्मात्मा भी देखता है और पापी भी। किन्तु दोनों की दृष्टि में बड़ा अन्तर होता है। धर्मात्मा पुरुष किसी स्त्री को देखकर उसके सुधार का उपाय सोचेगा और पापी पुरुष उसी स्त्री को देखकर अपनी वासना पूर्ति का विचार करेगा। जिस प्रकार घोड़े को शिक्षा देकर मन मुताबिक चलाया जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को मन माफिक चला सकता है, उनका गुलाम नहीं किन्तु मालिक बन सकता है, वही इन्द्रिय दमन करने वाला कहा जाता है। घोड़े का मालिक लगाम के जरिये घोड़े को कुमार्ग में नहीं जाने देता उसी प्रकार इन्द्रिय दमन करने वाला इन्द्रियों को विषय विकार की तरफ नहीं जाने देता। भगवद् भजन करने में उनका उपयोग करता है। यही इन्द्रिय दमन का अर्थ है।

धर्मोपदेशक हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह इन पांच पापों से रहित होना चाहिए। जो सब स्त्रियों को मां बहिन समान समझता हो और धर्मोपकरण के सिवा फूटी कोड़ी भी अपने पास न रखता हो अर्थात् जो कंचन और कामिनी का त्यागी हो वह धर्मोपदेशक हो सकता है और वही प्रीतिपूर्ण, शुद्ध और अनुपम धर्म का उपदेश दे सकता है।

मैंने हिन्दू धर्म के विषय में गांधीजी का लिखा एक लेख देखा है। गांधीजी ने उस समय तक जैन शास्त्र देखे थे या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु जो सच्ची बात होगी वह शास्त्र में अवश्य निकल आयगी। गांधीजी ने उस लेख में यह बताया है कि हिन्दू-धर्म का कौन उपदेश कर सकता है? कोई पण्डित या शंकराचार्य ही इस धर्म का कथन कर सकता है यह बात नहीं है किन्तु जो पूर्ण अहिंसक, सत्यवादी और ब्रह्मचारी है वही हिन्दू धर्म को कहने का अधिकारी हो सकता है। गांधीजी के लेख के पूरे शब्द मुझे याद नहीं है किन्तु उनका भाव यह था। गांधीजी और जैन शास्त्रों के विचार इस विषय में कितने मिलते हैं इस पर विचार करियेगा।

प्रकृत बीसवें अध्ययन के उपदेशक गणधर या स्थविर मुनि हैं। यह गुरु-सम्बन्ध हुआ। अब तात्कालिक उपायोपेय सम्बन्ध देख लें। दवा करना उपाय है और रोग मिटाना उपेय है। इस अध्ययन का उपायोपेय सम्बन्ध है ज्ञान प्राप्ति और इसके द्वारा मुक्ति। मुक्ति उपेय है और ज्ञान प्राप्ति उपाय है।

संसार में उपाय मिलना ही कठिन है। यदि उपाय मिल जाय और वह किया जाय तो रोग मिट सकता है। डाक्टर और दवा दोनों का योग होने पर बीमारी चली जाती है। किसी बाई के पास रोटी बनाने का सामान मौजूद न हो तो वह रोटी कैसे बना सकती है? यदि रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार हो तो रोटी बनाने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

रोटी बनाने की सब सामग्री तय्यार रखी हो परन्तु यदि कर्त्ता रोटी बनाने का किसी प्रकार का प्रयत्न न करे तो रोटी कैसे बन सकती है? आटा और पानी अपने आप नहीं मिल सकते और न रोटी स्वयं पक सकती है। कर्त्ता के उद्योग किये बगैर सब साधन या उपाय किस काम के। आप अपने लिए विचार करिये कि आपको क्या करना चाहिए। गफलत की नींद छोड़कर जागृत हो जाइये जिससे धर्मकरणी के लिए मिले हुए साधन या उपाय व्यर्थ न होजायं। आपको आर्यक्षेत्र, उत्तम कुल और मनुष्य जन्म मिले हैं। क्या कम सामग्री है आपकी उम्र भी पक चुकी है। आप तत्त्व ज्ञान समझ सकते हो

हुत से लोग तो कच्ची उम्र में ही चल बसते हैं। यदि आप भी बचपन में ही चल बसते तो आपको कौन उपदेश देने आता। बालक, रोगी और अशक्त धर्म के अधिकारी नहीं माने जाते। उनसे कोई धर्म का उपदेश नहीं करता। अतः ज्ञानीजन कहते हैं कि उठ जाग! कब तक सोता रहेगा।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥

अर्थात्—हे मनुष्यों! उठो जागो और श्रेष्ठ मनुष्यों के पास जा कर ज्ञान प्राप्त कर लो। कारण कि ज्ञानी जन कहते हैं कि उस्त्रे की धारा पर चलना जितना कठिन है उतना ही इस विकट मार्ग (धर्म मार्ग) पर चलना कठिन है।

जिस प्रकार प्रातःकाल माता अपने पुत्र से कहती है कि ऐ पुत्र! उठ जाग, खड़ा होजा, इतना दिन निकल आया है, कब तक सोता पड़ा रहेगा? उसी प्रकार ज्ञानी जन भी माता के प्रेम के समान प्रेम से सब जीवों पर दया लाकर कहते हैं कि ऐ मनुष्यों! इस गफलत में पड़े हुए हो। उठो जागो। भाव निद्रा का त्याग करो। विषय कषायादि विकारों को छोड़ कर आत्म कल्याण के मार्ग में लगजाओ। वैराग्य शतक में ज्ञानी सोते हुए प्राणियों को जगाते हुए कहते हैं—

मा सुवह, जग्गियव्वं, पलाइयव्वम्मि किस्स विस्सामिह।
तिन्नि जणा अणुलग्गा रोगो जराए मच्चुए ॥

हे जीवात्माओं! मत सोओ! जाग जाओ। रोग, जरा और मृत्यु तुम्हारे पीछे पड़े हुए हैं। यह बात बहुत विचारणीय है अतः एक कथा द्वारा इस मुद्दे को सरल बनाकर कहता हूं।

दो मित्र जंगल में जा रहे थे। उस में से एक थक गया था। थकने के साथ ही उसे कुछ आधार मिल गया। पास ही अच्छे घने वृक्ष है। सुन्दर नदी बह रही है सपाट चट्टान सामने है। और हवा भी शीतल मन्द और सुगन्ध युक्त चल रही है। यह सब अनुकूल सामग्री देखकर थका हुआ मित्र सो जाने के लिए ललचाया। वह मन में मनसूबे बांधने लगा कि यहां बैठकर शीतल वायु सेवन करना

चाहिए। सुन्दर फल खाना और पुष्पों की सुगन्ध लेना चाहिए। नदी की कलकल सुनते हुए निद्रा लेकर प्रकृति के सुख का अनुभव करना चाहिए।

दूसरा मित्र प्रकृति ज्ञान में निपुण था। वह जानता था कि ये फ कैसे है, यह हवा कैसी है तथा नदी की यह कल-कलाट क्या शिक्षा दे रही है। य कितना उपद्रवयुक्त है, यह भी वह जानता था। उस ज्ञानी मित्र ने अपने भूले हुए कहा कि हे प्रिय मित्र! यह स्थान सोने के लिए उपयुक्त नहीं है। जल्दी उठ खड़ा हो और यहां से भाग चल। एक क्षण मात्र का भी विलम्ब मत कर। यहां तीन जने पीछे हैं। जिन फल-फूलों को देख कर तेरा जी ललचाया है वे फलफूल विषयुक्त है। हवा भी विषैली है जो वातावरण तुझे अभी आकर्षित कर रहा है वही थोड़ी देर विवश बना देगा और तेरा चलना फिरना भी बंद हो जायगा। यह नदी भी शिक्ष है कि जिस प्रकार कल कल करता हुआ मेरा पानी प्रतिक्षण बहता चला जा रहा प्रकार तेरी आयु भी क्षण क्षण घटती जा रही है।

क्या सोवे उठ जाग बाउरे।

अंजलि जल ज्यों आयु घटत है, देत पहरिया घरिय घाउरे॥ क्या०
इन्द्र चन्द्र नागेन्द्र मुनि चल कौन राजा पति साह राउरे।
भमत भमत भव जलिध पालते भगवन्त भक्ति सुभाउ नाउरे॥ क्या०
क्या विलम्ब अब करे बाउरे तरभव जलनिधि पार पाउरे।
आनन्द घन चेतन मय मूरति शुद्ध निरञ्जन देव ध्याउरे॥ क्या०

शास्त्रकार ग्रन्थकार, कवि और महात्मा सब का कथन यही है कि-हे जीव उठो। जागो। गफलत की नींद मत सो ओ।

कोई भाई कहेगा कि क्या आप हमको साधु बनाना चाहते है। मै पूछत क्या साधुपन बुरी चीज है? यदि साधुपन बुरी वस्तु होता तो आप साधुओं का व ही कैसे सुनते। साधुता शक्ति होने पर ही ग्रहण की जा सकती है। शक्ति न हो साधुत्व स्वीकार करने की बात नहीं करता। आपको साधुत्व ग्रहण करने के सयं हुए है। अतः जागृत हो जाइये।

भगवन्त भक्ति स्वभाव नाउरे।

भगवान् की भक्ति रूप नौका मिली हुई है। उस नौका का सहारा लेकर संसार समुद्र पार कर जाइये। उस मित्र ने अपने थके हुए मित्र से कहा था कि हे दोस्त! यदि तू भूल नहीं सकता तो सामने यह नौका खड़ी है। इस पर सवार होकर पार लग जा। अब तो इस मूर्ख मित्र को चलना भी नहीं पड़ता है फिर भी यदि वह नौका पर सवार न हो और गफलत में सोया पड़ा रहे तो आप उसे क्या कहेंगे। आप कहेंगे कि वह बड़ा अभागा था जो ऐसे सुसंयोग का लाभ न ले सका। आपके समक्ष भी भगवन् नाम रूपी नौका खड़ी है। सद्गुरु आपको समझा रहे हैं कि इस नौका पर सवार हो कर अनादि कालिन दुःख दर्द को मिटालो। अधिक न कर सको तो कम से कम इस नौका पर सवार हो जाइये।

अभी मुनि श्रीमलजी ने आपको सुनाया है कि एक व्यक्ति साधु के स्थान पर आकर भी बुरे कर्म बांध सकता है और दूसरा वैश्या के भवन पर जाकर भी कर्मों की निर्जरा कर सकता है; बुरी भली भावनाओं की अपेक्षा से यह कथन ठीक है। फिर भी यह मत समझ लेना कि साधु का स्थान बुरा है और वैश्या का अच्छा। वैश्या के घर जाकर कोई विरला व्यक्ति ही बच सकता है। अतः स्थान की दृष्टि से वैश्या का स्थान बुरा और साधु का स्थान अच्छा है। लेकिन जो स्थान अच्छा है उस साधु स्थान पर जाकर यदि कोई व्यक्ति बुरे विचार करे अथवा दूसरों की निन्दा करे तो यह कितनी बुरी बात है। कदाचित् कोई साधु स्थान पर रहे उतनी देर तक अच्छे विचार रखे और वहां से अलग होते ही बुरे विचार करने लग जाय, सुनी या सीखी हुई शिक्षा को भूल जाय तो भी कोई लाभ नहीं गिना जा सकता। आप कहेंगे कि यह हमारी कमजोरी है कि हम आपकी दी हुई शिक्षाएं शीघ्र भूल जाते हैं। मै कहता हूं यह केवल आपकी ही कमजोरी नहीं है किन्तु मेरा भी कच्चापन शामिल है। मेरी दी हुई शिक्षा को आप लोग याद नहीं रख सकते इस में मैं भी अपनी कमजोरी समझता हूं। मैं मेरी कमजोरी दूर करने का प्रयत्न करूंगा। परन्तु उपदेष्टा तो निमित्त कारण है। उपादान कारण आपका आत्मा है। यदि उपादान ही अच्छा न हो तो निमित्त क्या कर सकता है निमित्त के साथ उपादान शुद्ध होना चाहिए। किसी घड़ी को जब तक चाबी दी जाती रहे तब तक वह चलती रहे और चाबी देना बंद करते ही यदि बंद हो जाय तो आप उस घड़ी को कैसी कहेंगे। यही कहेंगे कि वह घड़ी खोटी है। इसी प्रकार मैं जब तक उपदेश देता रहूं तब तक आप तहेत करते रहो और उपदेश सुनकर घर पहुंचते ही यदि उसे भूल जाओ तो यह सच्चापन नहीं गिना जा। इस बात पर ध्यान दीजिये और गफलत को छोड़िये।

आपके सामने भगवद् भक्ति रूपी नाव खड़ी है। आप यदि उस पर बैठ गये तो क्या कमी हो जायगी। तुलसीदासजी ने कहा है—

जगनभ वाटिका रही है फली फूली रे।
धुआं कैस धौरहर देखि हूं न भूली रे॥

संसार की बाड़ी जैसे आसमान में तारे छिटक रहे हों वैसे फली फूली हुई है। मगर यह बाड़ी स्थायी नहीं है! अतः संसार की भूल भुलैया में न फंसकर परमात्मा की भजन स्वरूप नौका में बैठ कर संसार समुद्र पार कर लें।

आज कल बहुत से भाईयों यह खयाल है कि हमें परमात्मा के भजन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे कहते हैं कि जो लोग परमात्मा का भजन किया करते हैं वे दुःखी देखे जाते है और जो कभी परमात्मा का नाम तक नही लेते बल्कि धर्म और परमात्मा का बायकाट करते हैं, वे लोग सुखी देखे जाते हैं। इस सवाल का जवाब यह है कि केवल परमात्मा का नाम लेना ही सुखी बनने का कारण नही है। किन्तु नाम स्मरण के साथ परमात्मा के बताये हुए नियमों का पालन करना भी जरूरी है। कोई प्रकट रूप में परमात्मा का नाम न लेता हो किन्तु उसके बताये नियमो का पालन करता हो तो वह सुखी होगा और कोई नियमों का पालन न करें और खाली नाम रटन्त करता रहे तो उससे दुःख दूर नही हो सकते। जो प्रकट रूप से नाम नहीं लेता किन्तु नियम पालन करता है वह सुख के साधन जुटाता है। अतः यह कहना कि परमात्मा का नाम लेने से या भजन करने से कोई दुःखी है कतई गलत धारणा है। भजन के साथ नियम आवश्यक है। एक आदमी ने गाड़ी में बैठे हुए एक पहलवान को देखा। देख कर उसने यह धारणा बांध ली कि गाड़ी में बैठने से आदमी पहलवान हो जाता है। उसे इस बात का भान न था कि पहलवान तो विशेष प्रकार की कसरत करने से बनता है। इसी प्रकार नियम पालने वाला प्रकट में नाम नहीं लेता अतः यह कह डालना कि नाम न लेने से सुखी है भ्रम पूर्ण विचार है। परमात्मा का भजन तो करना मगर उसके बताये नियम न पालना कैसा काम है, इस बात को एक दृष्टान्त से समझाता हूं।

एक सेठ के दो स्त्रियां थीं। बड़ी स्त्री गादी लगा कर हाथ में माला लेकर अपने पति का नाम जपती रहती थी। दिन भर मोतीलालजी मोतीलालजी की रटन्त

गाती रहती। घर का कोई काम न करती थी। किन्तु इसके विपरीत छोटी स्त्री र का सब काम करती रहती थी। उसने अपने मन में यह नक्की किया कि ति का नाम तो मेरे हृदय में है। चाहे मुंह से उसका उच्चारण करू या न करू मे वे काम करते रहना चाहिये जिनसे पति देव प्रसन्न रहे। एक दिन बड़ी ठानी सेठ के नाम की माला जपती हुई बैठी थी कि इतने में कहीं बाहर से थके प्यासे ठजी आगये और उससे कहा कि प्यास लगी है, पानी का लोटा भर कर लादे ड़ी सेठानी ने उत्तर दिया कि इतनी दूर से चल कर आये हो सो तो नहीं थके ार अब घर आकर थक गये। पानी का लोटा भी नहीं लाया जाता। मेरे म जपन में क्यों बाधा पहुंचाते हो। क्या आपको मालूम नहीं कि मै किसका ाम कर रही हूं। और किसका नाम ले रही हूं। मै आपही का नाम ले रही हूं।

भाइयों! बताइये कि क्या बड़ी सेठानी का नाम जपन सेठजी को पसन्द ा सकता है? सेठजी ने कहा कि तेरा यह नाम जपन व्यर्थ है। एक प्रकार ा ढोंग है। दोनों का वार्तालाप सुन कर छोटी सेठानी तुरत अच्छे कलशे में ठण्डा पानी लाई और सेठजी की सेवा में उपस्थित किया। इन दोनों स्त्रियों में से सेठजी का मन सकी ओर झुकेगा। सेठजी किसके कार्य को पसन्द करेंगे। कर्त्तव्य करने वाली के काम ी ही सेठजी पसन्द करेंगे। न कि कोरा नाम जपने वाली का काम। इसी प्रकार भक्त ी दो प्रकार के होते हैं। एक केवल नाम जपने वाले और दूसरे नियम पालन या र्त्तव्य करने वाले।

बहुत से लोग परमात्मा का नाम लेते हैं। किन्तु आपको मालूम है कि वे किस ए नाम लेते है। वे 'रामनाम जपना और पराया माल अपना' करने के लिए नाम लेते । इस तरह परमात्मा का नाम लेना दिखावामात्र है। नाम का महत्त्व नियम पालन के ाथ है।

मतलब यह है कि कोई प्रकट में प्रभुनाम लेता है और कोई प्रकट में नाम न कर नियम पालन करता है। किन्तु भक्ति नाम न लेनेवाले में भी मोजूद है क्योंकि वह कर्त्तव्य ा पालन करता है। अतः ऐसे व्यक्ति को सुखी देखकर यह न मान बैठना चाहिए कि ह नाम न लेने से सुखी है आपके सामने भगवद् भक्ति की नाव खड़ी है। उसमें बैठ जाओ ोर भक्ति का रंग चढ़ालो।

ऐसा रंग चढालो दाग न लागे तेरे मनको।

सुदर्शन चरित्र—

सच्चे भक्त कैसे होते हैं इसका दाखला चरित्र द्वारा आपके सामने रखता हूं। कल कहा गया था कि सुदर्शन को धन्यवाद दिया गया है। सुदर्शन को भक्ति का बाह्य ढोंग रखने के कारण धन्यवाद नहीं दिया गया किन्तु भक्ति के अंग का पूरी तौर से पालन करने के कारण धन्यवाद दिया गया है।

सुदर्शन का जन्म चंपापुरी में हुआ था। चम्पापुरी का राजा दधिवाहन था। सुदर्शन के शीलपालन के साथ तथा इस कथा से सम्बन्ध रखनेवाले पात्रों का परिचय कराना आवश्यक है।

राजा कैसा होना चाहिए इसका शास्त्र में वर्णन है। जो क्षमंकर और क्षेमंधर हो वही सच्चा राजा है। केवल अच्छे हाथी घोड़ों की सवारी करनेवाला ही राजा नही होता किन्तु जो पहले की बंधी हुई मर्यादाओं का पालन करे और नवीन उत्तम मर्यादाएं बांधता हो वह राजा है। क्षेम शब्द का अर्थ है कुशल। जो प्रजा की कुशल चाहता है वह राजा है ऐसा न हो कि खुद के महल उजले रखले और प्रजा के सुख दुःख का तनिक भी खयाल न करे। वह राजा कहलाने का अधिकारी ही नहीं है। जो प्रजा मे प्रजा हित के सुधार करता है और उसे सुखी बनाता है वह राजा है।

राजा स्वयं क्षेम-कुशल करने वाला हो तथा पहले बंधी हुई अच्छी और उपयोगी मर्यादाओं को तोड़ने वाला न हो। पुरानी मर्यादाओं को केवल पुरानी होने के कारण तोड़ना नही चाहिए। पुरानी मर्यादा के पालन के साथ ही साथ नवीन योग्य मर्यादा भी बांधना चाहिए। यह सच्चे राजा का लक्षण है। '**नवी करणी नहीं और पुराणी मेटनी नहीं**' यह तो अच्छे राजा का चिह्न नहीं है।

दधिवाहन राजा उपर्युक्त गुणों से युक्त था। उसके अभया नामक पटरानी थी। अभया के रूप सौन्दर्य के कारण राजा उस पर बहुत मुग्ध था। वह मानता था कि मेरी रानी स्त्रियों में रत्न के समान है। जिस रानी पर राजा इतना मुग्ध था वही रानी सुदर्शन के शील की कसौटी बनी है। राजा जिस रानी का गुलाम बना हुआ था उस रानी के भी वश में न होने वाला सुदर्शन कैसा होना चाहिए इस बात का जरा विचार करिये।

नाटक में पुरुष स्त्री का वेष धारण करते है और स्त्री की तरह नखरे दिखाने की करते है। ऐसा करने से कभी २ पुरुष बहुत अंशो में अपना पुरुषत्व भी खो बैठते नाटक में स्त्री बने हुए पुरुष के हाव भाव देखकर आप लोग बड़े प्रसन्न होते है। जो अपना पुंस्त्व भी खो चुका है वह दूसरों को क्या शिक्षा देगा।

आज कल लोगों को नाटक सिनेमा का रोग बहुत बुरी तरह लगा हुआ है। घर हे फाकाकसी करना पड़े मगर सिनेमा देखने के लिए तो जरूर तय्यार हो जायेंगे। खर्च होने के उपरान्त नाटक सिनेमा देखने से क्या २ हानियाँ होती है इसका जरा र करिये। जब कि लोग बनावटी स्त्री पर भी इतने मुग्ध होते देखे जाते हैं तब अभया जा इतना मुग्ध हो इस में क्या आश्चर्य की बात है। वह तो साक्षात् स्त्री थी और रूप सम्पन्न थी। आश्चर्य तो इस बात मे है कि कहां तो आजकल के लोग जो बनावटी मात्र देखकर मुग्ध बन जाते हैं और कहां वह सुदर्शन जो रूप लावण्य संपन्न अभया नी पर भी मुग्ध न हुआ।

जब मैं अहमदनगर में था तब वहां के लोग मेरे सामने आकर कहने लगे कि नाटक कम्पनी आई है जो बहुत अच्छा नाटक करती है। देखने वालों पर अच्छा व पड़ता है। इस प्रकार उन लोगों ने मेरे सामने उस नाटक मंडली की बहुत प्रशंसा । उस समय मैने उन लोगों से यही कहा कि फिर कभी इस विषय में समझाऊंगा।

एक दिन मै जंगल गया था कि दैवयोग से उस नाटक मण्डली में पार्ट लेने लोग भी उधर ही घूमते हुए जा रहे थे। वे लोग अपनी धून में मस्त होकर जा रहे मैने उन लोगों की चेष्टाए और आपसी बातचीत सुनी। सुनकर मै दंग रह गया। ये वेही लोग है जिनकी नाटक मण्डली की इतनी प्रंशसा मेरे सामने की गई थी। की बातें और चेष्टाए इतनी गंदी थी कि कुछ कहा नही जा सकता। मैने मनमें विचार । कि ये लोग सीता, राम या हरिश्चन्द्र का पार्ट अदा करते है, किन्तु क्या दर्शकों इनके खुद के भावों-विचारों का असर न होता होगा। क्या केवल इनके द्वारा दिखाये जाते हुए सीता, राम या हरिश्चन्द्र के कार्यों या गुणों का ही लोगों पर असर होता है? नाटक दिखाने वालों के व्यक्तिगत चरित्रों का भी प्रभाव दर्शकों पर पड़ता है? मैं पहले व्याख्यान मे कह चुका हू कि किसी ग्रंथ या उपदेश की प्रामाणिकता उसके कर्त्ता या उपदेशक अवलंबित है। फोनोग्राफ की चुड़ी से निकले हुए शब्दों का विशेष असर नहीं होता र होता है शब्दों के पीछे रही हुई चरित्र शील आत्मा का।

कदाचित् कोई भाई यह दलील करे कि हमे तो गुण ग्रहण करना है। ह
कोई कैसा है? इस बात से प्रयोजन नहीं। इसका उत्तर यह है कि यदि गुण ही लेना है
सामने वाले का आचरण नही देखना है तो नाटक में साधु बनकर आये हुए साधु क
लोग वंदना नमस्कार क्यों नहीं करते और उसे सच्चा साधु क्यों नहीं मानते। आप
वह तो नकली साधु है उसे असली कैसे मानेंगे। मैं कहता हूं कि जैसे साधु नक
वैसे अन्य पात्र भी नकली ही हैं। जंगल से वापस लौटकर व्याख्यान में मैंने लोगों
कहा कि ऐसे लोगों के द्वारा दिखाए हुए खेल से आपका कुछ कल्याण नहीं होने वा

महारानी अभया बहुत सुन्दर थी और राजा दधिवाहन उस पर बहुत मुग्ध
फिर भी सुदर्शन रानी पर मुग्ध न हुआ। उसके जाल में न फँसा। ऐसे
पुरुष की शरण लेकर भगवान् से प्रार्थना करो कि हे प्रभो! ऐसे चारित्रशील व्य
चारित्र का अंश हमको भी प्राप्त हो।

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा।

जो लक्ष्मीवान् की सेवा करता है क्या वह कभी भूखा रह सकता है
भगवान् की शरण जाता है वह भी उनके समान बन जाता है। वैसे ही शील
पालन करने वाले सुदर्शन की शरण ग्रहण करने से शील पालने की क्षमता
प्राप्त होगी।

यह चरित्र मनरूपी कपड़े के मैल को साफ करने का भी काम करेगा।
नीति, शरीर रक्षा और संसार व्यवहार की बातें भी इस चरित्र में आयेंगी। आज सम
जो अनेक कुरीतियाँ घुसी हुई है, उनके कारण जो हानि हो रही है, उनके विरु
इस चारित्र में कुछ कहा जायगा। अतः इस चरित्र को सावधान होकर सुनिये और
धर्म को अपनाकर आत्म कल्याण करिये।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

सिद्ध साधक
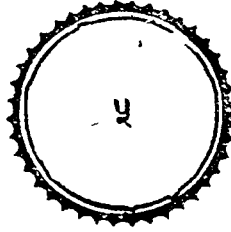
" श्री मुनि सुव्रत सायबा .... । "
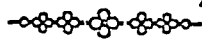
यह २० वें तीर्थङ्कर मुनि सुव्रत स्वामी की प्रार्थना है । आत्मा को परमात्मा की प्रार्थना कैसे करना चाहिए यह बात अनेक विधियों और अनेक शब्दों द्वारा कही गई है । प्रभु नाम अनेक है । उन नामों को लेकर भक्तों ने अनेक रीति से प्रार्थना की है । इस प्रार्थना में कहा गया है कि आत्मा को स्वदोपदर्शी होना चाहिए । सब लोगों की यह इच्छा रहती है कि हम हमारी प्रसंसा ही सुनें । कोई हमारी निन्दा न करें । लेकिन ज्ञानी कहते है कि प्रशंसा सुनने की आदत छोड़ कर अपने दोष देखने सुनने की आदत डालो । यह सुनने की कभी मन में भावना न लाओ कि मेरे में क्या २ गुण है किन्तु मेरे में क्या दोष या त्रुटियाँ हैं उनको जानने-सुनने की कोशीश करो । कदाचित् अभी आत्मा में दोष न दिखाई दे तो भी यह मानना चाहिए कि मेरे में पहले के बहुत से बुरे संस्कार विद्यमान हैं । तथा अनादि कालीन ज्ञानावरणीयादि कर्म रूप दोष मुझमें भरे पड़े है । अपने को सदोष मानकर परमात्मा से प्रार्थना करो कि हे

भगवान्! मैं पाप का पुञ्ज हूं, मुझ में अनन्त पाप भरे हैं। अब मैं तेरी शरण में आ हूं अतः मुझे पाप मुक्त कर दे।

इस प्रकार की प्रार्थना वही कर सकता है जो पाप को पाप मानता है, खुद अपराधी मानकर स्वगुण कीर्तन की वांछा नहीं रखता तथा अपनी कमजोरियां सुन के लिए उत्सुक रहता हो। जो अपने गुण सुनने के लिए लालायित रहता है वह प्रभु प्रार्थना से दूर है।

अब शास्त्र की बात कहता हूँ। कल कहा था कि इस बीसवें अध्ययन में कुछ कहना है वह सब पीठिका, प्रस्तावना या भूमिका रूप से प्रथम गाथा में कह दि गया है। इस गाथा का सामान्य अर्थ कर दिया गया है। अब व्याकरण की दृष्टि विशेष अर्थ तथा परमार्थ रूप अर्थ करना बाकी है। इस गाथा में जो शब्द प्रयुक्त कि गये है उनसे किन किन तत्त्वों का बोध होता है यह टीकाकार बतलाते है।

मैंने पहले यह बताया था कि नवकार मंत्र के पांच पदों मे दूसरा सिद्ध पद सिद्ध है और शेष चार पद साधक हैं। एक दृष्टि से यह बात ठीक है किन्तु टीकाक दूसरी दृष्टि सामने रखकर अरिहन्त पद की गणना भी सिद्ध में करते है। इस दृष्टि से पद सिद्ध हैं और शेष तीन साधक हैं। अरिहन्त की गणना सिद्ध में की जाती है उस लिए शास्त्रीय प्रमाण भी है। कहा है—

एवं सिद्धा वदन्ति परमाणु।

अर्थात्—सिद्ध परमाणु की इस प्रकार व्याख्या करते हैं। सिद्ध बोलते नहीं उनके शरीर भी नहीं होता। वैसी हालत में यह मानना पड़ेगा कि यहां जो सिद्ध शब्द प्रयोग किया गया है वह अरिहन्त वाचक ही है। इससे स्पष्ट है कि अरिहन्त की गण भी सिद्ध पद में है। शेष तीन पद आचार्य, उपाध्याय और साधु तो साधु हैं ही। उन नाम निर्देश करके नमस्कार किया गया है।

पुनः यह प्रश्न खड़ा होता है कि जब अरिहन्त को नमस्कार कर लिया गया आचार्य, उपाध्याय और साधु को नमस्कार करने की क्या आवश्यकता है। राजा को नमस्कार कर लिया गया तब परिषद् बाकी नहीं रह जाती। अरिहन्त राजा है। आचा उपाध्याय साधु उनकी परिषद् है। इन्हें अलग नमस्कार क्यों किया जाय।

प्रत्येक कार्य दो तरह से होता है। पुरुष प्रयत्न से तथा महत्पुरुषों की सहायता । इन दोनों उपायों के होने पर कार्य की सिद्धि होती है। महत्पुरुषों की सहायता होना हुत आवश्यक है किन्तु कार्य सिद्धि में स्वपुरुषार्थ प्रधान है। अपना पुरुषार्थ होने पर ही हत्पुरुषों की सहायता मिल सकती है। और तभी वह सहायता काम आ सकती है। हावत भी है कि—

हिम्मते मरदां मददे खुदा

यदि मनुष्य स्वयं हिम्मत करता है तो परमात्मा भी उसकी मदद करता है। जो बुद हिम्मत याँ पुरुषार्थ नहीं करता उसकी कोई कैसे मदद कर सकता है। अतः खुद पुरुषार्थ करना चाहिये। मदद भी मिलती जायगी।

अरिहन्त को नमस्कार करके आचार्यादि को नमस्कार करने का कारण उनसे सहायता प्राप्त करना है। यद्यपि काम स्वपुरुषार्थ से होता है फिरभी महान् पुरुषों की सहायता की आवश्यक्ता रहती है। जैसे मनुष्य लिखता खुद है मगर सूर्य या दीपक के प्रकाश के बिना नहीं लिख सकता। लिखने में प्रकाश की सहायता लेना अनिवार्य है। मनुष्य चलता खुद है मगर प्रकाश की मदद जरूरी है। उसके बिना चलते चलते खड्डे में गिर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक काम में महत्पुरुषों के सहारे की जरूरत रहती है।

परमात्मा की प्रार्थना के विषय में भी यही बात है। यदि हृदय में परमात्मा का ध्यान हो तो दुर्वासना उस समय टिक ही नहीं सकती। परमात्म ध्यान और दुर्वासना का परस्पर विरोध है। एक समय में दोनों का निर्वाह नहीं हो सकता। जब हृदय में दुर्वासना न रहे तब समझना चाहिए कि अब उसमें ईश्वर का निवास है। यदि जानबूझ कर हृदय में दुर्वासना रखे और ऊपर से परमात्मा का नाम लिया करे तो यह केवल ढोंग है। दिखाव है। सिद्ध और साधक दोनों की सहायता की अपेक्षा है अतः दोनों को नमस्कार किया गया है।

नमस्कार रूप में जो प्रथम गाथा कही गई है उसमें एक बात और समझनी है गाथा में कहा है कि सिद्ध और संयति को नमस्कार कर के तत्व की शिक्षा दूंगा। इस कथन में दो क्रियाएं हैं। जब एक साथ दो क्रियाए हो तब प्रथम क्रिया त्वा प्रत्ययान्त होती है इस क्रिया का प्रयोग अपूर्ण काम के लिये होता है। जैसे कोई कहे कि मैं अमुक

करके यह काम करूंगा। इसमें दो क्रियाएं हैं। एक अपूर्ण और दूसरी पूर्ण। प्रकृत
में श्री आचार्य ने दो क्रियाएं रख कर एक बड़े परमार्थ की सूचना की है। जैसे
को अन्धकार के साथ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है और न वह अन्धकार का नाश
के लिये ही उदय होता है। उसका उदय होने का स्वभाव है और अन्धकार का
प्रकाश के अभाव में रहने का है। अतः सूर्य उदय से अन्धकार नष्ट हो जाता है।
प्रकार ज्ञानियों की अज्ञानियों या अज्ञान के साथ किसी प्रकार का द्वेष नहीं है। सत्य
का प्रकाशन या निरूपण करने से असत्य या अज्ञान का खण्डन अपने आपही हो
है। ज्ञानी के निरूपण से अज्ञानान्धकार नष्ट होता ही है।

इस गाथा में जो क्रियाएं है उनसे भी ऐसा ही हुआ है। बौद्धों की मान्यता
कि आत्मा निरन्वय विनाशी है। किन्तु ज्ञानी कहते हैं कि यह बात सत्य नहीं है। आ
का निरन्वय नाश नहीं होता किन्तु सान्वय नाश होता है। पर्यायदृष्टि से आत्मा का
होता है द्रव्यदृष्टि से नहीं। जैसे मिट्टी का घड़ा बनाया गया। मिट्टी का मिट्टीरूप
नष्ट होगया और घट पर्याय बन गया। मिट्टी का बिल्कुल नाश नहीं हुआ किन्तु रूप ब
गया है यदि मिट्टी का निरन्वय नाश होजाय तब तो घड़ा किसी हालत में नहीं बनाया
सकता। सोने के कड़े को तुड़वाकर हार बनवाया गया। यहां कड़े का नाश हुआ
मगर निरन्वय नाश नहीं हुआ। कड़ा रूप पर्याय बदल गया और हार रूप बन गया
सोना दोनों अवस्थाओं मे कायम रहा। मतलब कि जगत् का हर पदार्थ द्रव्यरूप से न
नहीं होता किन्तु पर्यायरूप से विनष्ट होता है। यदि द्रव्यही नष्ट होजाय तो फिर प
किसका गिना जाय।

इस गाथा में दो क्रियाएँ दीगई हैं। जिनसे बौद्धों की निरन्वय न
मानने की बात खंडित होजाती है। टीकाकार कहते है कि यदि आत्मा निरन्वय न
हो तो गाथा में दीहुई दोनों क्रियाएँ निरर्थक हो जायंगी। सिद्ध और संयति को नम
करके तत्त्व की शिक्षा देता हूं'। इस वाक्य में 'नमस्कार करके' तथा 'शिक्षा देता हूं'
दो क्रियाएँ हैं। प्रथम नमस्कार किया गया और बाद में शिक्षा देने का कार्य आरम्भ कि
गया। दोनों क्रियाओं का कर्ता आत्मा एकही है। यदि आत्मा का निरन्वय एकान्त न
माना जाय तो दोनों क्रियाओं का प्रयोग व्यर्थ हो जायगा। आत्मा क्षण क्षण विनष्ट हो
है और वह भी सर्वथा नष्ट होता है। उसकी पर्यायें ही नष्ट नहीं होती किन्तु वह खुद
होजाता है। वैसी हालत में नमस्कार करनेवाला आत्मा नष्ट हो जाता है फिर शिक्षा दे

देगा। अथवा यह मानना पड़ेगा कि शिक्षा देनेवाला आत्मा दूसरा है क्योंकि नमस्कार करनेवाला आत्मा तो क्षणविनाशी होने के कारण उसी समय नष्ट हो गया। शिक्षा देने के लिए कायम न रहा। इस प्रकार आत्मा को निरन्वय विनाशी मानने से उपर्युक्त दोनों क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं। किन्तु आत्मा बौद्ध की मान्यता मुताबिक एकांत विनाशी नहीं है। आत्मा द्रव्यरूप से कायम रहता है। अतः दोनों क्रियाएँ सार्थक हैं। दो क्रियाओं के प्रयोगमात्र से ही बौद्धों की क्षणवादिता का खण्डन होजाता है।

आत्मा का एकान्त विनाश मानने से अनेक हानियां हैं। इस सिद्धान्त पर कोई टिक भी नहीं सकता। उदाहरण के लिये किसी आदमी ने दूसरे आदमी पर दावा दायर किया कि मुझे इससे अमुक रकम लेनी है वह दिलाई जाय। मुदायले ने कोर्ट में हाकिम के समक्ष यह बयान दिया कि यह दावा बिलकुल झूठा है। कारण यह है कि रुपये देने वाला मुद्दई और रुपये लेने वाला मुदायला दोनों ही कभी के नष्ट हो चुके हैं। हाकिम ने मन में सोचा कि यह देनदार चालाकी करके सिद्धान्त की ओट में बचाव करना चाहता है। अतः उसने उस आदमी को कैद की सजा देने की बात सुनाई। सुन कर वह रोने लगा और कहने लगा कि मैं रुपये दे दूंगा। सजा मत करिये। हाकिम ने उस आदमी से कहा कि अरे रोता क्यों है? तू तो कहता था कि आत्मा क्षण क्षण में पूर्णरूप से विनष्ट हो जाता है और बदल जाता है तब सजा भुगतने वक्त भी न मालूम कितनी बार आत्मा नष्ट हो जायगा और बदल जायगा। दुःख किस बात का करता है। मैं रुपये दिये देता हूं मुझे सजा मत करिये। कह कर उसने उसी वक्त रुपये दे दिये और पिंड छुड़ाया। इस प्रकार वह अपने क्षणवाद के सिद्धान्त पर कायम न रह सका।

कहने का मतलब यह है कि जब भावी पर्याय का अनुभव किया जाता है तब भूत पर्याय का अनुभव क्यों नहीं किया जाता। अवश्य किया जा सकता है। यदि ऐसा माना जाय कि जीव भावी क्रिया का तो अनुभव करता है लेकिन भूत पर्याय का अनुभव नहीं करता तब सब क्रियाएं व्यर्थ सिद्ध होगी। मोक्ष भी नहीं होगा। आत्मा के विनाश के साथ क्रिया का भी विनाश हो जायगा। इस प्रकार पुण्य पाप कुछ न रहेंगे। अतः हर एक पदार्थ एकान्त विनाशी हैं। यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। टीकाकार ने दो क्रियाओं का प्रयोग करके दार्शनिक मर्म समझाया है।

बीसवें अध्ययन में कही हुई कथा महा पुरुष की है। इस कथा के वक्ता महा निर्ग्रन्थ

है और श्रोता महाराजा है। इन महा पुरुषों की बातें हम जैसों के लिये कैसे लाभ दायी होगी इसका विचार करना चाहिये। इस कथा के श्रोता राजा श्रेणिक का परिचय करते हुए कहा है:—

पभूय रयणो राया सेणिश्रो मगहाहिवो।

मगधदेश का स्वामी राजा श्रेणिक बहुत रत्न वाला था। पहले रत्न का अर्थ समझ लीजिए। आप लोग हीरे, माणिक आदि को रत्न मानते हो लेकिन ये ही रत्न नहीं है, कुछ अन्य पदार्थ भी रत्न कहे जाते है। नरों में भी रत्न होते है, हाथी, घोड़ा आदि में भी रत्न होते है और स्त्रियों में भी रत्न होते हैं। इस प्रकार रत्न का अर्थ बहुत व्यापक है। रत्न का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है। जो श्रेष्ठ होता है उसे भी रत्न कहा जाता है। राजा श्रेणिक के यहां ऐसे अनेक रत्न थे।

यह बात विचार करने लायक है कि शास्त्रकार ने श्रेणिक राजा के लिए अन्य विशेषणों का प्रयोग न करके **"बहुत रत्नों का स्वामी था"** ऐसा क्यों कहा। प्रभूत रत्न कहने का आशय यह है कि यदि कोई अनेक रत्नों का स्वामी हो तो भी उसका जीवन बेकार है। किन्तु जिसने अपने आत्म–रत्न को पहचान लिया है उसका जीवन सार्थक है। यदि आत्मा को न पहिचाना तो सब रत्न व्यर्थ हैं। अन्य सब रत्न तो सुलभ हैं किन्तु धर्म–रत्न दुर्लभ है। धर्मरूपी रत्न के मिलने पर ही अन्य रत्न लेखे में गिने जा सकते हैं। अन्यथा वे व्यर्थ हैं।

आप लोगों को सब से बड़ी सम्पदा मनुष्य जन्म के रूप में मिली हुई है। आप इसकी कीमत नहीं जानते। यदि आप इसकी कीमत जानते होते तो यह विचार अवश्य करते कि हम कंकड़ पत्थर के बदले जीवन रूपी रत्न क्यों खो रहे हैं। आप पूछेंगे कि हम क्या करें कि जिससे हमारा यह मनुष्य जन्म रूप रत्न व्यर्थ न होकर सार्थक बन जाय। आपको रोज यही तो बताया जाता है कि यदि जीवन सफल करना है तो एक एक क्षण का उपयोग करो। वृथा समय मत गमाओ। हर क्षण परमात्मा का घोष हृदय में चलने दो। आत्मा को ईश्वर मय बनाने का प्रयत्न करना रत्न को सार्थक बनाना है।

फिर आप पूछेंगे कि 'आत्मा को परमात्मा कैसे बनाया जाता है' तो इसका उत्तर यह है कि संसार में पदार्थ दो प्रकारके होते हैं १ काल्पनिक २ वास्तविक। पदार्थ

ोर है और उसके विषय में कल्पना कुछ और करली जाय, यह अज्ञान है। अज्ञान
हुई कल्पना ही आपको गड़बड़ में डाल देती है। कल्पना का पदार्थ दूसरा होता है
ास्तविक पदार्थ दूसरा। वास्तविक पदार्थ के विषय में की गई कल्पना से उत्पन्न
तब तक नहीं मिटता जब तक कि वह वास्तविक देख न लिया जाय। दृष्टान्त के
: समझिये कि किसी आदमी ने शीप में चांदी की कल्पना करली। जब वह निकट
और ध्यान पूर्वक देखने लगा तब उसका वह मिथ्या ज्ञान नष्ट हो गया और वास्त-
ज्ञान उत्पन्न हो गया। जैसे शीप में चांदी की कल्पना मिथ्या है क्योंकि अन्य पदार्थ
न्य रूप से मान लेना अर्थात् जो पदार्थ जिस रूप में नहीं है उसे उस रूप में मान
ी अज्ञान है। इस प्रकार की कल्पना को छोड़िये और अपने हृदय में परमात्मा
म का गुंजन होने दीजिये। यह सोचिये कि मैं नाक कान हाथ पैर आदि नहीं हूं।
पुद्गल के रूप है। मैं शुद्ध चेतनमय आनन्द घन मूर्ति हूं। इस तरह सोचने से
ो जो मनुष्य जन्म रूप रत्न मिला हुआ है वह सार्थक होगा।

जब आप सोते हैं तब आंख कान आदि सब बंद रहते हैं फिर भी स्वप्नावस्था मे
ा देखता व सुनता है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियां सो जाती है और मन जागृत रहता है।
अवस्था को ही स्वप्नावस्था कहते हैं। बाह्य इन्द्रियां सोई हुई हैं फिर भी स्वप्न में
ों का काम होता ही है। स्वप्न में मनुष्य नाटक सीनेमा देखता है और गाने भी
ा है। इन्द्रियों के सोते रहते स्वप्नावस्था में इन्द्रियों का काम कौन करता है, इस बातका
ध्यान पूर्वक विचार कीजिये। इस बात का विवेक करिये कि आत्मा की शक्ति अनन्त
ेकिन भ्रमवश अथवा अज्ञान या मिथ्याधारणा के कारण शरीरादि को अपना मान बैठा
ात्मा का यह भ्रम वास्तविक पदार्थ के देख लेने से तुरत मिट सकता है। जैसे शीप
देखते ही चांदी का भ्रम मिट जाता है। जड़ शरीर और चेतन आत्मा का यह बे मेल
न्ध क्यों और कैसे है इस बात पर विचार करिये। विचार करने से सद्ज्ञान प्राप्त होगा।
र करके जो पदार्थ हमारे नहीं हैं उनको छोड़ने की कोशिश कीजिये। जब शरीर भी
ा अपना नहीं हो सकता तो धन दौलत और कुटुम्बादि हमारे कब हो सकते है। अपने
। का वास्तविक ज्ञान ही मोक्ष की कुंजी है। आत्मा में अनन्त शक्तियां रही हुई हैं।
बिना आंख के देखता और बिना कान के सुनता है। जीभ के बिना रसास्वादन करता
स्वप्न में न इंद्रियां है और न पदार्थ। फिर भी आत्मा कल्पना के द्वारा सब कुछ अनु-
करता ही है। स्वप्न मे आत्मा गंध रस स्पर्श की कल्पना करके आनन्द मानता है।

क्रोध लोभ आदि विकारों के वश में भी होता है। स्वप्न में सिंह आदि हिंसक आदि देखकर भयभीत भी होता है। दुःखी भी होता है और सुखी भी। कोई मुझे काट रहा तथा कोई मेरे शरीर पर चन्दन का लेप कर रहा है आदि भी अनुभव होता है।

स्वप्न की सब घटनाओं से आत्मा की शक्ति का पता लगता है कि बिना इन्द्रियों की सहायता के भी वह किस प्रकार सब काम चला लेता है। इसका अर्थ हुआ कि भौतिक पदार्थों के साथ आत्मा का कोई तालुक नहीं है। जो सम्बन्ध है वास्तविक नहीं है किन्तु हमारी गलत समझ के कारण है। 'मैं इस तरह की की चीजों में आत्मा को न डालूं किन्तु परमात्मा में अपने आपको लगादूं' यह करने से मनुष्य जीवन रूपी रत्न की सार्थकता है।

प्रत्येक काम उसके स्वरूप के अनुसार ठीक होना चाहिए। उद्देश्य कुछ और और काम कुछ अन्य करते हों तो साध्य सिद्ध नहीं हो सकता। ऐसा करने से 'गये गणेश और बन गये महेश' वाली कहावत चरितार्थ होती है। कार्य किस प्रकार से करना चाहिए यह बात एक उदाहरण से समझाता हूं।

एक साहसी चोर साहस करके राजा के महल में घुस गया। महल में वह तो गया, किन्तु राजा की नींद खुल जाने से वह भयभीत होगया। चोर का कितना होता है? मालिक के जाग जाने पर चोर की ठहरने की हिम्मत नहीं रहती। राजा को जागा हुआ देख कर चोर ने सोचा कि यदि मैं पकड़ा जाऊंगा तो मारा जाऊंगा। अतः वह चोर वहां से भागा। राजा ने भागते हुए चोर को देख लिया। राजा ने यदि मेरे महल में से चोर बिना पकड़े भाग जायगा तो मेरी बदनामी होगी अतः वह के पीछे पीछे दौड़ा। आगे चोर भागता जाता था और उसके पीछे राजा भी दौड़ता था। राजा को चोर के पीछे दौड़ता देखकर सिपाही आदि भी उसके पीछे दौड़ने। आगे--आगे चोर, उसके पीछे राजा और राजा के पीछे सिपाही। अन्त में चोर थक और विचारने लगा कि राजा उसके समीप में ही पहुँच रहा है, यदि पकड़ा जाऊं जानकी खैरियत नहीं हैं, मगर बचने की भी कोई गुंजाइश नहीं है। भागते हुए ही आगे करने लायक बात तै करली। पास ही स्मशान आगया था। उसने सोचा कि समय मुझे मुर्दा बन जाना चाहिए। मुर्दा बन जाने से राजा मेरा क्या बिगाड़ मुर्दा बन जाने पर मुझे जिन्दा आदमी का कोई काम न करना चाहिये। मुझे पूरा मुर्दा बन जाना चाहिए। स्वांग करना तो हूबहू करना चाहिए।

यह सोचकर वह धड़ाम से स्मशान में जाकर गिर पड़ा। उसने अपनी नाड़ियों ऐसा संकोच कर लिया कि मानो साक्षात् मुर्दा ही हो। राजा उसके पास आगया और हने लगा कि यह चोर पकड़ लिया गया है। इतने में सिपाही लोग भी आगये और हने लगे कि महाराज यह काम हमारा है। इस काम के लिये आपको कष्ट करने की जरूरत थी। चोर आपके भय से गिर भी पड़ा है और मर भी गया है। राजा ने सिपाहियों से हा कि अच्छी तरह तपास करो, कही कपट करके तो नहीं पड़ा है। सिपाही लोग चोर ो खूब हिलाने लगे। वह मुर्दे के समान हिलाने से इधर उधर होने लगा।

मनुष्य की आपत्ति भी महान् शिक्षा देती है। आपत्ति मनुष्य को उन्नत बनाती । "**रंगलाती है हिना पत्थर पै घिस जाने के बाद**" महेंदी को जितना घिसा ाय उतना उसका रंग ज्यादा निखरता है। मनुष्य भी जितनी आपत्तियां सहन करता है तना अच्छा आदमी बनता है। राम को यदि वनवास करने की आपत्ति न उठानी पड़ती ा आज उन्हें कोई नहीं जानता। भगवान् महावीर यदि उपसर्ग और परिषह न सहते तो ौन उनका नाम लेता। कौन उन्हें महावीर कहता। सीता, मदनरेखा, अंजना, सुभद्रा ादि की शोभा आपत्ति सहन करने के कारण ही है। अतः आपत्ति से घबड़ाना नही ाहिए किन्तु धैर्य पूर्वक उसका सामना करना चाहिए।

राजा ने पुनः सिपाहियों से कहा कि घबड़ाओ नहीं धैर्य पूर्वक परीक्षा करो कि वास्तव में ह मर गया है या जिन्दा है। सिपाही उस मुर्दा बने हुए चोर को खूब पीटने लगे। पीटते ीटते उसके खून निकल आये मगर उसने उफ तक नहीं किया। सिपाहियों ने पुनः राजा । कहा कि सचमुच यह मर गया है। कपट पूर्वक नहीं पड़ा है। हमने इसे इतना पीटा ः कि खून बह चला है फिर भी इसने चूं तक नहीं किया है। राजा ने कहा कि दर ्रसल वह जिन्दा है। मरा नही है। मुर्दे के शरीर में से खून नहीं निकलता। उसके खून ा पानी हो जाता है। इसके शरीर से खून निकल आया है अतः यह जिन्दा है। इसे ारे से उठालो और इसके कान में कहदो कि तेरे सब गुन्हा माफ हैं, उठ खड़ा हो। ह सुनते ही चोर उठ खड़ा हुआ और राजा के सामने आकर हाजिर होगया।

राजा सोचने लगा कि यह चोर मेरे भय से मुर्दा बन गया था। मनुष्य के भय ी मनुष्य इस प्रकार मुर्दा बन सकता है तो मुझे मृत्यु के भय से क्या करना चाहिए। जा ने चोर से पूछा कि तेरे पर इतनी मार पड़ने पर भी तूं क्यों नहीं बोला ? चोर ने

उत्तर दिया कि महाराज ! जब मैंने मुर्दे का स्वांग किया था तब कैसे बोल सकता था। मुर्दा बना और मार पड़ने पर रोने लगूं यह कैसे हो सकता है। राजा ने चोर से कहा कि मालूम होता है तुम बड़े भक्त हो। चोर ने कहा मैं भक्ति कुछ नहीं जानता, मैं तो आपके भय से अचेत पड़ा था। राजा ने पुनः कहा कि हे चोर! जैसे मेरे भय से तू मुर्दा अर्थात् शरीरादि के प्रति अनासक्त बना वैसे ही यदि इस संसार के दुःखों के भय से ब जाय तो तेरा कल्याण होजाय। चोर कहने लगा मैं इन ज्ञान की बातों को नहीं समझता।

दृष्टान्त कहने का सारांश यह है कि चोर ने मुर्दे का स्वांग धरा था और उ पूरा निभाया भी था। यदि वह मार खाते वक्त बोल जाता तो क्या उसकी रक्षा हो सकती थी? कभी नहीं। उसने मार खाकर भी अपने विरुद का रक्षण किया था। चोर के समा आप भी यदि अपने विरुद की रक्षा करो तो भगवान् दूर नहीं हैं। ऊपर से यदि कहो कि हमारे हृदय में भगवान् बसा है और भीतर में काम क्रोध आदि विकारों को स्थान दे तो क्या आपका स्वांग पूरा गिना जायगा और आपके मन में भगवान् वास कर सकते हैं? चोर ने अपना विरुद निभाया तो क्या आप नहीं निभा सकते। सांसारिक प्रपंचों झगड़ों में पड़ कर अपना विरुद मत खोओ। भक्त कबीरदास ने कहा है कि—

तू तो राम सुमर जग लड़वा दे ॥

कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वाको पढ़वा दे ॥
हाथी चलत है अपनी गत सों, कुतर भुकत वाको भुकवा दे ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधू, नरक पचत वाको पचवा दे ॥

आप कहेंगे कि आज राम कहां हैं? राम तो दशरथ के पुत्र थे जिनको हुए हजारों वर्ष बीत चुके है। मै कहता हूं राम आप सब के हृदय में बसा हुआ है

रमन्ति योगिनो यस्मिन् स रामः

जिसमें योगी लोग रमण करते है वह राम है। योगी लोग आत्मा में ही करते हैं अतः आपकी आत्मा ही राम है ऐसी आत्मा का सदा स्मरण करिये। किन्तु र किस प्रकार करना चाहिए। इसका खास खयाल रखिये। यदि चोर मार खाते वक्त भी कर देता तो उस का सांग पूरा न गिना जाता। इसी प्रकार आप परमात्मा का लेकर भी यदि संसार के झगड़ों में पड़ गये तो क्या भक्त बनने का आपका स्वांग हो

ना जायगा। कभी नहीं। यह सोचना चाहिए कि मेरा आत्मा हाथी के समान है। सार के झगड़े कुत्तों के समान हैं। यदि इस आत्मा रूपी हाथी के पीछे झगड़े टण्टे रूप कुत्ते भूसते हों तो इसमें आत्मा को क्या। कोई कोरे कागज पर स्याही से कुछ भी लिखता हो तो वह लिखता रहे इससे आत्मा को क्या हानि है इस प्रकार सोचकर परमात्मा की शरण जाने से आपका सब मनोरथ सिद्ध होगा! चोर द्वारा पूरा स्वांग निभाने पर राजा का हृदय परिवर्तित होगया तो कोई कारण नहीं है कि आपके द्वारा ईश्वर भक्त का स्वांग पूरी तरह निभाने पर आपके लिए लोगों का हृदय न बदले। आप लोग, पक्की परीक्षा हो जाने के बाद भक्त के लिए सब कुछ करने के लिए तय्यार रहते है। भक्ति में कपट नहीं होना चाहिए। कपट का पर्दा कभी न कभी फाश हुए बिना नही रहता।

आप लोग घरबार वाले हैं अतः व्याख्या सुन कर यहां से घर पहुंचते ही संसार की अनेक उपाधियां आपको आ घेरेगी। उपाधियों के वक्त भी यदि आप लोग मेरा यह उपदेश ध्यान में रक्खोगे तो आपका वास्तविक कल्याण होगा और यहां बैठ कर व्याख्यान श्रवण का कार्य सफल होगा। व्याख्यान हाल एक शिक्षालय है जहां अनेक विषयों की शिक्षा दी जाती है। शिक्षालय से शिक्षा ग्रहण करके उसका उपयोग जीवन व्यवहार में किया जाता है। इसी प्रकार यहां से ग्रहण की हुई शिक्षाओं का पालन यदि जीवन में न किया गया तो शिक्षा लेना व्यर्थ हो जायगा। जो पालन करेगा उसका यह भव और पर भव दोनों सुधरेगा।

> अग्नि शीतल शील से रे, विषधर त्यागे विष।
> शार्दूल सिंह अज गज होजावे, शीतल होवे रिपु रे॥ धन.॥
> सत्य शील को सदा पालते, श्रावक सुर शृङ्गार।
> धन्य धन्य जो गृहस्थवास में, चाले दुर्धर धार रे॥ धन.॥

सुदर्शन का व्याख्यान न तो उसके शरीर का है और न वैभव का। किन्तु वह शील का पालन करके मुक्तिपुरी में पहुँचा है अतः उसको नमस्कार करते हैं और उसका शील्याख्यान भी करते हैं।

गो आज सुदर्शन मौजूद नहीं है अर्थात् उसका वह भौतिक कलेवर जिसके द्वारा उसने महान्शीलव्रत का पालन किया था हमारे समक्ष उपस्थित नहीं है। तथापि

उसका यश: शरीर चरित्र और मोक्ष तीनों मोजूद हैं। जिस शील का आचरण करने आज उसका व्याख्यान किया जारहा है उस शील के प्रताप से धधकती हुई आग शीतल होजाती है। दृष्टान्त के लिए सीता की अग्नि परीक्षा प्रसिद्ध ही है। कदाचित् सीता का दृष्टान्त पुराना बताकर कोई भाई इस बात पर एतबार न करे कि शील से कैसे शान्त होसकती है तो उनके लिए ऐतिहासिक ऐसे उदाहरण मोजूद हैं कि धर्म परीक्षा के लिए उनको आग में झोंका गया लेकिन अग्नि उन्हें न जला सकी। भारत में ही ऐसे उदाहरण नहीं है किन्तु युरोप में भी ऐसे उदाहरण हैं। अग्नि कहती है मैं कुशील-व्यक्ति को जला सकती हूं सुशील या सदाचारी को जलाने की मुझ में ताकत नहीं है। उस सुशील आत्मा की महान आध्यात्मिक शान्ति के सामने मेरी गरमी नष्ट हो जाती है। जब द्रव्यशील की यह शक्ति है तब भावशील की क्या बात करना।

मेरे कथन को सुन कर कि शील पालने से अग्नि शीतल हो जाती है भाई एक आध दिन शील का पालन करके यह जांच न करे कि देखूं मेरे हाथ को जलाती है या नहीं। और यह सोच कर कोई घर जाकर चूल्हे की अग्नि में अपना हाथ मत डाल देना। यदि कोई ऐसा करेगा तो वह मूर्ख गिना जायगा। जिस शक्ति की कही जा रही है माप भी उसी के अनुसार होना चाहिये। कहा जाता है और सत्य भी है कि हवा में भी वजन होता है। कोई आदमी एक लिफाफे में भर कर उसे तोलने लगे तो वह न तुलेगी। लिफाफे में हवा न तुलने से कोई आदमी यह निष्कर्ष निकाले कि हवा में वजन होने की बात बिलकुल गलत है तो यह उसकी भूल है। हवा तोली जा सकती है मगर उसे तोलने के साधन जुड़े होते है हवा बहुत सूक्ष्म है अतः उसे तोलने के साधन भी सूक्ष्म होंगे किसी के ऐसा कह देने से क्या हवा के विषय में किसी प्रकार की शका की जा सकती है।

शील की शक्ति से अग्नि शीतल हो जाती है मगर कब और किस हद तक शील पालने से होती है इसका अध्ययन करना चाहिए। केवल शील की बाधा लेली और करने परीक्षा कि हमारा हाथ अग्नि में जलता है या नहीं तो पछताना पड़ेगा। हाथ बैठोगे। शील की प्रशंसा करते हुए शास्त्र में कहा है:—

देव दाणव गंधव्वा जक्ख रक्खस किन्नरा।
बंभचारीं नमंसन्ति दुक्करं जे करंति तं॥

देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर सब दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले को नमन करते हैं। इस प्रकार ब्रह्मचर्य की शक्ति बताई गई है और कहा गया है कि ब्रह्मचारी के लिए इस जगत् में कोई गुण या शक्ति अप्राप्य नहीं है उसके लिए सब कुछ सुलभ है। किन्तु जिस प्रकार लोहे के बाट से अनाज का वजन किया जाता है उसी प्रकार स्थूल साधनों से उसका माप नहीं हो सकता। इस तरह माप करने से आपके हाथ कुछ न लगेगा। यदि महापुरुषों की बातों पर विश्वास लाकर आप भी इस मार्ग में आगे बढ़ते जाओगे तो अवश्य एक दिन ऐसी शक्ति भी प्राप्त हो जायगी कि अग्नि भी शीतल हो जाय।

शील की शक्ति से साँप निर्विष हो जाता है। कहावत है कि **'साँप किसका सगा है'** वह समय पर अपनी शक्ति सब पर आजमाता है किन्तु शीलवन्त का सांप भी सगा है यह बात अनेक उदाहरणों से सिद्ध है ऐसे ऐतिहासिक उदाहरण है कि सांपने काटने के बजाय सहायता की है। नूरजहां बेगम मुहम्मद नाम के सिपाही की लड़की थी। एक बार भूखों मरने के कारण मुहम्मद और उसकी स्त्री अफगानिस्तान से भारत आ रहे थे स्त्री गर्भवती थी। मार्ग में उसको लड़की हो गई मोहम्मद ने कहा कि इस समय अपने को अपना भार उठाना भी कठीन है वैसी हालत में इस छोकरी को कैसे उठायेंगे। अतः यहीं पर छोड़ दो स्त्री ने पति की बात मान कर एक वृक्ष के नीचे उस नादान बच्ची को वहीं पर छोड़ दिया। कुछ आगे चलने पर स्त्री घबड़ाई और चलने में असमर्थ हो गई। आप जानते है उसका मातृ हृदय था। वह लड़की को इस प्रकार निराधार छोड़ देने की बात को सहन न कर सकी। अखीर मोहम्मद वापस उस वृक्ष के नीचे उस बच्ची को लेने के लिये गया। वह वहां क्या देखता है कि एक सांप उस बच्ची पर फन करके धूप से उसकी रक्षा कर रहा है।

साँप भी तब काटता है जब किसी में शैतानियत होती है। यदि शैतानियत न हो तो सांप भी नहीं काटता। सेंधिया के पूर्वज महादजी के लिए कहा जाता है कि वे पेशवा के यहां जूतों की रक्षा करने के लिए नौकर थे। एक बार पेशवा किसी महफिल में गये। महादजी उनके जूते छाती पर रखकर सोगये। जब पेशवा वापस आये तब देखा कि महादजी पर एक सांप छाया किए हुए है। उन्होंने सोचा कि साक्षात कालरूप सांप भी जिसकी रक्षा कर रहा है उस आदमी से मैं ऐसा तुच्छ काम ले रहा हूं। ऐसा सोचकर पेशवा ने महादजी को बढ़ाना शुरू किया। आज महादजी के वंशज करोड़ों की जागीरें

भोग रहे हैं। उनके पैसे और कागज आदि पर सांप का चित्र आजभी रहता है।

कहने का भावार्थ यह है कि जब शील पूर्णरूप से पाला जाय तब सांप भी नहीं काटता। लेकिन कोई इस कथन पर से सांप के मुँह में हाथ न डाले अथवा सांप को पकड़कर बच्चे पर छाया न करवाये। कोई ऐसा करे तो यह उसकी भूल है। यदि हममें शील का तेज होगा तो प्रकृति अपने आप हमारी सहायता करेगी।

शील की शक्ति से सिंह भी खरगोश के समान गरीब बन जाते हैं। जो व्यक्ति सुदर्शन के समान किसी भी समय और किसी भी परिस्थित में अपने शील का भंग नहीं होने देता किन्तु सदा शील की रक्षा करता है, उसी का शील सच्चा शील है आप में शील के प्रति सच्ची श्रद्धा हो तो फिर कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। आज सबे कामों के प्रति लोगों की श्रद्धा हिलचुकी है अतः सब कुछ कहना पड़ता है।

जिस व्यक्ति में पूर्ण शील है वह किसी प्रकार का चमत्कार दिखाना पसन्द नहीं करता। आप कहेंगे कि चमत्कार देखे बिना हमें शील धर्म पर विश्वास कैसे होगा? यदि साधु लोग चमत्कार दिखाने लगें तो बहुत लोग उनकी तरफ आकर्षित होंगे। यह बात ठीक है कि चमत्कार को नमस्कार मगर सच्चे साधुओं को न तो नमस्कार की परवाह होती और न वे कभी चमत्कार दिखाने की झंझट में पड़ते हैं। वे तो अपना आत्म लाभ करने में तल्लीन रहते हैं। इस बात को एक छोटे से दृष्टान्त से समझाता हूं।

एक आदमी ने जल तरण विद्या सीखी। सीख कर लोगों को अपना [illegible] दिखाने लगा कि देखो मैं जल में किस प्रकार टिक सकता हूं और तैर सकता हूं। एक योगी वहां आ पहुँचा और कहने लगा कि अरे क्या अभिमान में फूले जा रहे हो। तीन पैसे की विद्या पर इतना घमण्ड मत करो। उस आदमी ने कहा योगीराज! मैंने साठ वर्ष तक परिश्रम करके यह जलतरण विद्या सिखी है और आप इसे तीन पैसे की बताते हैं। हां यह तीन ही पैसे की विद्या है कारण तीन पैसे में नदी पार की जा सकती है। नौका वाला तीन पैसे लेकर उस पार पहुँचा देता है। साठ साल के परिश्रम से यदि तूने यही सिखा है तो वस्तुतः समय बरबाद किया है। अगर साठ साल बिगाड़ कर इस तरह का खेल ही दिखाया तो जीवन नष्ट ही किया है। साठ सालों में केवल नौका ही बन सके! आत्म कल्याण न साध सके।

इसी प्रकार यदि कोई घरबार छोड़ कर साधु बने और शील धर्म का पालन करे।

भी आत्म-कल्याण करने के बजाय चमत्कार दिखाने में लग जाय तो उसका साधुत्व
ो जायगा। अतः सच्चे साधु शील रूपी जल में निमग्न रहते हैं। वे चमत्कार नहीं
ते। साधु तो घर स्त्री आदि छोड़ कर शील का पालन करने के लिए ही कटिबद्ध
ं अतः पालते ही हैं मगर सुदर्शन ने गृहस्थावस्था में होते हुए भी शील का पालन
है अतः वे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

शील किस प्रकार पाला जाता है इसके शास्त्र में अनेक उदाहरण मौजूद है।
उनको ध्यान में कीजिये। केवल यह मान बैठिये कि स्त्री प्रसंग न करना ही शील
वास्तव में जब तक वीर्य की रक्षा न की जाय तब तक तेज नहीं आ सकता। अतः
त्री या घर स्त्री सब से बच कर नष्ट होने वाले वीर्य की रक्षा कीजिये।

एक आदमी की अंगूठी में रत्न जड़ा हुआ था। वह उसे निकाल कर पानी में
ना चाहता था। दूसरा आदमी अपनी अगूठी की रक्षा किया करता था। इन दोनों में
आप किसे होशियार कहेंगे। रत्न की रक्षा करने वाले को ही होशियार कहेंगे। जिस वीर्य
आपका यह शरीर बना हुआ है उस वीर्य रूपी रत्न को इधर--उधर नष्ट करना कितनी
ता है। यदि आप उसकी रक्षा करेंगे तो आप में तेजस्विता आ जायगी। आज लोग
हीन होते जा रहे हैं यही कारण है कि डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है। पहले के
वीर्यवान् होते थे अतः डाक्टरी सहायता की उन्हें बहुत कम आवश्यकता पड़ती थी।

आज संतति निरोध के नाम पर स्त्री का गर्भाशय ऑपरेशन कराके निकलवा
लने का भी रिवाज चल पड़ा है स्त्री का गर्भाशय निकलवा देने पर चाहे जितना विषय
न किया जाय, कोई हर्ज नहीं, यह मान्यता आज कल बढ़ती जारही है लेकिन यह पद्धति
ाना ने से आपके शील की तथा आपकी कोई कीमत न रहेगी। वीर्य रक्षा करने से
मनुष्य की कीमत है वीर्य को पचा जाने में ही बुद्धिमत्ता है।

आधुनिक डाक्टरों का मत है कि जवान आदमी शरीर मे वीर्य को नहीं पचा
कता। ऐसा करने से दूसरी हानि होने की सम्भावना रहती है। इस मान्यता के
परीत हमारे ऋषि मुनियों का अनुभव कुछ जुदा है। शास्त्र में ब्रह्मचर्य की रक्षा
लिये नववाड़ बतलाई हुई है जिनकी सहायता से वीर्य शरीर में पचाया जा सकता है।

अमेरिकन तत्ववेत्ता डाक्टर थोर एक बार अपने शिष्य के साथ जंगल में गया

था। शिष्य ने उनसे पूछा कि यदि कोई आदमी अपने वीर्य को शरीर में न पचा सके तो उसे क्या करना चाहिये। थौर ने उत्तर दिया कि ऐसे व्यक्ति के लिये जीवन भर में एक बार स्त्री प्रसंग करना अनुचित नहीं है। ऐसा करना वीर का काम है। जिस प्रकार सिंह जीवन में एक बार सिंहनी से मिलता है। वैसे ही जो जीवन में एक बार स्त्री संग करता है वह वीर पुरुष है। शिष्य ने पूछा कि यदि ऐसा करने पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये। थौर ने उत्तर दिया कि साल में एक बार स्त्री प्रसंग करना चाहिये। फिर शिष्य ने पूछा यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना। गुरु ने कहा कि मास में एक बार स्त्री से मिलना चाहिये। यदि इस पर भी मन न रुके तो क्या करना चाहिये, पूछने पर थौर ने उत्तर दिया कि फिर मर जाना चाहिये।

पवनजय की हनुमानजी एक मात्र संतान थे। अंजना पर कोप करके पवनजी बारह वर्ष तक अलग रहे। अलग रह कर उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था किन्तु ब्रह्मचर्य-पालन करते रहे। बारह वर्ष बाद अंजना से मिले थे अतः हनुमान जैसा वीर पुत्र हुआ था। आज लोगों को सशक्त और तेजस्वी पुत्र तो चाहिये मगर यह विचार नहीं करते कि हम वीर्य रक्षा कितनी करते है। डाक्टर थौर ने कहा है कि मास में एक बार स्त्री प्रसंग करने पर भी यदि मन न रुकता हो तो उस आदमी को मर ही जाना चाहिये क्योंकि जो आदमी मास में एक बार से अधिक वीर्य नाश करता है उसके लिये मरने के सिवा और क्या मार्ग है।

आज समाज की क्या दशा है। आठम-चौदस को भी शील पालने की शिक्षा देनी पड़ती है। आठम चौदस की प्रतिज्ञा लेकर लोग ऐसे भाव दिखलाते हैं मानो वे साधुओं पर कोई उपकार करते है। सच्चा श्रावक स्व स्त्री का आगार होने पर भी अपनी स्त्री के साथ भी संतोष से काम लेगा। जहां तक होगा बचने की कोशीश करेगा। सब सुधारों का मूल शील है। आप यदि जीवन में शील को स्थान देंगे तो कल्याण है सुदर्शन किसका लड़का था। और उसका जन्म किस प्रकार हुआ यह बात अवसर होने पर आगे कही जायगी।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान

स्व तं त्र ता
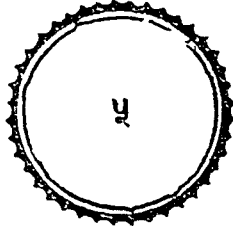
" सुज्ञानी जीवा भजले रे जिन इकवीसवां । प्रा०......... । "

यह इकवीसवें तीर्थंकर भगवान् नेमीनाथ की प्रार्थना है । परमात्मा की प्रार्थना कैसी करनी चाहिए इस विषय पर बहुत विचार किया जा सकता है किन्तु इस समय थोड़ासा प्रकाश डालता हूं । इस प्रार्थना में कहा गया है कि—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो ।

यह एक महावाक्य है । इसी प्रकार दूसरों ने भी कहा है-

देवो भूत्वा देवं यजेत्

इन पदों का भावार्थ यह है कि प्रभु की प्रार्थना गुलाम बनकर मत करो किन्तु परमात्म स्वरूप बनकर करो ।

से प्रसन्न होकर हमें सुखी बना देगा, किन्तु ईश्वरत्व तो नहीं दे देगा। बादशाह और नौ के दृष्टान्त से आत्मा और परमात्मा में जो साम्य बताया गया है, वह आध्यात्मिक मा लागू नहीं हो सकता। बादशाह और नौकर का दृष्टान्त स्थूल भौतिक है। जब कि और परमात्माका सम्बन्ध सूक्ष्म है, आध्यात्मिक है। इस प्रकार की कल्पना आध्यात्मिक में कोई मूल्य नहीं रखती।

अनलहक्क या खुदा शब्द का अभिप्राय यह है कि मैं ईश्वर हूं। खुदा का है जो खुद से बना हो। तो क्या आत्मा किसी का बनाया हुआ है क्या आत्मा बनावटी है? जैसे कुंभकार मिट्टी से घड़ा बनाता है, उसी प्रकार हमको किसी ने बनाया है? जब कोई हमें बना सकता है तो कोई हमारा विनाश भी कर है। जैसे कि कुंभकार घड़ा बना भी सकता है और फोड़ भी सकता है। ऊपर के प्रश्न निरर्थक हैं। वास्तव में आत्मा वैसा नहीं है। यदि आत्मा बनावटी हो तो मुक्ति स्वतंत्रता के लिए किये हुए हमारे प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध होंगे। हम क्या है? और कैसे हैं इस प्रार्थना में बताया ही है:—

तू सो प्रभु, प्रभु सो तू है, द्वैत कल्पना मेटो।
शुद्ध चैतन्य आनन्द विनयचन्द परमारथपद भेंटो॥ सुज्ञानी॥

कायरता और दुविधाके कपड़े फेंककर आत्मस्वरूपको पहिचानिये। आपका ईश्वरके आत्मा से छोटा नहीं है। आप तो इतना विकास कर चुके हो, आपकी आत्मा ईश्वर बराबर है, इस में क्या संदेह है। खसखस जितने शरीर में निगोद के अनन्त जीव रहे हैं, उनका आत्मा भी ईश्वर के आत्मा के समान है।

ज्ञानियों के कथनानुसार निगोद के जीव भी ईश्वर रूप हैं। आत्म दृष्टि से ईश्वर और इन जीवों में कोई भेद नहीं है। यह बात समझने के लिए यदि कि अनुभवी सद्गुरु से ठाणांग सूत्र सुना जाय तो शंका का कोई स्थान न रहे। श्री ठाणांग के प्रथम ठाणे में कहा है कि:—

एगे आया

अर्थात् आत्मा एक है-समान है। सिद्ध और संसारी का कोई भेद न रख कहा है कि आत्मा एक है। सब का आत्मा एक समान है जैनों के '**एगे आया**' ए

ाद और वेदान्तियों के अद्वैत वाद में नयदृष्टि से किसी प्रकार का भेद नहीं है। एकान्त ष्टि पकड़ने पर भेद पड़ जाता है। शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से एक आत्मा है। चाहे वह द्ध हो चाहे संसारी। जैसे मिट्टी मिला हुआ सुवर्ण और मिट्टी से अलग सुवर्ण एक वस्तु है। ार व्यवहार में उनमें भेद गिना जाता हैं व्यवहार में एक ही डली की शुद्ध सुवर्ण की रकमों भी भेद गिना जाता है जब कि सराफ की दृष्टि में कोई भेद नहीं होता है। यदि मनुष्य हिम्मत हारे तो मिट्टी में मिले हुए सोनेको शुद्ध सोना बना सकता है। ताप आदिके द्वारा मैल दूर किया जाता है। किन्तु जब तक मिट्टी और सोना आपस में मिला हुआ है तब तक व्यवहार में न्तर गिना जायगा। मूल्य में भी बड़ा अन्तर रहता है। मिट्टी में रहे हुए सोने को यदि ना न माना जाय तो कहीं जेब में से तो सोना नहीं टपक पड़ता। मिट्टी में ही सोना और प्रयत्न विशेष के द्वारा वह अलग किया जा सकता है। जिन लोगों ने सोने की ाने देखी है वे इस बात को अच्छी तरह समझ सकते है।

जिस प्रकार शुद्ध और अशुद्ध सोने में अंतर है और वह अन्तर व्यवहार की ृष्टि से है उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा में जो भेद है वह व्यवहारनय से है। शुद्ध ंग्रहनय की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है। जैसे मिट्टी में मिला हुआ सोना भी सोना ही ै वैसे ही कर्ममल से आवृत आत्मा भी ईश्वर ही है। जिस प्रकार सुवर्ण निकाले जानेवाले मिट्टी के डले को देखकर स्थुल समझवाला व्यक्ति उसमें सोना नहीं देख सकता है किन्तु इस विषय का विशेषज्ञ व्यक्ति उस डले में स्पष्ट रूप से सोना देखता है। उसी प्रकार माया के पर्दे में फँसे हुए और संसार के व्यवहारों में मशगूल व्यक्ति के आत्मा में भी ज्ञानी-जन परमात्मपन देख रहे हैं। मतलब यह कि आत्मा और परमात्मा की एक ही जाति है। भेद तो औपाधिक है। वास्तविक भेद कुछ नहीं है अतः विद्वानों ने अनुभव करके 'अनल हक' या 'एगे आया' कहा है।

आज के जमाने में 'हमारा आत्मा ईश्वर है' यह मानकर चलने में बड़ी कठिनाई होरही है। यह कठिनाई मान्यता की ही कठिनाई है। वास्तव में आत्मा से परमात्मा बनना बड़ा सरल काम है। यदि महात्मा लोगों की सत्संगति रूप सहायता प्राप्त होजाय तो अपने को ईश्वर मानकर आगे बढ़ने में कोई कठिनाई नहीं है। दीपक से दीपक जलता है। यह बात एक उदाहरण कहकर समझाना चाहता हूं।

एक साहूकार का लड़का बुरी संगत में फंस गया। उसके मुनीम गुमाश्ता आदि उसे बहुत समझाते मगर वह किसी की न मानता था। उसने उन समझाने वाले मुनीम गुमाश्तों आदि को भी नोकरी से पृथक् कर दिया। बुरी सोवत में पड़कर उसने अपनी सारी सम्पत्ति भी खो दी। हितकारी लोग उसे बुरे लगते थे और दुर्जन लोग उसे भले मालूम पड़ते थे। दुर्जनों की सलाह मानकर वह दरिद्र बन गया। स्वार्थी लोग तबतक फिरा करते हैं। जबतक उनका मतलब सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्ध होजाने पर अथवा भविष्य में स्वार्थसिद्धि की आशा न रहने पर वे निकट नहीं आते। जैसे पक्षी वृक्षपर तबतक रहतेहैं जबतक कि उसपर फल होते हैं। फलोंके नष्ट होजाने पर पक्षी अन्यत्र चले जाते हैं। स्वार्थी लोगों का भी यही हाल है। उस साहूकारके लड़केको उसकेस्वार्थी मित्रोंने छोड दिया। अब उसके पास खाने तक के लिए पैसे न रहे। लड़का सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। अन्य काम तो रोके भी जा सकते हैं मगर इस पेट पापी को तो कुछ न कुछ दिए बिना काम न चलेगा। लड़का सदा मौज मजे मे ही रहा था अतः कोई हुन्नर उद्योग भी न जानता था। वह भूखों मरने लगा। अन्त में भीख मांगना प्रारंभ कर दिया।

भिखारी की स्थिति कितनी दयनीय होती है यह बात किसी से छिपी नहीं है। कभी भिखारी को अच्छा टुकड़ा भी मिल जाता है मगर उसकी आत्मा कितनी पतित हो जाती है। लड़के की स्थिति खराब हो गई। वह दर दर का भिखारी हो अपना आपा भूल कर हायरे हायरे करने लगा उसके पास कोई दुसरा बर्तन न था अतः ठीकरे में ही मांगने लगा।

दैवयोग से भीख मांगते मांगते एक दिन वह अपने पिता के जमाने के हितैषी मुनीम के घर जा निकला। और खाने के लिये रोटी मांगने लगा। लड़का मुनीम को न पहिचानता था मगर मुनीम ने लड़के को पहिचान लिया। मुनीम ने मन में विचार किया कि यह मेरे महान् उपकारी सेठ का लड़का है मगर आज इस की क्या दशा है। सेठ का मुझ पर मेरे पिता के समान उपकार है। मुनीम यह सोच रहा था और यह लड़का 'भूख लगी है, कुछ भोजन हो तो देओ' कि रट लगा रहा था। मुनीम यदि चाहता तो दो रोटी देकर उसे रवाना कर देता मगर उसके मन में कुछ दूसरी बात थी। किसी भिखारी को दो पैसे देकर उससे पिण्ड छुड़ाना दूसरी बात है और उसका सुधार करना या हमेशा के लिए उसका भिखारीपन मिटा देना अन्य बात है। हमारे समाज में उदारता तो बहुत है मगर सामने वाले को गुलाम बने रहने देकर देने की उदारता है। गुलामी से छुड़ाकर देने की उदारता बहुत कम है।

मुनीम ने लड़के से कहा कि यहां मेरे पास आओ। लड़का सोचने लगा कि मैं इस लिवास में ऐसे भव्य भवन में कैसे जाऊँ। वहीं खड़ा खड़ा कहने लगा कि जो कुछ देना हो वह यहीं पर दे दो। मुनीम के बहुत आग्रह से वह उसके पास चला गया। मुनीम ने पूछा कि क्या तुम मुझे पहिचानते हो? लड़के ने कहा, आप जैसे उदार और बड़े आदमी को कौन नहीं जानता। मुनीम ने कहा, इन बढ़ावा देने वाली बातों को जाने दो। मैं तेरा नोकर हूँ। तेरी स्थिति बिगड़ जाने से तू मुझे भूल गया है। मैं तुझे नहीं भूला हूँ। लड़के ने कहा माफ करिये सेठ साहिब, मेरी क्या बिसात जो आपको नौकर रख सकू। मैं तो दर-दर का भिखारी हूँ। मुनीम ने याद दिलाया कि मैं तुम्हारे यहां नौकर था। जब तुम छोटे थे तब बुरी संगति में फँस गये थे। मैं तुम्हें खूब समझाता था कि इन धूर्तों की संगति में मत जाया करो। मेरी बात न मानने से आज तुम्हारी यह दशा है। तुमने मेरी बात न मानी थी अतः अब मैं तुम्हारी अवहेलना नहीं कर सकता।

ज्ञानी लोग अभिमान नहीं करते। वे कभी यों नहीं कहते कि 'देखो मेरी बात न मानी थी अतः अब उसका भोग रहे हो! अब मैं कुछ मदद न करूँगा'। ज्यादातर लोग किसीको उपालम्भ देने में ही अपना पाण्डित्य मानतेहैं। उपालम्भो हि पाण्डित्यम्। मैंने ऐसा कहा था, वैसा कहा था, मेरा कहना न माननेसे ऐसा हुआ आदि बातें समझदार लोग नहीं कहते। आज कल के बहुतसे सुधारक कहे जाने वाले लोग भी ऐसे ऐसे बुरे लफ्जों का प्रयोग करते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता।

लड़के ने मुनीम को पहचान लिया। झट पैरों में पड़ गया और अपने किये का पछतावा करने लगा यदि आपको नौकरी से अलग न करता तो मेरी यह दुर्दशा न होती। मुनीम ने आश्वासन देते हुए कहा घबड़ाओ मत, मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूँ। यद्यपि तुम्हारे पिता के वक्त की सब दिखने वाली सम्पत्ति विनष्ट हो चुकी है तथापि मुझे कुछ गुप्त निधान का पता है। अब यदि मेरा कहना मानना मंजूर हो और बुरी सोबत में न फंसो तो मैं भेद बताने के लिए तय्यार हूं जिससे कि तुम पहिले के समान धनवान् बनजाओ। लड़के ने सब बात स्वीकार करली। उसको स्नानादि कराकर अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया। उस मुनीम ने यह सोचकर कि यह भिखमंगा रह चुका है अतः इस के साथ न बैठना चाहिए, घृणा नहीं की। उसने यह सोचा कि अज्ञान वश होकर इससे जो भूलें हुई हैं वे अब यह छोड़ रहा है। भविष्य में सुधार करने का नेम लेता है। अतः घृणा करना ठीक नहीं है किन्तु इसका सुधार करना चाहिये। घृणा करने की अपेक्षा यदि सुधार करने की बात अपना ली जाय तो मनुष्य जाति का उद्धार हो जाय।

एक साहूकार का लड़का बुरी संगत में फंस गया। उसके मुनीम गुमाश्ता उसे बहुत समझाते मगर वह किसी की न मानता था। उसने उन समझाने वाले मु गुमाश्तों आदि को भी नोकरी से पृथक् कर दिया। बुरी सोबत में पड़कर उसने अ सारी सम्पत्ति भी खो दी। हितकारी लोग उसे बुरे लगते थे और दुर्जन लोग उसे मालूम पड़ते थे। दुर्जनों की सलाह मानकर वह दरिद्र बन गया। स्वार्थी लोग तबतक फिरा करते हैं। जबतक उनका मतलब सिद्ध होता है। स्वार्थ सिद्ध होजाने पर अ भविष्य में स्वार्थसिद्धि की आशा न रहने पर वे निकट नहीं आते। जैसे पक्षी वृक्षपर त रहतेहैं जबतक कि उसपर फल होते है। फलोंके नष्ट होजाने पर पक्षी अन्यत्र चले जाते स्वार्थी लोगों का भी यही हाल है। उस साहूकारके लड़केको उसकेस्वार्थी मित्रोंने छोड़ दिय अब उसके पास खाने तक के लिए पैसे न रहे। लड़का सोचने लगा कि अब क्या चाहिए। अन्य काम तो रोके भी जा सकते हैं मगर इस पेट पापी को तो कुछ न दिए बिना काम न चलेगा। लड़का सदा मौज मजे में ही रहा था अतः कोई हुनर भी न जानता था। वह भूखों मरने लगा। अन्त में भीख मांगना प्रारंभ कर दिया।

भिखारी की स्थिति कितनी दयनीय होती है यह बात किसी से छिपी नहीं कभी भिखारी को अच्छा टुकड़ा भी मिल जाता है मगर उसकी आत्मा कितनी पतित जाती है। लड़के की स्थिति खराब हो गई। वह दर दर का भिखारी हो अपना आपा भूल कर हायरे हायरे करने लगा उसके पास कोई दुसरा बर्तन न अतः ठीकरे में ही मांगने लगा।

दैवयोग से भीख मांगते मांगते एक दिन वह अपने पिता के जमाने हितैषी मुनीम के घर जा निकला। और खाने के लिये रोटी मांगने लगा। मुनीम को न पहिचानता था मगर मुनीम ने लड़के को पहिचान लिया। मुनीम ने म विचार किया कि यह मेरे महान् उपकारी सेठ का लड़का है मगर आज इस की दशा है। सेठ का मुझ पर मेरे पिता के समान उपकार है। मुनीम यह सोच रहा था यह लड़का 'भूख लगी है, कुछ भोजन हो तो देओ' कि रट लगा रहा था। मु यदि चाहता तो दो रोटी देकर उसे रवाना कर देता मगर उसके मन में कुछ दूसरी थी। किसी भिखारी को दो पैसे देकर उससे पिण्ड छुड़ाना दूसरी बात है और सुधार करना या हमेशा के लिए उसका भिखारीपन मिटा देना अन्य बात है। हमारे में उदारता तो बहुत है मगर सामने वाले को गुलाम बने रहने देकर देने की उदारता गुलामी से छुडाकर देने की उदारता बहुत कम है।

मुनीम ने लड़के से कहा कि यहां मेरे पास आओ। लड़का सोचने लगा कि मैं इस लिबास में ऐसे भव्य भवन में कैसे जाऊँ। वहीं खड़ा खड़ा कहने लगा कि जो कुछ देना हो वह यहीं पर दे दो। मुनीम के बहुत आग्रह से वह उसके पास चला गया। मुनीम ने पूछा कि क्या तुम मुझे पहिचानते हो? लड़के ने कहा, आप जैसे उदार और बड़े आदमी को कौन नहीं जानता। मुनीम ने कहा, इन बढ़ावा देने वाली बातों को जाने दो। मैं तेरा नोकर हूँ। तेरी स्थिति बिगड़ जाने से तू मुझे भूल गया है। मैं तुझे नहीं भूला हूँ। लड़के ने कहा माफ करिये सेठ साहिब, मेरी क्या बिसात जो आपको नौकर रख सकूं। मैं तो दर-दर का भिखारी हूँ। मुनीम ने याद दिलाया कि मैं तुम्हारे यहां नौकर था। जब तुम छोटे थे तब बुरी संगति में फँस गये थे। मैं तुम्हें खूब समझाता था कि इन धूर्तों की संगति में मत जाया करो। मेरी बात न मानने से आज तुम्हारी यह दशा है। तुमने मेरी बात न मानी थी अत अब मैं तुम्हारी अवहेलना नहीं कर सकता।

ज्ञानी लोग अभिमान नहीं करते। वे कभी यों नहीं कहते कि 'देखो मेरी बात न मानी थी अतः अब उसका भोग रहे हो! अब मैं कुछ मदद न करूँगा'। ज्यादातर लोग किसीको उपालम्भ देने में ही अपना पाण्डित्य मानते हैं। उपालम्भो हि पाण्डित्यम्। मैंने ऐसा कहा था, वैसा कहा था, मेरा कहना न माननेसे ऐसा हुआ आदि बातें समझदार लोग नहीं कहते। आज कल के बहुतसे सुधारक कहे जाने वाले लोग भी ऐसे ऐसे बुरे लफ्जों का प्रयोग करते है कि कुछ कहा नहीं जाता।

लड़के ने मुनीम को पहचान लिया। झट पैरों में पड़ गया और अपने किये का पछतावा करने लगा यदि आपको नौकरी से अलग न करता तो मेरी यह दुर्दशा न होती। मुनीम ने आश्वासन देते हुए कहा घबड़ाओ मत, मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूं। यद्यपि तुम्हारे पिता के वक्त की सब दिखने वाली सम्पत्ति विनष्ट हो चुकी है तथापि मुझे कुछ गुप्त निधान का पता है। अब यदि मेरा कहना मानना मंजूर हो और बुरी सोबत में न फंसो तो मैं भेद बताने के लिए तय्यार हूं जिससे कि तुम पहिले के समान धनवान् बनजाओ। लड़के ने सब बात स्वीकार करली। उसको स्नानादि कराकर अपने साथ भोजन करने के लिए बिठा लिया। उस मुनीम ने यह सोचकर कि यह भिखमंगा रह चुका है अतः इस के साथ न बैठना चाहिए, घृणा नहीं की। उसने यह सोचा कि अज्ञान वश होकर इससे जो भूलें हुई हैं वे अब यह छोड़ रहा है। भविष्य में सुधार करने का नेम लेता है। अतः घृणा करना ठीक नहीं है किन्तु इसका सुधार करना चाहिये। घृणा करने की अपेक्षा यदि सुधार करने की बात अपना ली जाय तो मनुष्य जाति का उद्धार हो जाय।

लोग पुण्य और पाप का अर्थ करते हुए कहते हैं कि जो पुण्य लाया है वह पुण्य भोगता है और जो पाप लाया है वह पाप। लेकिन यदि सब लोग ऐसा कहने लगजायं तो क्या दशा हो? इसका ख्याल करिये। डाक्टर बीमार से कहदे कि तू अपने पापों का फल भोग रहा है मैं कुछ इलाज न करूँगा तो क्या आप यह बात पसन्द करेंगे? पापी को पाप का उदय हुआ है मगर आपको किसका उदय है?

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवान् पावे, ज्यारे दया की बात सुहावे जी।
भारी करमा अनन्त संसारी, जारे दया दाय नहीं आवे जी॥

लोग यह मानते हैं कि जिनके पास गाड़ी, घोड़ी, लाड़ी तथा बाड़ी आदि सब हों, जिसे अच्छा खान पान, कपड़ा, गहना, मिलता हो, तथा जिसके यहां नौकर चाकर हों वह पुण्यवान् है। इसके विपरीत जिसके पास खाना पीना और कपड़े आदि न हों वह पापी है। पापी और पुण्यवान् की ऐसी व्याख्या अज्ञानी लोग करते है। ज्ञानीजन ऐसी व्याख्या नहीं करते। वे किसीके पास कपड़े गहने आदि होने से उसे पुण्यवान् नहीं मानते और न इनका अभाव होने से किसी को पापी ही मानते है। ज्ञानी उसको पुण्यवान् मानते हैं जिसके हृदय में दया है। और जिसमें दया नहीं है वह पापी है। लोग कहेगे कि यह नई व्याख्या आपने कैसे निकाली है। मै कहता हूँ कि आप लोग भी पुण्यवान् और पापी की व्याख्या ऐसी ही मानते हैं जैसी अभी मैं कर रहा हूँ। बात ध्यान में आने की देरी है।

मान लो कि आपका एक लड़का है जो अकेला ही है। यानी आपका इकलौता पुत्र है। वह सड़क पर खेल रहा था। एक सेठ उधर से मोटर में सवार होकर निकला। धनवानों में अक्सर दुर्व्यसनों का भी प्रचार होता है। जो जैसा होता है उसके नौकर भी वैसे ही होते है। सेठ और ड्रायवर दोनों नशे में मस्त थे। ड्रायवर बेभान होकर मोटर चला रहा था। आपका लड़का मोटर की झपट में आगया। उसे सख्त चोट आई। हल्ला हुआ और वहुत से लोग इकट्ठे हो गये। तब ड्रायवर और सेठ की आंखें खुलीं। सेठ ने सोचा कि लड़का घायल हो चुका है अतः यदि मेरे सिर पर भार लूंगा तो सजा हुए बिना न रहेगी। सेठ कहने लगा कैसे कैसे नालायक लोग हैं जो अपने बच्चों को भी नहीं संभालते। सड़क पर आवारा छोड़ देते हैं। हमारे मोटर चलने के मार्ग में आड़े आजाते हैं यह भी मालूम कि यह रास्ता हम लोगों की मोटर निकलने का है। यह लड़का किसका है? हम उस पर

लायेगें। इस प्रकार वह चिल्लाया और जोर की आवाज से नौकर से कहा कि अमुक कील के पास चलकर कहो कि मुकद्दमा चलाना है अतः कानून देखकर दफा निकाल । सेठ मोटर में बैठा हुआ चला गया। लड़का वहीं बेहोश अवस्था में पडा रहा। इकट्ठी भीड़ में एक गरीब आदमी भी था। वह बहुत गरीब था। वह तुरन्त उस बच्चे को उठाकर अस्पताल में ले गया और डाक्टर से कहा कि न मालूम यह लड़का किसका है, इसे मोटर एक्सीडेन्ट से चोट आई है। यह बड़ा दुःखी है। आप इस केश को जल्दी ही निपटने की महरबानी करियेगा।

लडके के घायल हो जाने की बात आपने भी सुनी। साथ में यह भी सुन लिया कि मोटर मालिक श्रीमान् अनेक उपाधि-धारी मुकद्दमा चलाने की धमकी देकर भाग निकले और एक गरीब आदमी बच्चे को उठाकर हॉस्पिटल ले गया है। आप अस्पताल पहुंचे। बच्चे को यहां तक पहुंचाने वाले गरीब को भी देख लिया। आप जरा हृदय पर हाथ रख कर कहिये कि आप किसे पुण्यवान् और पापी समझते हैं। बेहोश नादान बच्चे को छोड कर चले जाने वाले को या उसकी दया करके अस्पताल पहुचाने वाले को पुण्यवान् कहेंगे। सेठ के बच्चे की दया करने वाले को पुण्यवान् कहेंगे और मोटर सेठ को पापी कहेंगे। यद्यपि चालू व्याख्या के अनुसार वह सेठ बड़ा धनवान् और साधन सम्पन्न था और वह गरीब जो कि बच्चे को अस्पताल ले गया कतई गरीब और साधन हीन। हमारा दिल यही कहता है कि वह धनवान् सेठ पापी था और वह गरीब आदमी पुण्यवान् था। आत्मा जिस बात की साक्षी दे वह बात ठीक होती है। सेठ और गरीब में क्या अन्तर है जिससे एक को पापी और दूसरे को पुण्यात्मा कहेंगे। अन्तर है हार्दिक दया भाव का। एक अपने धन के मद में तड़फते बच्चे को छोड़ कर चला गया और दूसरा "आत्मवत् सर्व भूतेषु" के अनुसार बच्चे की वेदना सहन न कर सका और सेवा करने लगा। एक में दया का अभाव था और दूसरे का हृदय दया लबलब भरा था।

यदि वह सेठ धनवान् होते हुए भी मोटर-अकस्मात् के बाद तुरत नीचे उतर कर बच्चे को संभालता और अस्पताल पहुंचाता तथा अपनी भूल की माफी मांग लेता तो वह भी पुण्यवान् कहलाता। पुण्य और पाप की व्याख्या केवल बाह्य ऋद्धि के होने न होने पर निर्भर नहीं है किन्तु इसके साथ साथ दया भाव भी अपेक्षित है।

सब कुछ कहने का मतलब यह है कि ऊपरी आडम्बर होने से ही किसी को

पुण्यवान् नहीं माना जा सकता । यदि हृदय में दया हो और ऊपरी आडम्बर न हो, भी वह पुण्यवान माना जायगा और महापुरुष उसकी सराहना करेंगे ।

वह मुनीम कह सकता था कि ऐ लड़के ! तू अपने किये का फल भोग। अपने पापों का फल भोग रहा है, इसमें मैं क्यों दखल दूं । किन्तु बुद्धिमान और लोग ऐसी निर्दयता की बात नही कहते । वे सोचते हैं कि यदि किसी ने एक वक्त न माना और कुमार्ग में लग गया तो भी भविष्य में उसका सुधार हो सकता है कौन कह सकता है कि कब किसकी दशा सुधर सकती है । और कब नहीं । हमारा तो सदा आशावाद पूर्ण प्रयत्न करने का है । किसी के पूर्व के पाप या अवगुणों ध्यान न देकर वर्तमान में यदि वह सुधरना चाहता है तो सुधारने का प्रयत्न अवश्य चाहिए ।

कोटि महा अघ पातक लागा, शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा ।

ज्ञानीजन शरण में आये हुए के पापों पर ख्याल नहीं करते क्यों कि वे जान कि जब वह शरण में आगया है तो पाप भावना को भी छोड़ चुका होगा । वे तो स्थिति सुधारने का प्रयत्न करते है, ज्ञानीजन कीड़े मकोड़े आदि पर भी दया करते मनुष्य पर क्यों न करेंगे ।

चातुर्मास की चौदस को दया के सम्बन्ध में मुझे व्याख्यान में कुछ कह किन्तु अन्य अन्य बातों में यह बात कहना रह गई थी । संक्षेप में आज कहता हूँ । लोग विचार करते होंगे कि हमने चौमासे की विनती की है इस लिए महाराज ने च किया है । किन्तु यदि चातुर्मास में एक स्थान पर ठहरने का हमारा नियम न होता आपकी विनती होने पर भी हम यहां ठहर सकते थे ? हमारा नियम है अतः नहीं तो लाख विनती होने पर भी नही रह सकते । चौमासे में वर्षा के कारण बहु उत्पन्न हो जाते है । उनकी रक्षा करने के लिए चार मास हम लोग एक स्थान पर रहते है । अब हमारा आपसे यह कहना है कि जिन जीवों की रक्षा करने के हम यहां ठहरे है, उनकी आप भी दया करो । चौमासे में जीवोत्पत्ति बहुत हो अतः उनकी रक्षा सावधानी-पूर्वक करिये जिससे आपके स्वास्थ्य और धर्म की रक्षा हो सके ।

एक आदमी सड़ा आटा, सड़ी दाल आदि चीजें खाता है जिनमें कीड़े पड़ चुके दूसरा आदमी ऐसी चीजें नहीं खाता किन्तु साफ स्वच्छ जीव रहित वस्तुए उपयोग में है। इन दोनों में से आप किसको दयावान् कहोगे ? एक आदमी घर की चक्की से हुआ आटा खाता है और दूसरा आदमी कल की चक्की से पिसा हुआ आटा खाता दोनों में से किसको आप दयावान् कहोगे। इन दोनों तरह के आटों में किसी प्रकार अन्तर है या नहीं ? थोड़ी देर के लिये यह मान लिया जाय कि आप अनाज देखकर करके लेगये किन्तु आपका नाज डालने से पूर्व जो नाज पिसा जा रहा था उसमें थे तब आप कैसे बच सकते हैं। उस कीड़े वाले आटे का अश आपके आटे में भी गा या नहीं ? अवश्य आयेगा। कीड़ों के कलेवर से मिले हुए आटे का किञ्चित् भाग के पेट में जरूर पहुँचेगा। मैंने उरण में सुना कि जिन टोकरों में मच्छी बेंची गई थी टोकरों में गेहूँ भरकर चक्की पर पिसवाये गये। ऐसे आटे का अंश आपके पेट में गा ही। दुःख इस बात का है कि आजकल घर पर पीसना कठिन हो रहा है। यह ऊ किया जाता है कि हम तो बम्बई की सेठानियां हैं हम चक्कीसे आटा कैसे पीसे। कल चक्की में सीधा पीसा मगवायें।

आटा दाल आदि प्रत्येक वस्तु के विषय में विवेक रखिये। यह मै जरूर कहूंगा मेवाड मालवा और मारवाड की अपेक्षा यहां ज्यादा विवेक है। फिर भी विशेष सावधानी की जरूरत है।

जो दया पात्र है उसकी स्थिति सुधारने वाला पुण्यवान् है। दयापात्र को पापी कर दुत्कारने वाला स्वय पापी है। वह पुण्यवान् नहीं हो सकता चाहे उसके पास नी ही ऋद्धि क्यों न हो।

मुनीमने उस लडको आश्वासन देकर अपनेयहां रखा और धीरे धीरे उसकी आदतें री। बिका हुआ मकान वापस खरीद लिया गया। उस घर में गुप्त रूप से रखे हुए निकाल कर उसे दे दिए गये। लड़के ने मुनीम से कहा कि ये रत्न आपही के हैं ण मैं तो मकान बेच ही चुका था। मुनीम ने कहा ऐसा नहीं हो सकता। जो वस्तु की हो वह उसी की रहेगी। लड़के ने मुनीम के रत्न हैं, कह कर कितना विवेक या। और अपनी कृतज्ञता प्रकट की। मुनीम ने अपने सेठ के पुत्र की स्थिति सुधार वह पुण्यवान् था। अब यदि सेठ के लड़के से भीख मांगने के लिए कहा जाय तो वह मांगेगा ? कदापि नहीं।

यह दृष्टान्त है। सेठ मुनीम और लड़केके समान ईश्वर महात्मा और संसारीजीव
बहुतसे साधारणलोग कहते है कि हम साधुओंके यहां क्यों जांय और क्यों वहां मुख बांध
बैठें। मै पूछता हूँ मुख बांधनेमें उनको शरम क्यों लगती है। वेश्या के यहां जाने में त
अन्य बुरे काम करने में तो शरम नहीं लगती। केवल मुह बांधने में ही शरम क्यो लगती है
कहतेहै यह तो बूढ़ोंका काम है। इसप्रकार इस आत्मा रूप सेठके लड़केने विषय वासना
संसार के संग से काम,क्रोध,लोभ,मोह,मद, मत्सरादि दुर्गुणों से प्रेमकर रखा है। ऐसे समय
अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा का क्या कर्त्तव्य है? उनका कर्त्तव्य समझाने का है
वे बार बार समझाते हैं लेकिन वह नहीं मानता। अंत में आत्मा की स्थिति उस लड़
के समान हो जाती है, जो भीखारी की तरह भीख मांगता है। फिर भी महात्मा लोग उ
द्वेष नहीं करते। वे यह नही सोचते कि इस ने हमारी सिखामन का अथवा उपदेश
पालन नहीं किया है अतः फल भोग रहा है। महात्मा उसे अपने पास बुलाते है कि
जैसे उस भिखारी को मुनीम के पास जाने में संकोच हुआ था उसी प्रकार दुर्व्यसनों
फंसे हुए लोगों को साधु–संतों के समीप जाने में सकोच होता है। लज्जा आती है। अ
व्यसनों के कारण लज्जित होकर वे दूर भागते हैं। किन्तु महात्मा लोग यह सोचकर
यद्यपि इसकी आदतें खराब हो गई है फिर भी इसका आत्मा हमारे समान ही है। सु
की गुंइजाश मानकर पास बुलाते है।

जो लोग यह कहते हैं कि हम साधुओं के पास क्यों जायं और क्यों मुख बांध
उनके पास बैठें, उनको भी साधु लोग यही उपदेश देते है कि भाई सत्संग करो। महा
लोग उनके कथन से घबड़ाते नही है। वे यह सोचकर उन्हें माफ कर देते है कि अज्ञान
कारण ये लोग भूले हुए है। इनकी आत्मा हमारी आत्मा के समान है। अतः
जीवात्मा की बातों पर ध्यान न देकर बार २ सत्संग का उपदेश देते हैं।

स्त्रियाँ भी कहती है, जो बूढ़ी हैं वे जाकर साधुओं के पास बैठें। हम से ऐ
न होगा, हम नौजवान है। उनको खाना पीना मौजमजा करना अच्छा लगता है
साधुओं के पास ऐश आराम का सामान नहीं है अतः उनके पास जाना अच्छा न
लगता। ज्ञानी कहते है, यह इनका दोष नहीं है। ये आत्मा की शक्ति को नही जान
अतः पुद्गलानदी बनी हुई हैं।

कई लोग आत्मा के अस्तित्व के विषय में भी संदेह करते हैं। आत्मा नहीं
ऐसी दलीलें देते हैं। इसका कारण यही है कि वे महात्माओं के पास नही जाते हैं। य

सत्पुरुषों के समागम में आने लगें तो उनका यह संदेह मिट जाय।

मदिरा न पीना और मांस न खाना यह जैनों का कुल रिवाज है। इस वंश परम्पर-ा रिवाज का पालन तभी तक हो सकता है जब तक लोग हमारे पास आते रहें। हमारे त न आयें किन्तु आजकल के सुधरे हुए कहे जाने वाले लोगों की सोबत में रहें तो इस ाज का पालन नहीं हो सकता। आधुनिक सुधरे कहे जाने वाले लोग तो कहते हैं कि न धर्म में मांस मदिरा निषेध निष्कारण ही है। यदि भोजन हज़म न होता हो तो थोड़ी ाब पीली जाय तथा शक्ति वृद्धि के लिए मांस भक्षण किया जाय तो क्या हर्ज है। ऐसी ाक्षा पाने वाले लोग कब तक बचे रह सकते हैं। माता पिता का कर्त्तव्य है कि वे इस त का ध्यान रखें कि हमारा लड़का बुरी सोबत में न पड़ जाय। अपने लड़कों को धार्मिक ाक्षा दिलाने का प्रयत्न किया जाय और सदा इस बात का खयाल रखें कि जैन कुल में न्म लेकर कहीं बुरी स्थिति में न पड़ जाय। प्रयत्न करने और सावधानी रखने पर भी दि कोई लड़का न सुधरे तो लाचारी होगी। प्रयत्न करने के पश्चात् भी न सुधरने वाले ो तो श्रीकृष्ण भी न सुधार सके थे।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से कह दिया था कि तुम लोग यह मत ख़याल करना कि हम कृष्ण के कुल में जन्मे हैं अतः बुरे काम करें तो कोई हर्ज नहीं है। ादि तुम बुरे काम करोगे तो उस के परिणाम से मैं तुम्हारा बचाव नहीं कर सकूंगा। तुम्हारी क्षा और तुम्हारा उद्धार तुम्ही स्वयं कर सकते हो। दूसरा कोई नहीं कर सकता।

उद्धरेदात्मनात्मानं, नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थः—आत्मा से आत्मा का उद्धार स्वयं करो। आत्मा को अवसादित मत करो। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है।

अतः अपना उद्धार स्वयं करो। दूसरों के भरोसे मत रहो। यदि अधिक न कर सको तो कम से कम तीन काम मत करो जिससे तुम्हारी रक्षा हो सकेगी। जुआ, मदिरा और परस्त्री का त्याग करलो।

लोग जुआ, खेल कर सीधा धन लेने जाते हैं। किन्तु पास वाला धन खो बैठते हैं और जुआ खेलने की आदत सिवाय सीख लेते हैं। जिससे भविष्य भी बिगड़ जाता है।

एक बार यह लत लग जाने पर इससे पिण्ड छुड़ाना साधारण आदमी का काम नहीं है। ताश के पत्तों पर रुपये पैसे की शर्त लगाकर खेलना, लाटरी भरना, सट्टा करना, आदि जुआ ही हैं। जिसमें हार जीत की बाजी है वह सब जुआ है। दुःख इस बात का है कि तो सरकार स्वयं लाटरी खोलती है और लोग धन प्राप्त करने के लिए रुपये लगाते हैं। लाटरी भरने वाले भाई यह नहीं सोचते कि लाटरी खोलने वाले पहले ही कह देते हैं। जितने रुपये टिकिटों के प्राप्त होंगे उन में से एक दो या अधिक लाख रुपये रख लिए जावेंगे, शेष रुपये इनाम दिए जायंगे। यह स्पष्ट मालूम होता है कि लाटरी खोलने वाले बचत करने के लिए ही लाटरी खोलते हैं। अधिक रुपये इकट्ठा करके थोड़े रुपये देदेते हैं। बहुतों से लेकर थोड़ों को कुछ रुपये इनाम रुप से बांट दिए जाते हैं। किन्तु लाटरी वाले की मंशा यह रहती है कि अन्य लोग मरे तो मरे हमारा नम्बर पहला निकलना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने अपने परिवार के लोगों से जुआ, शराब और व्यभिचार छोड़ने के कहा था, किन्तु उनके उपदेश की बातों को पैरों तले कुचल कर मनचाहा बरताव करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि एक दिन की घटना से सारा मूसल पर्व बन गया।

लोग कहते हैं कि जैनियों में फूट है। फूट क्यों न हो जब एक आदमी पीता हो और दूसरा न पीता हो। क्या दोनों में मेल रह सकता है। संप तभी तक रह सकता है जब सब का समान आचार व्यवहार हो।

अन्त में यादवकुल के लड़कों में फूट पड़ी और वे मूसल लेकर आपस में लड़ मरने लगे। यह देखकर श्रीकृष्ण हँसने लगे। किसी ने श्रीकृष्ण से कहा कि आपका परिवार विनाश की ओर जा रहा है और आप हँस रहे हैं। कृष्ण ने उत्तर दिया कि इनके सिर फूटने ही चाहिए। इनके सिर दारु, जुआ और व्यभिचार सेवन करने से पहिले ही फूट रहे हैं। फूटे का क्या फूटना। मैंने पहले ही जान लिया है कि इनका सर्वनाश निकट है।

यादव लोग नष्ट होगये यह सर्व विदित है। दुर्व्यसन सेवन करने से कोई सुखी नहीं हुआ है। वड़े वड़े बिगड़ चुके हैं। किसी को दो दिन चाहे सुखी समझ लो किन्तु वह सुख नहीं है। कहा है—

> चढ़ ऊपर वांसे गिरे शिखर नहीं वह कूप।
> जिस सुख अन्दर दुःख बसे वह सुख है दुःखरूप ॥

जो ऊपर चढ़कर वापस गिर जाता है वह चढ़ा हुआ नहीं गिना जायगा किन्तु गिरा हुआ ही गिना जायगा । इसी प्रकार जिस सुख के पीछे दुःख लगा हुआ है वह सुख नहीं है किन्तु दुःख ही है ।

चाहे कोई कैसे ही दुर्व्यसनों में फँसा हो किन्तु अन्तरात्मा को जानने वाले महात्मा लोग किसी से द्वेष नहीं करते । श्री कृष्ण के समान उससे यही कहते हैं कि दुर्व्यसन त्यागोगे तो दुःख कभी न होगा । ज्ञानी लोग किसी से घृणा नहीं करते । घोर से घोर पापी को भी अपना लेते हैं । वे उसके आत्मा की शक्ति को जानते हैं और समझाते हैं कि—

अपिचेत्सुदुराचारो यो भजते मां अनन्यभाक् ।

कैसा भी दुराचारी व्यक्ति हो वह अनन्य भाव से परमात्मा की सेवा करे तो उसका कल्याण निश्चित है । अन्तरात्मा की शक्ति को जानने वाले बहिरात्मा पर क्रोध या द्वेष नहीं करते । वे तो सदा यही कहेंगे कि आत्मस्वरूप को जानकर परमात्मा का भजन करो तो भलाई है ।

सारांश यह है कि '**देवो भूत्वा देवं यजेत्**' परमात्मा बनकर परमात्मा का भजन करो । यह समझो कि मेरा और परमात्मा का आत्मा समान है । परमात्मा निर्मल है, मैं अभी मलीन हूं । इस मलिनता को मिटाने के लिए ही परमात्मा का भजन करता हूं । महात्माओं की शरण पकड़ कर भजन करने से किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी ।

चरित्र चित्रण—

अब मैं इस प्रकार भजन करने वाले की बात कहता हूं ।

तिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास ।
अर्हद्दासी नारी खासी, रूप शील गुणवान रे ॥ धन० ॥ ५ ॥

चम्पानगरी का वर्णन किया गया है । नगर की रमणीयता उसकी आवश्यकताएं, राजा रानी और प्रजा आदि के कर्त्तव्य की चर्चा बहुत की जा सकती है किन्तु अभी इतना ही कहता हूं कि चम्पा में बाह्य सुधार ही न थे किन्तु अन्तरंग सुधार भी थे ।

आज बाह्य सुधार तो है लेकिन भीतर बहुत बिगाड़ है । उस जमाने में मोटर,

बिजली, ट्राम आदि न थे फिर भी उस समय की स्थिति बहुत सुधरी हुई थी। आप क रेलतार बिजली आदि के बिना कैसे सुधार और कैसा सुख। परन्तु इन के कारण आज स्थिति हो रही है उस पर दृष्टिपात किया जाय तो मालूम होगा कि पहिले की अपेक्षा अ भयंकर दुःख है। ये बाहर के भपके मूल को खराब कर रहे हैं। एक जहाज में बाग आ नाचरंग, खेल कूद, आदि के सब साधन हैं किन्तु समुद्र के ऐन बीच में उसके छेद होगया अ एंजिन खराब होगया, उस समय उस जहाज में बैठने वालों की क्या हालत होगी। नाच आदि उन्हे कैसे लगेंगे। मौज मजा भूलकर वे लोग हाय तोबा करने लगेंगे। दूसरा ज ऐसा है जिसमें ऐश अशरत का साजो सामान तो नहीं है मगर न उसमें छेद ही हुआ और न उसका एंजिन ही बिगड़ा है। दोनों जहाजों में से आप किसे पसन्द करें दूसरे को पसंद करेंगे।

आज के सुधारों के विषय में भी यही बात है। आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता लोग आनन्द का कारण मानते हैं। किन्तु इसका एंजिन कितना बिगड़ा हुआ है यह देखते। हमारे देश के लोगों का दिमाग वहां की सभ्यता के कारण बिगड़ रहा है। वे सभ्यता को आनन्ददायिनी मानते हैं। किन्तु मानव जीवन को इस सभ्यता ने कि खोखला कर दिया है इस बात को नहीं देखते। जिस देश की सभ्यता को आदर्शमान पसन्द किया जाता है वहां व्यभिचार को पाप नहीं माना जाता। पेरिस बड़ा सुन्दर शहर सुना है. वहां किसी स्त्री के पास कोई परपुरुष आ जाय तो उसके पति को बाहर चला पड़ता है। यह वहां का रिवाज है, सभ्यता है। अमरिका देश जो सब से समृद्ध और हुआ गिना जाता है वहां के लिए भी सुनने में आया है कि सौ में से दिच्चानवे लग्न वापस टूट जाते हैं। यह है वहां की सभ्यता मैं यह नहीं कहता कि बाह्य ठाट बाट न किन्तु आन्तरिक सुधार होना आवश्यक है।

चम्पा जैसी बाहर से सुन्दर थी वैसी भीतर से भी सुसंस्कृत थी। जिस प्र खान में से एक हीरा निकलने पर भी वह हीरे की खान कही जाती है जब कि मिट्टी उसमें बहुत होते हैं। इसी प्रकार किसी नगर में एक भी महापुरुष होतो वह उस नगर को प्रसिद्ध कर देता है। अवतार ज्यादा नहीं होते। मगर एक अवतार ही संसार को प्रकाशित कर देता है।

चम्पा आर्य क्षेत्र में गिनी गई है। वहां जिनदास नामक सेठ रहता था। च में भगवान् महावीर कई बार पधारे थे। कोणिक भी चम्पा में ही हुआ है। यह नहीं

सकता कि चम्पा एक थी या दो। हम इतिहास नहीं सुना रहे हैं किन्तु धर्म कथा ा रहे हैं। धर्म से अनेक इतिहास निकलते हैं। अतः धर्म कथा से इतिहास को तौलो। यह धर्म कथा है। इस में बताये हुए तत्त्व की तरफ ख्याल करो। भगवान् ावीर के समय में ही चम्पा के कोणिक और दधिवाहन दो राजा शास्त्रों में वर्णित हैं अतः णिक और दधिवाहन दोनों की चंपा एक ही थी अथवा अलग अलग कहा नहीं जा कता।

जिनदास चम्पा नगरी में रहता था। वह आनन्द श्रावक के समान श्रावक था। की स्त्री का नाम अर्हद्दासी था जो श्राविका थी। ये दोनों नाम वास्तविक हैं या काल्प- क सो नहीं कहा जा सकता। लेकिन दोनों ही नाम सार्थक और आनन्द दायक हैं। ले के लोग '**यथा नाम तथा गुण**' होते थे। यही कारण है कि उन के यहां र्शन जैसा लड़का उत्पन्न हुआ था। जैसों का फल तैसा होता है यह प्रसिद्ध त है। आप भी यदि सुदर्शन जैसा पुत्र चाहते हो तो जिनदास और अर्हद्दासी जैसे ो। ऐसा करोगे तो कल्याण है।

राजकोट
८—७—३६ का
व्याख्यान
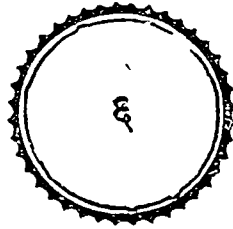
अरिष्टनेमि की दया

"श्री जिन मोहन गारो छे जीवन प्राण हमारो छे।"

यह भगवान् बाईसवें तीर्थङ्कर अरिष्टनेमी की प्रार्थना है। परमात्मा की प्रार्थना एक प्रकार से परमात्मा की भक्ति है। ज्ञानियों ने अनेक अंग बताये हैं। उन में प्रार्थना भी भक्ति का एक मुख्य अंग है। दार्शनिकों ने अपने तत्त्व का पोषण करने के लिए अनेक रीति से प्रार्थना की है। जैन एकान्तवादी नहीं हैं। जैन दर्शन प्रत्येक वस्तु का अनेक दृष्टि से विचार करता है। वह वस्तु को एक दृष्टि से देखता है और अनेक दृष्टि से भी। अतः जैन की प्रार्थना कुछ और ही है।

भक्ति के साकार और निराकार के भेद से दो भेद हैं । प्रार्थना को साकार से देखना या निराकार भेद से यह एक प्रश्न है । ज्ञानी कहते हैं दोनों का समन्वय ा जाय । दोनों भेदो को मिलाकर प्रार्थना की जाय । प्रार्थना पर अनेक बार बोल ा हूं आज भी कुछ कहूंगा ।

ज्ञानी जब कहते है कि साकार प्रार्थना के लिए तीर्थंकर और निराकार प्रार्थना लिए सिद्ध आदर्श रूप है । इन दोनों को मिलाकर प्रार्थना करना चाहिए । प्रार्थना ा समय यह भावना रखनी चाहिए कि मै सब प्रकार से परमात्मा की शरण जाता हूं । यह भावना न रखी गई, परमात्मा को सर्वस्व समर्पित न किया गया, अपने बल बुद्धि को अपने में ही रख कर प्रार्थना की गई, उसकी शरण में पूरी तौर से न , तो वह प्रार्थना न होगी प्रार्थना का ढोंग होगा । सच्ची प्रार्थना तब है जब ात्मा को सर्वस्व अर्पण कर दिया जावे । परमात्मा को अपना सर्वस्व कैसे समर्पित ना चाहिए तथा किस प्रकार सच्ची भक्ति करनी चाहिए यह समझने के लिए हमारे ने भगवान् नेमीनाथ और राजेमती का चरित्र मौजूद है । साकार निराकार प्रार्थना स्वरूप भी इस चरित्र से ध्यान में आ जायगा ।

राजेमती ने भगवान् नेमीनाथ को सिर्फ दृष्टि से देखा ही था और वह भी उनको रूप से स्वीकार करने के लिए । उस समय भगवान् दूल्हा बने हुए हाथी पर विराजमान । भगवान् राजकुमार थे । उनके साथ श्रीकृष्ण, दश दशार्ह और सारी बरात थी । उन चँवर छत्र हो रहे थे । राजेमती के समान अभिलाषा वाली स्त्री को अपने पति को ऐसे ास में देखकर कैसे २ विचार हो सकते है । वैसे ही विचार राजीमती के भी हुए थे । यह समझ रही थी कि भगवान् मेरे साथ शादी करने के लिए आ रहे है । लोग भी ी ही समझते थे कि भगवान् विवाह करने के लिए जा रहे हैं । व्यवहार में सब कोई यह ाल कर रहे थे किन्तु निश्चय में भगवान् कुछ अन्य ही विवाह करने जा रहे थे । उन्हें ों की रक्षा करने तथा यादवों में करुणा बुद्धि उत्पन्न करनी थी । वे केवल मुखसे कहने े ही न थे किन्तु करके दिखाने वाले थे । उनके सब काम किसी तत्त्वपूर्ण मुद्दे को लिए थे । जीवरक्षा के कार्य को सिद्ध करने के लिए ही वे बारात सजा कर विवाह करने के ने से आये थे ।

सुनि पुकार पशु की करुणा करि जानि जगत सुख फीको ।
नव भव नेह तज्यो जीवन में उग्र सेन नृप धी को ॥

जब भगवान् तोरणद्वार पर आ रहे थे तब उन्हें उस समय भारत वर्ष में फैली हुई महान् हिंसा के दर्शन हो रहे थे । उस समय यादवी हिंसा और यादवी अत्याचार बहुत बढ़ गये थे अपनी सीमा लांघ चुके थे । यादवों का अन्याय और अत्याचार सारे संसार में फैल रहा था । उनके द्वारा हिंसा के घोर काण्ड हुआ करते थे । न केवल विवाहादि प्रसंगों पर किन्तु हर प्रसंग पर पशुओं की घोर हिंसा की जाती थी । उस समय मांस मदिरा और विषय सेवन एक साधारण बात हो गये थे इस पाप के रोकने के लिए ही भगवान् नेमीनाथ ने विवाह का स्वांग रचा था और बारात सजाई थी ।

प्रत्येक बात पर एकान्त दृष्टि से विचार नहीं करना चाहिए किन्तु अनेकान्त दृष्टि से सोचना चाहिए । भगवान् तीन ज्ञान के धारी थे वे जानते थे कि मेरे पूर्वज इक्कीस तीर्थंकर यह फरमा गये है कि नेमजी ब्रह्मचारी रहेंगे । यह जानते हुए भी भगवान् नेमीनाथ विवाह करने के लिए क्यों चले थे । इस विषय पर यदि बारीकी से विचार करोगे तो मालूम होगा कि भगवान् ने साकार भगवान् का कैसा रूप रचा था । नेमीनाथ ने साकार भगवान् का जैसा चरित्र रचा था वैसा चरित्र मेरी समझ से दूसरे किसी ने नहीं रचा है । उनकी सानी का उदाहरण मुझे नहीं दिखाई देता है । यदि कोई ऐसा दूसरा उदाहरण बताये तो मै मानने के लिए तय्यार हूं किन्तु ऐसा उदाहरण मिलना बहुत ही कठिन है । जैसा रचनात्मक काम भगवान् अरिष्टनेमी ने करके दिखाया वैसा किसी ने नहीं किया ।

यादव कुल में जैसी हिंसा और पाप फैले हुए थे उनके विषय में भगवान् यह सोचा करते थे कि मैं जिस कुल में उत्पन्न हुआ हूं, उस कुल के युवक इस प्रकार के घोर कार्य करे, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूं । भगवान् चुपचाप सारी परिस्थिति देख रहे थे और किसी अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे । तीन सौ वर्ष तक वे अवसर की प्रतीक्षा करते रहे अन्त में यह निश्चय किया कि इस पाप के लिए दूसरों को दोषी बताने की अपेक्षा स्वयं मिटाने का स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए ।

आज कल के लोग दूसरों को दोष देना तो जानते है मगर खुद का कर्तव्य नहीं समझते । यदि लोग **अपना अपना कर्त्तव्य** देखने लगे और दूसरों पर दोषारोपण करना

ड़ दें तो संसार को सुधरने में क्या देर लगे। जब मैं जंगल गया था तब रास्ते में एक
वार पर यह लिखा हुआ देखा कि '**आलस्य, मनुष्य के लिए जीवित कबर है।**'
द विचार किया जाय तो यह वाक्य कितना अच्छा और ठीक है। आलस्य ही मनुष्य को
वित कबर में डालता है। आलस्य के कारण ही मनुष्य अपने कर्त्तव्य की ओर निगाह
हीं करता और दूसरों पर दोष थोपता है।

भगवान् अरिष्टनेमि अपना कर्त्तव्य देखते थे, अतः आलस्य त्यागकर रचनात्मक
म किया। यदि वे शक्ति से काम लेना चाहते तो भी ले सकते थे। क्यों कि उन में
कृष्ण को पराजित करने जितनी शक्ति थी। हाथ में चक्र लेकर उसका डर दिखा कर
लोगों से कह सकते थे कि हिंसा बंद करते हो या नहीं। और लोग भी उनके डर के
र हिंसा बद कर सकते थे। किन्तु भगवान् जोर जुल्म पूर्वक धर्म प्रचार करने के विरोधी
। वे जानते थे कि सख्ती के द्वारा यद्यपि लोग ऊपरी हिंसा करना छोड़ देंगे किन्तु उन
ी भावना में जो हिंसा होगी वह ज्यो की त्यों कायम रहेगी बल्कि जोर जुल्म का शिकारी
ना हुआ व्यक्ति भाव हिंसा अधिक ही करता है। भगवान् ने शक्ति प्रयोग नहीं किया।
सा बंद कराने का काम बड़ा गंभीर है। हिंसा को बंद कराने के लिए हिंसा की सहायता
ना ठीक नहीं है। इस प्रकार हिंसा बंद भी नहीं हो सकती। खून का भरा कपड़ा खून
धोने से कैसे साफ हो सकता है। अहिंसा के गंभीर तत्त्व की रक्षा करने के लिए भगवान्
वसर की प्रतिक्षा करते रहे। जब उन्होंने उपयुक्त अवसर जान लिया तब भी लोगों से
ह न कहा कि मैं अमुक प्रयोजन से बरात सजा रहा हूं। अतः लोगों को सच्ची हकीकत
लूम न थी। भगवान् नेमिनाथ को बरात सजाकर विवाह करने के लिए जाते देख कर
न्द्र भी आश्चर्य में पड़ गये और विचार करने लगे कि इक्कीस तीर्थंकरों से हमने ऐसा सुना
कि बाईसवें तीर्थंकर नेमीनाथ बाल ब्रह्मचारी रहेंगे। फिर भगवान् ऐसा क्यों कर रहे हैं
हापुरुषों के कामों में दखल करना ठीक नहीं है सोचकर इन्द्र ने यह नाटक देखने का
ी निश्चय किया।

फलानुमेया खलु प्रारंभाः।

महापुरुषों ने किस मतलब से कौनसा काम आरम्भ किया है यह साधारण व्यक्ति
नहीं समझ सकते। उस काम के परिणाम से ही जान सकते है कि फलां मतलब से वह
काम किया गया था।

ईशानेन्द्र और शक्रेन्द्र भी बारात में शामिल हो गये। श्री कृष्ण को मन में चिं हो गई कि कहीं ये इंद्र लोग विवाह में विघ्न न कर दें। बड़ी मुश्किल से बारात सजाई और नेमजी को तय्यार किया है। श्री कृष्ण ने शक्रेन्द्र से कहा कि आप बारात में पधारे सो तो अच्छी बात है मगर महापुरुषों का यह नेम होता है कि वे बिना आमंत्रण के कि जल्से में शरीक नहीं होते। आप बिना आमंत्रण के यहां कैसे पधारे हैं। कृष्ण के पू के उद्देश्य को इन्द्र समझ गये। इन्द्र ने कहा हम किसी विशेष प्रयोजन से नहीं आये हैं हमें यह विवाह कौतूक मालूम पड़ा है अतः देखने आये हैं। देखने के लिए आमन्त्रण जरूरत नहीं होती। देखने का सब किसी को अधिकार है।

हेमचन्द भाई और मनसुख भाई दोनों यहां बिना आमन्त्रण के आये हैं। ये आये हैं और किसके मेहमान हैं। ये किसी के मेहमान नहीं हैं ये हमारे मेहमान लेकिन हमारे पास खानपान और पान सुपारी नहीं है जिनसे इनकी मेहमानदारी करें। पान और पान सुपारी इनके पास बहुत है इसके लिए ये बिना आमन्त्रण नहीं आ सक ये जैसी मेहमानी लेने आये हैं मैं यथा शक्ति देने का प्रयत्न करूँगा। मेरे खया सदुपदेश सुनने आये हैं।

इन्द्र सोच रहे हैं कि इक्कीस तीर्थंकरों की कही हुई बात ये कैसे लोप रहे देखें क्या होता है। श्री कृष्ण से कह दिया आप चिन्ता न करें हम किसी प्रकार विघ्न न करेंगे। हम तो चुपचाप कौतुक मात्र देखेंगे। आपभी भगवान् के चरित्र को देखिये।

बारात के साथ भगवान् तोरण द्वार पर आ रहे हैं। तोरण द्वार के मार्ग में और पिंजरों में बन्द किये हुए अनेक पशु पक्षी रोके हुए थे कुछ पशु पक्षी मनुष्यों के स में रहने वाले थे और कुछ जंगल के निर्दोष प्राणी थे। उन पशुओं के मन में खलबली मची हुई थी।

लोग सोचते होंगे कि घबडाने न घबड़ाने में पशुपक्षी क्या समझते होंगे। मौत से सब जीव डरते हैं और उससे बचना चाहते हैं। कोठारी बलवंतसिंह जी ने उ की एक घटना मुझे सुनाई थी। उन्हों ने कहा- उदयपुर के कसाइयों के यहाँ से भेड़ भाग निकला कसाई लोग उसे कत्ल करने लेजा रहे थे। वह किसी तरह अपनी

बचाकर भाग गया और पिछोला नामक तालाब में कूद गया। तैरता तैरता उस पार पहुँच गया तथा पहाड़ोंमें भाग गया। वह तीन दिन तक पहाड़ोंमें रहा लेकिन किसीभी हिंसक पशु ने उसे हाथ न लगाया। तीन दिन बाद वह भेड दरबार को शिकार करते वक्त मिला। दरबार ने पकड़ कर उसे मेरे यहाँ पहुँचा दिया। प्रत्येक जीव अपनी रक्षा करने का प्रयत्न करता है। कत्लखाने जाने के वक्त का दृश्य सब जानते ही हैं।

भगवान् अवधिज्ञानी थे अतः यह जानते थे कि ये पशु पक्षी क्यों बांध कर रखे हुए हैं। फिर भी पशुओं की पुकार सुन कर सब लोग इस बात को सुन सकें इस आशय से सारथी से पूछते हैं—

कस्सट्ठाए इमे पाणा एए सव्व सुहेसिणो वाडेहिं पिंजरेहिं च सन्निरूद्धाए अत्थइ।

अर्थ—हे सारथी! ये सुख चाहने वाले प्राणी किसके लिए बाड़े और पिंजड़ों में बंद है।

भगवान् भी बालक या अनजान के समान चरित्र कह रहे हैं। एक साधारण आदमी भी इस बात का अंदाजा लगा सकता है कि ये प्राणी विवाह के समय बारातियों और महमानों के लिए मारे जाने के लिए ही बन्द किये हुए हैं। भगवान् ने साधारण व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले अनुमान से काम न लेकर सारथी से पूछा कि ये जीव क्यों बंद किये गये है। जैसे हम लोग सुखैषी हैं वैसे ही ये प्राणी भी सुखैषी हैं। इन बेचारों को इन की मरजी के खिलाफ बंद करके क्यों दुःखी बनाया जा रहा है।

भगवान् के इस कथन में बहुत रहस्य है। लोग समझते हैं कि हमारे सुख के लिये ये पशु पक्षी इकट्ठे किये गये हैं मगर भगवान् के कथन का रहस्य है कि तुम लोग सुखी नहीं हो। यदि तुम सुखी होते तो ये पशु-पक्षी दुःखी नहीं हो सकते। अमृत के वृक्ष में अमृतमय ही फल लगता है। वह ज़हरीला फल नहीं दे सकता। क्षीर सागर के पानी से किसी को विष नही चढ़ सकता। जो दवा लाभदायक है वह किसी को मार नहीं सकती। अर्थात् जो जैसा होता है उसका फल भी वैसा ही शुभ या अशुभ होता है। यदि तुम खुद दुःखी हो तो तुम से दूसरा कोई सुखी नहीं हो सकता। और यदि तुम सुखी हो तो दूसरा तुम से दुःखी नहीं हो सकता। जो सुखी है उसमें से सब के लिए सदा सुख ही निकलेगा। दुःख कदापि नहीं निकलता। जब तुम्हारे आश्रित प्राणी दुःखी हैं भगवान ने यह कहा था

कि ये जीव सुख के अभिलाषी हैं फिर इनको दुःखी का दुःख भी दूर हो जाता है आ
आप लोगों में दुःख है इसी कारण अन्य लोग भी दुःखी हैं। आप लोग अपने में के दुः
दूर करने के लिये भगवान से प्रार्थना करिये।

भगवान का प्रश्न सुन कर सारथी कहने लगा कि आप यह क्या पूंछ रहे हैं
क्या आपको यह मालुम नहीं है कि ये पशु यहां क्यों लाये गये हैं।

तुज्झं विवाह कज्जंमि भोयावेऊं बहुं जणं।
सोऊण तस्स वयणं बहुपाणि विणासणं॥

हे भगवान्! आपके विवाह में बहुत लोगों को खिलाने के लिए ये प्राणी
करके रखे गये हैं। इन प्राणियों को मारकर इन के मांस से बहुत लोगों को भे
दिया जायगा।

यह उत्तर सुन कर भगवान् विचार सागर में डूब गये कि अहो! मेरे विवा
निमित्त ये बेचारे मुक प्राणी इकट्ठे किए गये हैं। ये कुछ देर बाद मार डाले जायेंगे
इन्हें मारा जायगा तब इनका शब्द कैसा करुण होगा। ये कैसे दुःखी होंगे। भगव
बहुत प्राणियों का विनाश वाला उसका वचन सुनकर सारथी से कहा—

जइ मज्झ कारणं एए हम्मन्ति सुबहू जीवा।
न मे एयं तु निस्सेसं परलोए भविस्सइ॥

दूसरों को उपदेश देने की क्या पद्धति है यह भगवान् नेमीनाथ के चरित्र
समझिये। भगवान् तीन ज्ञान के स्वामी थे फिर भी संसार के लोगों को उपदेश देने
लिए उन जीवों की हिंसा का कारण अपने आपको माना है। भगवान् यह कह सकते
कि मैं मांस नहीं खाता हूं अतः इन जीवों की हिंसा का दोष मुझपर नहीं लग सकता
ऐसा न कहकर सरथी के कहने पर उन जीवों की हिंसा का कारण अपने आपको स्व
कर लिया। आज हर बात में बनियापन दिखाया जाता है। अपने आपको निर्दोष सावि
करने के लिए दूसरों पर दोपारोपण कर दिया जाता है। यह बड़ी भारी कमजोरी है।

क्या भगवान् अरिष्टनेमी के भक्तों का यह लक्षण हो सकता है कि वे अप
दोष दूसरों पर डाल दें। जिनकी हम मोहनगारों कह कर स्तुति कर रहे हैं वे पशु पक्षि

की हिंसा अपने सिर लेकर कह रहे हैं कि यह हिंसा परलोक में निश्रेयस् साधक नहीं हो सकती। अफसोस है कि आज के बहुत से लोगों को तो पाप क्या है इसका भी पता नहीं है। जो पाप ही को नही जानता उसे पाप का भय कब हो सकता है। लोक लाज के भय से पाप न करना और दया धर्म से प्रेरित होकर पाप न करने में बड़ा अन्तर है। यदि धर्म बुद्धि से अनुप्राणित होकर पाप न किया जाय तो संसार सुखी हो जाय।

पाप का स्वरूप समझने की आपकी उत्सुकता बढ़ रही होगी। मान लीजिये आप किसी बैल गाड़ी में बैठे है चलते चलते गाड़ी रुक जाय तो आप खयाल करेंगे कि गाड़ी में कुछ वस्तु अटक गई है जिससे गाड़ी रुकी है इसी प्रकार हमारी व दूसरे की जीवन नौका चलते चलते जहां रुक जाय वहां समझ लेना चाहिए कि पाप है। आत्मोन्नति की गाड़ी जब भी रुक जाय तब समझ जाना चाहिए कि यह पाप है।

क्या वे पशु-पक्षी भगवान् का विवाह रोक रहे थे जिससे कि भगवान् को इतना गहरा विचार करना पड़ा ? नहीं। वे जीव विवाह में बाधक न थे किन्तु भगवान् नेमिनाथ के हृदय में भगवती दया माता निवास कर रही थी, जो उनको मूक पशुओंकी करुण पुकार सुनने में असमर्थ बना रही थी। आप लोगों को अपनी गाड़ी की रुकावट तो समझ में आ सकती है मगर यह बात समझ में नहीं आती। भगवान् इन बातों को समझते थे। उन्होंने सोचा कि मेरा विवाह शान्तिकारी तथा सुखकारी नही है। यदि विवाह शान्तिकारी या सुखकारी होता तो ये मूक पशु पीड़ा न पाते। जिस काम में दीन हीन गरीब लोक या पशु पक्षी सताये जाय वह काम किसी के लिए भी अच्छा या शुभकारी नहीं हो सकता।

भगवान् कितने परदुःख भंजनहार थे। दूसरे प्राणियों की रक्षा के लिए भगवान् तो अपना विवाह तक रोकने के लिए तय्यार हो गये और आज कल के लोग दूसरे के दुःख की रत्तीभर भी परवाह नहीं करते। दूसरे के लिए अपनी जरासी मौजमजा छोडने को भी तय्यार नही होते। भगवान् कहते है कि विवाह सुखमूलक है या दुःखमूलक। यह बात बाड़ों और पिंजड़ों में बंद किए हुए उन मूक प्राणियों से पूछिये। यदि पशु-पक्षीयों के हमारे समान जबान होती और हमारी भाषा में बोल सकते होते तो वे क्या जबाव देते इस बात का खयाल करिये। हम हमारे ऊपर से विचार कर सकते है कि आप हम ऐसी स्थिति मे पहुँच जायं तो हम क्या करेंगे। कोई जीव दुःख नहीं पसन्द करता। सब सुख चाहते है। आप लोगों का रहन सहन पहले की अपेक्षा बदल कर हिंसा पूर्ण होता जा रहा

है। मैं नहीं कहता कि आप लोग सब कुछ छोड़ कर साधु बन जाय। और बन जाय मुझे खुशी ही होगी। मैं साधु बनने के लिए जोर नहीं दे रहा हूं। मेरा तो यह कहन कि आज आप जिस प्रकार का जीवन व्यतीत कर रहे हैं उससे बेहतर जीवन व्यतीत सकते हैं। आप इस प्रकार जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न कीजिये कि जिसमें दूसरों तकलीफ न पहुँचे या कम से कम पहुँचे।

आप लोग तपस्या करते है। खासकर स्त्रियां बहुत तपस्या करती हैं। मै पू चाहता हूँ आप पारणा किस दूध से करते है। मोल लिए हुए दूध से अथवा घ रखी गाय भैंस के दूध से। यदि भगवान् आकर आप से जवाब तलब करें तो आप उत्तर दे सकते है। आप कहेंगे कि यदि हम दूध का उपयोग करने में लम्बा विचार लगें तो जीवन निर्वाह कठिन हो जाता है। तो क्या आपके पूर्वज इस बात को नही स थे। पहले के लोग जिस का घी दूध खाते थे उसकी रक्षा करते थे। किन्तु आ लोग खाना तो जानते हैं मगर रक्षा करना नहीं जानते। जैसे आज यह कह दिया जा कि हम क्या करें हम तो पैसे देकर दूध मोल लाते हैं, गायें वाले गायों की क्या करते है इस से हमें क्या मतलब। उसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमी भी कह सकते थे बाड़े में बंधे हुए पशुओं से मुझे क्या मतलब। मैने कहा पशुओं को बँधवाया है। भावना भी बँधवाने की न थी। किन्तु भगवान् ने ऐसा नही कहा। उस विवाह यज्ञ के के बोझ को भगवान् ने अपने सिर पर स्वीकार किया। उनके निमित्त से होने वाली को उन्होंने अपना पाप माना और उसमें अपना श्रेय नहीं देखा। आप लोग जो मोल दूध पीते हो उसमें होने वाली हिंसा को आप अपनी हिंसा मानते हो या नहीं। यह किसके निमित्त से हुई है, जरा विचार कीजिये।

सुना है कि मेहसाणा और हरियाणा की बड़ी २ भैंसे बम्बई में दूध के लिए है। घोसी लोग एक भैंस दो दो सो तीन तीन सौ रुपये देकर खरीदते हैं। जब तक भैंस दुध देती है और दुध से खर्च आदि की पड़त ठीक बैठती है तबतक रखी जाती है, में कसाई के हाथ बेच दी जाती है। कसाई खानों में भैसे किस बुरी तरह कत्ल का जाती हैं इसका विचार करें तब पता लगे कि मोल का दूध खाना कितना हराम है। भैसे दूध देती है तब घोसी लोग उन्हें तबेले में बांध रखते हैं। बड़ी तंग जगह में हवा में बंधी रहती है। कसाई के यहां जाते वक्त खुली हवा का अनुभव करके भैंसे

सन्न होती है। उन्हें क्या पता कि उनकी यह प्रसन्नता कितनी देर तक टिकेगी। जब सें कसाई खाने में पहुँच जाती है तब उन्हें ज़मीन पर पटक कर यंत्र के द्वारा उनके स्तन रहा हुआ दूध बूंद २ करके खींच लिया जाताहै। दूध निकाल लेनेके बाद उन्हें इसप्रकार टा जाता है जिस प्रकार पापड़ का आटा पीटा जाता है। पीटते पीटते जब सारी चर्बी नके उपर आ जाती है तब उन्हें कत्ल कर दिया जाता है। उनके कत्ल होने का दृश्य दि आप लोग देख लें तो ज्ञात होगा कि आप के मोल के दूध के पीछे क्या क्या त्याचार होते है।

आप जरा विचार करिये कि वे भैसे बम्बई में क्यों लाई गई थी। क्या वे मोल ा दूध खाने वालों के लिए नहीं लाई गई थी? पैसा देकर दूध खरीद ने से इस पाप से चाव नही हो सकता। कोई जैन धर्म का अनुयायी पैसे का नाम लेकर अपना बचाव ही कर सकता। न जैनों के लिए यह उत्तर शोभनीय भी है।

मैने वांदरा (बम्बई) आदि स्थानों के कत्ल खानों की रोमांचकारी हकीकतें सुनी है। घाटकोपर (बम्बई) चातुर्मास में मैंने पशु रक्षा पर बहुत उपदेश दिया था जिस र वहां जीवदया संस्था भी खुली है। आपके यहां कैसे चलता है सो मुझे पता नही है। ोल के दूध में अनेक अनर्थ भरे है। बीकानेर के एक माहेश्वरी भाई ने मुझे कहा था कि मोल का दूध पीने वाले लोगो के लिए पाली हुई गायों को देखने से पता लगता है कि उनके नीचे बछड़े नही होते। वे बच्चे कहाँ चले जाते है। गायों के मालिक बछड़ों को जन्मते ही जंगल में छोड़ आते है। वे सोचते है यदि बछड़ा जिन्दा रहेगा तो दूध चूसेगा जिस दूध के लिए ऐसे अनर्थ और पाप होते हैं उसके पीने मे तो पाप नहीं और जिसमें गायों की रक्षा, पालना, पोषण, साल सम्भाल होती है उसके पीने में पाप होता है, ऐसी श्रद्धा कैसे बैठ गई, किसने ऐसा धर्म बताया, समझ में नहीं आता।

शास्त्र में श्रावकों के घर पशु होने का जिक्र है। पशुओं के साथ जैन श्रावक का कैसा वर्ताव होना चाहिए, इसके लिए शास्त्र में कहा है—**श्रावक वध, बंध, छविच्छेद अतिचार और भत्तपानी विच्छेद** इन पांच वातों से वचकर पशुओं का पालन पोषण करे। श्रावक किसी जानवर को खसी नही करता, न कराता है। किसी जानवर को गाढ़े बंधन से नहीं बांधता। किसी पर अधिक बोझा नहीं लादता। न किसी को मारता पीटता और न चारा पानी देने में भूल या देरी ही करता है। भक्त पानी का अन्तराय भी नहीं

करता। श्रावकों के लिए शास्त्र में यह विधान है। किन्तु आज के लोग पशु पालन त्याग कर के इस झंझट से बच रहे हैं और साथमें यह भी समझते है कि पाप से भी बच रहे है। वास्तव में इस पाप से नहीं बचा जा सकता। पाप से बचाव तब हो सकता जब मोल का दूध दही मावा आदि खाना छोड़ दिया जाय।

भगवान् नेमीनाथ जैसे समर्थ व्यक्ति धर्म के लिए पशु पक्षियों की हिंसा अ सिर लेकर विवाह करना तक छोड़ देते है तो क्या आप दूध दही के लिए मारे जाने पशुओं की रक्षा के लिए मोल का दूध दही खाना नहीं छोड़ सकते। घी दूध खाना है तो पशु रक्षा करनी ही चाहिए। आज तो घर में गाय रखने तक की जगह नहीं होती मोटर तांगे आदि रखने के लिए जगह हो सकती है मगर गाय के लिए नहीं हो सकती।

श्रावक निरारम्भी निष्परिग्रही नहीं हो सकता किन्तु महारम्भी महापरिग्रही नहीं हो सकता। वह अल्पारम्भी अल्प परिग्रही होता है। श्रावक अपना जीवन प्रकार की चीजों से चलाता है जिनके निर्माण में कम से कम पाप हो। जि चीजों में अधिक पाप होता है उनका उपयोग श्रावक नहीं करता। मोलके घी दूध में पाप है या रक्षा करके घर की पाली हुई गायों के घी दूध में। घरकी रखी हुई गायो के दुध में अल्प पाप है।

भगवान अरिष्टनेमी ने यह भी विचार किया कि जिस वंश में मै जन्मा हूं उ इस प्रकार के पाप हों यह कैसे सहा जाय। यदि पाप के भार को कम न किया जाय मेरा आलस्य गिना जायगा। मेरे विवाह के निमित्त इन दीन हीन प्राणियों के गले पर चलाई जायगी। अहो! विवाह कितना दुःखदायी है। सारथी से कहा—इन सब जीवों छोड़ दो। भगवान् की यह आज्ञा सुनकर सारथी कुछ सकुचाया। पुनः भगवान् ने क हे सारथी! डरते क्या हो। मैं आज्ञा देता हूं कि इन जीवों को छोड़ दो।

सारथी ने उन जीवों को छोड़ दिया। छुटकारा पाकर आसमान में उड़ते या जंगल की ओर भागते हुए उन जीवों को कितना आनंद आया होगा, इसका अनु आप भी लगा सकते हो। कोई आदमी जेलखाने में बंद हो। जेल से छूटने पर उसे कि आनन्द होता है। पिंजड़ों में बन्द किये हुए वे जीव तो मौत के मुख से बचे थे। उ आनन्द का क्या कहना। किसी मरते हुए व्यक्ति को एक पुरुष तो राज्यदान करे

और दूसरा जीवनदान । वह मरणासन्न व्यक्ति किस दान को पसन्द करेगा ? जीवनदान को ही वह चाहेगा। हमारे शास्त्रों में इसीलिए कहा है—

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

सब दानों में अभयदान सर्व श्रेष्ठ है। यह बात शास्त्र कुरान पुरान से ही सिद्ध ाँहै मगर स्वानुभव से भी सिद्ध है। आपसे भी यदि कोई राजा यह कहे कि मै धन देता हू ौर दूसरा कोई कहे कि मैं जीवनदान देता हूं तो आप जीवनदान ही पसन्द करोगे-। रण कि जीवन न रहा तो धन किस काम का। जीवन के पीछे धन है। यह बात एक ृांत से समझाता हू।

एक राजा के चार रानियां थी। अपने अपने पद के अनुसार चारों ही राजा को य थी। राजा ने सोचा कि इन चारों में कौन अधिक बुद्धि मती है इसका निर्णय करना ाहिए और उसी पर ज्यादा प्रेम भी रखना चाहिए। यद्यपि मुझे चारों रानियां प्रिय है ापि गुण की अवहेलना करना ठीक नहीं है। गुणानुसार कद्र होना ही चाहिए। गुणों ी तरह ज्ञानियों का खिंचाव होता है। यह स्वभाविक बात है अतः सब से बुद्धि मती कौन इसका निर्णय करना चाहिए।

परीक्षा करने के लिए राजा समय की प्रतिक्षा करता रहा। योगानुयोग से परीक्षा ा समय निकट आगया। एक दिन एक शूली की सजा पाये हुए अपराधी को शूली पर ढ़ाने के लिए ले जाया जा रहा था। उस अपराधी को स्नान कराया गया था। उसके ागे बाजे बजाये जारहे थे। उसके साथ अनेक लोग कोतवाल सिपाही आदि थे। मगर ह अकेला रोता हुआ जा रहा था। यह दृश्य रानियों ने देखा, देखकर दासियों से पूछा क इतने अच्छे ड्रेस में बाजे गाजे के साथ जाता हुआ यह आदमी रो क्यों रहा है दासियों कहा कि यह शूली का अपराधी है। थोड़ी देर में इसकी जीवन लीला समाप्त होने वाली अतः मौत के भय से यह रो रहा है।

आज कल फांसी दी जाती है। पहले शूली दी जाती थी। लोहे के एक तीखे शूल र आदमी को बिठा दिया जाता था। वह शूल मस्तक में आरपार निकल जाता था।

रानियों ने पूछा कि क्या कोई इन पर दया नहीं कर सकता। दासियों ने कहा क राज आज्ञा के विरुद्ध आचरण करने की किसी की हिम्मत नहीं हो सकती है। सब ने ोचा इस बेचारे का कुछ न कुछ भला करना चाहिए।

पहिली रानी राजा के पास गई। जाकर कहा मैं आप से एक वरदान मांगती हूं वह आज पूरा करना चाहती हूं। राजा ने कहा मांगलो वरदान और मेरा बोझ हल्का कर दो। रानी ने एकदिन के लिए उस शूलीकी सजा पाये हुए व्यक्तिको मांग लिया। उसे खूब खिलाया पिलाया और एक हजार मोंहरें भेंट में दी। रात को वह सो गया मगर शूली की याद से उसे नींद नहीं आ रही थी। इन मोहरों का क्या उपयोग है जब कि मैं खुद ही न रहूंगा। दूसरे दिन दूसरी रानी ने भी उसे एक दिन अपने यहां रखकर दस हजार मोहरें भेंट दी। तीसरी ने एकलाख मोहरें दीं, इसप्रकार उसकेपास तीसरेदिन एक लाख ग्यारह हजार दीनारें थी किन्तु उसका दिल शूली की सजा के स्मरण मात्र से बड़ा दुःखी था। चौथी रानी ने विचार किया कि मुझे भी इस बेचारे के दुःख में कुछ हिस्सा बटाना चाहिए।

मृत्यु घण्ट बज रहा हो उस समय यदि कोई मुझे कितना भी धन दौलत दे तो वह मेरे लिए किस काम का हो सकता है यह सोचकर रानी ने उसकी शूली माफ कराने का निर्णय किया। राजा की इजाजत लेकर रानी ने उस सजायाफ्ता व्यक्ति को अपने पास बुलाया। बुलाकर उसे पूछा कि जैसे अन्य रानियों ने तुझे एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट दी हैं वैसे मैं भी एक दिन रखकर तुझे दस लाख मोहरें दे दूं अथवा तेरी यह सजा माफ करवा दूं। हाथ जोड़कर चोर कहने लगा भगवति ? मोहरें लेकर मैं क्या करूँ। यदि आप मेरी सजा माफ करा दें तो ये एक लाख ग्यारह हजार मोहरें भी आपको देने के लिए तय्यार हूँ। मुझे जीवन दान चाहिए। धन नहीं चाहिए। उसकी बातें सुनकर रानी ने निश्चय कर लिया कि यह आदमी मोहरों की अपेक्षा जीवन को बहुमूल्य समझता है।

आज आप लोग दमड़ी के लिए जीवन नष्ट कर रहे हो। एक भव का जीवन ही नहीं किन्तु अनेक भवों के जीवन को बिगाड़ रहे हो। आप अपने कामों की तरफ निगाह करिये। क्या ऐसे कामों के चिकने सँस्कारों से अनेक भव नष्ट नहीं होते। अतः प्रथम अपनी आत्मा को अभय दान दीजिये। स्वहिंसा को रोकिये।

रानी ने चोर से कह दिया कि तेरी शूली माफ है। चोर बड़ा प्रसन्न हुआ चोर की प्रसन्नता की कल्पना कीजिये कि वह कितनी अपार होगी। चोर अपने घर चला गया किन्तु रानियों में आपस में झगड़ा हो गया कि किसने चोर का अधिक उपकार

किया । एक एक दिन रखकर मोहरें भेंट देने वाली तीनों रानियां एक तरफ हो गई और कहने लगीं चौथी रानी ने चोर को कुछ भी दिए बिना यों ही टरका दिया ॥ चौथी रानी बोली कि इस प्रकार आपस में वाद विवाद करने से बात का निर्णय नहीं आयगा अतः किसी तीसरे व्यक्ति को मध्यस्थ बना लिया जाय । यह बात सबने स्वीकार करली । राजा को मध्यस्थ बनाकर सब अपना अपना पक्ष उसके सामने रखने लगीं ।

पहली रानी ने कहा कि मैंने एक दिन के लिए चोर को सजा से बचा कर उसके जीवन के बचाने की शुरूआत की है । दूसरी ने कहा मैंने दस हजार मोहरें दी हैं । तीसरी ने कहा मैंने एक लाख मोहरें दी हैं । हम तीनों ने अपनी शक्ति अनुसार देकर इसका कुछ उपकार किया है । मगर यह चौथी रानी तो कुछ दिए बगैर कोरी बातें करके साफ निकल गई है फिर भी अपने काम को हमारी अपेक्षा श्रेष्ठ मानती है । आप फैसला कीजिये कि किसका काम अधिक उत्तम है । राजा ने सोचा कि यदि मैं किसी के पक्ष में न्याय दे दूंगा तो मेरा पक्ष-पात समझेगी और इनके आपस में भी झगड़ा हो जायगा । वह चोर जीवित ही है । उसे बुलाकर पुछ लिया जाय । राजाने रानियों से कहा कि मेरी अपेक्षा इस विषय में वह चोर अच्छा न्याय दे सकेगा क्योंकि वह भुक्त भोगी है और उसकी आत्मा जानती है कि किसने उस पर अधिक उपकार किया है । राजा ने चोर को बुलवा लिया और चारों रानीयों का पक्ष समर्थन उसके सामने रख दिया । हे चोर ! ईमानदारी से कहना कि इन चारों रानीयों ने तेरे पर जो २ उपकार किये हैं उनमें सब से अधिक उपकार किसका और कौनसा है । झूठ मत बोलना । चोर ने कहा राजन् ! उपकार तो इन तनिों रानीयों ने भी किया है जिसे मैं जीवन भर नहीं भूला सकता किन्तु चौथी रानी के द्वारा किया गया उपकार सब से महान् है । इसने मुझे जीवन दान दिया है । इसके उपकार का बदला मैं अनेक जन्मों में भी नहीं चुका सकता । यह तो साक्षात् भगवती है । दया की अवतार है । राजा ने कहा तू पक्षपात से तो नहीं कह रहा है ? इसने कुछ भी नहीं दिया फिर भी इसका सब से अधिक उपकार बता रहा है । चोर ने कहा महाराज मैं ठीक कह रहा हूं । मेरे कथन में पक्षपात नहीं है किन्तु नीरी सच्चाई है । इस चौथी रानी ने मुझे कुछ नहीं दिया है मगर फिर भी सब कुछ दे डाला है । इसने जो दिया है वह मिले बिना जो कुछ इन तीनों ने दिया है वह कैसे सार्थक हो सकता था । दूसरी बात इनकी दी हुई मोहरें पास होने पर भी मुझे यह महान् भय सताता रहा कि प्रातःकाल शूली पर चढ़ना पड़ेगा और जीवन से हाथ धोने होंगे । इस चतुर्थ महारानी ने मेरा सारा भय मिटा दिया और मुझे निर्भय बना दिया

है। सब कुछ आत्मा के पीछे प्रिय लगता है। आत्मा शरीर से अलग हो जाय तो स्म किस काम की रहे।

चोर का निर्णय सुनकर पहली तीनों रानियों का पहले मुँह उतर गया कि वे कुलवती थी अतः समझगई और इसबात को मान लिया कि जीवनदान सब दानोंमें श्रेष्ठ अमुल्य है। राजा ने कहा यदि यह बात ठीक है तो तुम सब में यह चौथी रानी अधि बुद्धिमती सिद्ध हुई और इस नाते यदि इसे मै पटरानी बनाऊं और घरकी नायिका का कर दूँ तो यह मेरी भूल न होगी। सबने उसे बुद्धि मती और पटरानी स्वीकार कर लिया।

चौथी रानी ने कहा मेरे पटरानी बनने से यदि किसी को भय हो तो मै सब सेविका बन कर ही रहना चाहती हूं। किसी प्रकार का कलह पैदा करके अथवा अ लोगों को दुःख देकर मै पटरानी होना पसन्द नहीं करती। तीनों ने कहा तुम्हारी तरफ न तो भय है और न दुःख। आपकी अक्ल के सामने हम तुच्छ है आप पटरानी होने लायक है।

मतलब यह है कि अभयदान सब दानो में श्रेष्ट दान है अभय दान कब दि जाता है इस पर विचार करिये। आप पांच रुपये मे बकरा खरीद कर उ अभयदान दो अथवा किसी अन्य जीव को मरण से बचा कर उसे अभयदान दो, यह ठी है। किन्तु पहले आप अपने खुद के लिए विचार करिये कि आप स्वय अभय अथ निर्भय है या नहीं। भगवान् नेमिनाथ के समान आपने अपनी आत्मा को निर्भय बना है या नहीं। भगवान् उन मूक पशुओं को बाड़े से छुड़ाकर शादी कर सकते थे। कि उन्होंने ऐसा न करके **'तोरण से रथ फेर लिया'** सो सदा के लिए फिरा ही लिया अपनी आत्मा को अभयदान देने के लिए भगवान् का यह दूसरा कदम था। पहला कद जीवों को छुड़ाना था। जब कि विवाह दुःख का मूल है विवाह करके आत्म को भय डालना भगवान् ने उचित नहीं समझा। मुकुट के सिवा सब आभूषण सारथी को दे दिय और स्वयं वापस लौट गये। कहावत है—

वणिकतुष्टं देत हस्तताली।

वनीये प्रसन्न हो जाय तो एक दो और जमादें मगर कुछ देने में बहुत संकोच होता है। भगवान् वनिये नहीं थे जो ऐसा करते। उन्होंने मुकुट के सिवा सब कुछ सारथी को दे डाला। श्रीकृष्ण के भण्डार के आभूषण कितने बहु मूल्य होगें जरा खयाल करियेगा।

राजेमती इनके साथ विवाह करने की इच्छा रखती थी। अतः उनके लौट जाने से उसकी क्या दशा हुई होगी। उसने सोचा कि भगवान् मुझे परमार्थ का मार्ग दिखाने आये थे। वे मेरे मोहनगारो है। आप लोग केवल गीत गाकर मोहनगारो कहते हैं मगर राजेमती ने सच्चा मोहनगारा बनाया था। कोरे गीत गाने से कुछ नहीं होता। गीत दो तरह से गाये जाते है। विवाह आदि प्रसंग पर वर की माता भी गीत गाती है और पड़ौसी स्त्रियां भी इन दोनों गीत गाने वालियों में कोई अन्तर है या नही ? पड़ौसी स्त्रियां गीत गाकर लेती है। माता गीत गाकर देती है। यदि मां भी गीत गाकर लेने लगे तो वह माता न रहेगी पड़ौसिन बन जायगी। उसका माता का अधिकार न रहेगा। आप भी परमात्मा के गीत गाये तो अधिकारी बनकर गाइये। लेने की भावना मत रखिये। अन्यथा अधिकार चला जायगा।

विचार करने से मालूम होता है कि भगवान् नेमीनाथ से राजेमती एक कदम आगे थी। नेमीनाथ तोरण से वापस लौट गये थे। अतः राजेमती चाहती तो उनके हजार अवगुण निकाल सकती थी। वह कह सकती थी कि वरराजा बन कर आये और वापस लौट गये। मुझ से पूछा तक नहीं। यदि विवाह न करना था तो बींद बन कर आये ही क्यों थे। दीक्षा ही लेनी थी तो यह ढोंग क्यों रचा। मै उनकी अर्धाङ्गिनी बन चुकी थी तो दीक्षा के लिए मेरी सम्मति लेनी आवश्यक थी आदि।

आज के आलोचक विद्वान् कह सकते है कि नेमीनाथ तीर्थंकर थे फिरभी उनके काम कैसे है कि तोरण पर आकर वापस लौट गये। एक स्त्री का जीवन बरबाद कर दिया। विद्वानों की आलोचना पर विचार करने के पहले राजेमती क्या कहती है। एक सखी ने कहा अच्छा हुआ जो नेमजी चले गये। वास्तव में उनकी और तुम्हारी जोड़ी भी ठीक न थी। वे काले है तुम गौरी हो। मुझे यह सम्बन्ध पहले से ही नापसन्द था। मगर मै कुछ बोल नहीं सकती थी। वे जैसे ऊपर से काले हैं वैसे हृदय से भी काले है। बींद बन कर आना, छत्र चँवर धारण करना फिर भी वापस लौट जाना यह हृदय का कितना कालापन है। अच्छा हुआ कि विवाह करने के पूर्व ही चले गये। नाक कटी तो उन लोगों की जो बारात में सज धज कर आये थे अपना क्या नुक्सान हुआ। राजेमती ! तुम तो खुशी मनाओ। तुम को कोई दूसरा उससे भी अधिक योग्य वर मिल जायगा।

सखी की ऐसी बातें सुन कर राजेमती ने क्या उत्तर दिया वह सुनिये । आजकल विधवा विवाह की एक लहर चल पड़ी है । विधवाएँ तो इस विषय में कुछ नहीं कहतीं। केवल नवयुवक लोग उनके विवाह कर लेने की बातें और दलीलें दिया करते है । मगर विचारने की बात है कि क्या विधवा विवाह होने से ही सुधार हो जायगा । जो लोग दूसरों का सुधार करना चाहते है वे पहले अपना सुधार कर लें । पहले खुद का रहन सहन देखना चाहिए कि वह कैसा है और उसमें सुधार की क्या गुंजायश है ।

राजेमती की सखी ने उसे दूसरा विवाह कर लेने की बात कही थी मगर उसकी लगन कैसी है यह देखिये । सखी से कहा—हे सखी तू चुप रह । ऐसा मत कह । वे भगवान् काला नहीं है किन्तु आकाश के समान श्याम वर्ण होने पर भी अनन्त है । उनकी से चमड़ी चाहे सांवली हो मगर उसके भाव इतने निर्मल और उज्जवल है कि अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिल सकते । उनके विषय में ऐसी बेहूदा बातें मै नहीं सुन सकती । उनके चरित्र की तरफ जरा नज़र कर । वे मुझे छोड़ कर किसी अन्य स्त्री से विवाह करने के लिए नहीं गये है किन्तु दिन हीन पशुओं पर करुणा भाव लाकर, उन्हे बंधनो से छुड़ाकर यादवों में करुणा बुद्धि जगाकर, करुणा सागर बनने के लिए गये है ।

राजमती की बात सुनकर उसकी सखी दंग रह गई । कहने लगी मैंने तो तुम्हें अच्छा लगाने के लिए ही उक्त शब्द कहे थे । आज भी लोग दूसरों को अच्छा लगाने के लिए सत्य की घात कर देते है । किन्तु ज्ञानी जन दूसरो को अच्छा लगाने के लिए भी सत्य का खून नहीं करते । वे जानते है कि—

सत्यं जयति नानृतम् ।

सत्य की ही जय होती है । झूठ की विजय नहीं होती । शास्त्र में भी कहा है कि—**'सच्चं भगवओं'** अर्थात् सत्य भगवान् है । वेदान्त में भी कहा है—**'सत्येन लभ्यते ह्ययं आत्मा'** अर्थात् यह आत्मा सत्य के जरिये ही परमात्मा में मिल सकता है । सत्य से तप होगा । सत्य से सम्यग्ज्ञान होगा । सम्यग्ज्ञान से ब्रह्मचर्य होगा । इन सब से परमात्मा की भेंट होगी । राजेमती सत्य प्रकृति से नाता रखती थी । अतः सखी से कह दिया कि ऐसे वचन मत बोल ।

दूसरी सखी ने कहा—यह मूर्खा है जो भगवान् की निन्दा करती है। निन्दा करने से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है। लेकिन मैं तुम से यह पूछना चाहती हूं कि थोड़ी देर पहले तुम्हारा क्या विचार था। राजेमती ने उत्तर दिया कि भगवान् की पत्नी बनने का सखी ने कहा—तब इतनी सी देर में वैराग्य कहाँ से आ गया। क्षणिक आवेश में आकर वैराग्य की बातें करती हो किन्तु भविष्य का भी जरा खयाल करो। अभी तो बाजी हाथ में है। अभी तुम्हें विवाह का दाग भी नहीं लगा है। माता पिता से कहने पर दूसरे वर के साथ इसी मुहूर्त में विवाह करा देंगे। आप जैसी कुलवन्ती के लिए वर की क्या कमी है।

राजेमती ने उत्तर दिया कि यह बात ठीक है कि मै भगवान् की पत्नी बनना चाहती थी। जो सच्ची बात थी तुझ से कही थी। मै झूठ बोलना अच्छा नहीं समझती। सत्य से विष भी अमृत हो जाता है और झूठ से अमृत भी विष। मै दिल से उनकी पत्नी बन चुकी हूं गो ऊपर से विवाह संस्कार नहीं हुआ है। मै समीप से सायुज्य में पहुँच चुकी हूं। अतः अब उनका काम उनका धर्म और उनका मार्ग मेरा काम, मेरा धर्म और मेरा मार्ग होगा। जिस प्रकार लवण की पुतली समुद्र में स्नान करने जाती है और उसी में समाजाती है उसी प्रकार मे भी भगवान् में समा चुकी हूँ। पहले मै पति शब्द का अर्थ कुछ और समझती थी किन्तु अब जान गई हूँ कि **'पुनातीतिपतिः'** अर्थात् जो पवित्र बनाये वह पति है। भगवान् ने मुझे पावन बना दिया है। विवाह करने पर एक को सम्मान देना पड़ता है और अन्यों की उपेक्षा करनी पड़ती है। ऐसा न होतो वह विवाह ही नहीं है। मै भी भगवान् को सन्मान देती हूँ जिन्होंने जगत् की सब स्त्रियों को माता और बहिन बना लिया है। मेरी भगवान् से जो लगन लगी है वह लगी ही रहेगी। वह लगन अब नहीं टूट सकती। चाहे मेरे माता पिता मुझे पहाड़ से गिरादें, विषपान करादें अथवा अन्य कुछ करदें किन्तु भगवान् के साथ जो लगन लगी है वह नहीं बदल सकती।

विवाह आप लोगों का भी हुआ है। जिसके साथ विवाह हुआ है उसके साथ ऐसी लगन लगी है या नहीं। विवाह करके स्त्री किसी पर पुरुष पर नजर न डाले और पुरुष स्त्री पर, यही सबक भगवान् नेमीनाथ और राजेमती के चरित्र

से लेना चाहिए । तभी आप भगवान् के श्रावक कहला सकते हैं । ऐसा हो तभी आनन्द है ।

राजेमती दीक्षा लेकर भगवान् से ५४ दिन पहले मुक्तिपुरी में पहुँची है। कवि कहते है कि राजेमती की मुक्ति सुन्दरी से प्रतिस्पर्धा थी । राजेमती कहती है अयि मुक्ति सुन्दरी ! तू मेरे पति को अपने पास पहले बुलाना चाहती थी मगर यहां भी मैं पहले आ पहूँची हूँ । अब देखती हूँ कि मेरे पति यहां से मुझे छोड़ कर कैसे जाते हैं ।

सच्चा विवाह करने वाले भगवान् अरिष्टनेमी और राजेमती अन्त तक हृदय में बने रहें तो कल्याण है ।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान
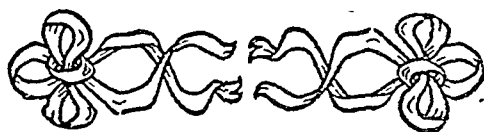
आत्म-विभ्रम
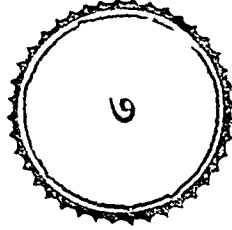
"जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वन्द............."
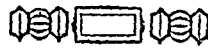
यह भगवान तेइसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ की प्रार्थना है। इस प्रार्थना में यह बात बताई गई है कि आत्मा अपना निज स्वरूप किस प्रकार भूल गया है और पुनः उसे कैसे जान सकता है। इस पर यह प्रश्न उठता है, जब कि आत्मा चिदानन्द स्वरूप है तब अपने रूप को क्यों भूल गया। पुनः स्वरूप का भान किस प्रकार हो सकता है। यह प्रश्न बड़ा कठिन जान पड़ता है किन्तु हृदय के कपाट खोलकर विचार करने से सरल बन जाता है।

आत्मा भ्रम में पड़ा हुआ है यह बात सत्य है मगर उस भ्रम को वह स्वयं ही मिटा सकता है। यदि आत्मा उद्योग करे तो भ्रम मिटाकर स्वस्वरूप को आसानी से जान सकता है। आत्मा भ्रम में किस प्रकार पड़ा हुआ है इसके लिए इस प्रार्थना में कहा गया है—

सर्प अन्धेरे रासड़ी रे, सूने घर बेताल।
त्यों मूरख आतम विषे, मान्यो जग भ्रम जाल ॥

अंधेरे में पड़े हुए रस्से के टुकड़े को देखकर सांप का भान होजाता है। इस काल्पनिक सांप को देखकर लोग डर भी जाते हैं। यद्यपि वह सांप नहीं है, रस्सी है, फिरभी मनुष्य अपनी कल्पना से उसे सांप मान कर कल्पना से ही भयभीत भी होता है। किसी के भ्रमवश किसी वस्तु को अन्यथा रूप से मान लेने से वह वस्तु बदल नहीं जाती। वस्तु तो जैसी होगी वैसी ही रहेगी। किसी ने कल्पना से रस्सी को सांप मान लिया जिससे रस्सी सांप नहीं बन जाती और न सांप ही रस्सी बन जाता है। केवल कल्पना से मनुष्य अन्यथा मानता है और कल्पना से ही भय भी पाता है। कल्पना भ्रम से पैदा होती है। जब बुद्धि में फितुर होता है तब वास्तविक पदार्थ उल्टा मालूम होने लगता है। यह भ्रम ज्ञानरूपी प्रकाश से मिट सकता है। ज्ञान, प्रकाश है, अज्ञान अंधकार है।

कल्पना से भय किस प्रकार पैदा कर लिया जाता है और वापस किस प्रकार दूर किया जाता है इस बात का मुझे खुद को भी अनुभव है। एकदा दक्षिण देश में घोड़नदी नामक ग्राम में रात के समय बैठा हुआ था। अन्य लोग भी बैठे थे। मैं छाया में बैठा हुआ था। कुछ लोग खुले में भी बैठे थे। हम सब ज्ञान की बातें कर रहे थे। छत पर चाँदनी से कुछ छाया पड़ रही थी। उस छत में एक दराड़ पड़ी हुई थी। उस छाया में वह ऐसी मालूम हुई मानों सांप हो। उपस्थित लोगों ने विचार किया कि यदि यह सांप रात को यहीं पर पड़ा रह गया तो संभव है किसी को हानि पहुँचाये। यह सोच कर सब लोग उस सांप को पकड़ने का प्रबन्ध करने लगे। कोई सांप पकड़ने का लकड़ी का चिपिया ले आया तो कोई प्रकाश के लिए दीपक। जब दीपक लेकर उसके पास आये तो सब लोग खिल खिलाकर हँसने लगे और एक दूसरे को कहने लगे किसने इसे सांप बताया, यह तो छत में पड़ी हुई दराड़ है।

इस प्रकार उस दराड़ (लम्बा छेद) के विषय में जो भ्रम पैदा हुआ था वह प्रकाश के लाने से दूर हो गया। यदि प्रकाश न लाया जाता तो वह भ्रम दूर नहीं होता। जिस प्रकार सांप के विषय में झूठ ज्ञान हो गया था, भ्रम हो गया था। इसी प्रकार संसार के विषय में भ्रम फैल रहा है। हमारे भ्रम से न तो आत्मा जड़ हो सकता है और न ज

ार्थ चैतन्य। लेकिन आत्मा भ्रम से गडबड़ में पड़ा हुआ है और इसी कारण जन्म मरण चक्कर में फंसा हुआ है।

मैने श्रीशंकराचार्य कृत वेदान्त भाष्य देखा है। उसमें मुझे जैन तत्त्व का ही तिपादन मालूम पड़ा। मै यह देख कर इस निर्णय पर पहुँचा हूं कि बिना जैन दर्शन के रे अध्ययन की सहायता के वस्तु का ठीक प्रतिपादन हो ही नहीं सकता यदि कोई शांति मेरे पास बैठ कर यह बात समझना चाहे कि किस प्रकार वेदान्त भाष्य में जैन दशन समावेश है, तो मै बड़ी खुशी से समझा सकता हूं।

वेदान्ती कहते है कि— **एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति'** अर्थात् एक ब्रह्म ही है ारा कुछ भी नही है। किन्तु भाष्य में कहा है कि—

युष्मदस्मत्प्रत्यय गोचरयोः विषय विषयिणोः।
तमः प्रकाश द्विरुद्धस्वभावयोः ॥ शांकर भाष्य।

अर्थात् युष्मत् और अस्मद् प्रत्यय के विषयीभूत विषय और विषयी में अन्धकार ार प्रकाश के समान परस्पर विरोध है। पदार्थ और पदार्थ को जानने वाले में परस्पर रुद्ध स्वभाव है। संसार के सब पदार्थ विषय है और इन को जानने वाला आत्मा विषयी । इन दोनो में परस्पर विरोध है। भाष्यकार का कथन है कि न तो युष्मद् अस्मद् हो कता है और न अस्मद् युष्मद्। दोनो को अधकार और प्रकाशवत् भिन्न माना है। ोनों एक नही हो सकते। जैन धर्म भी ठीक यही बात कहता है कि जड और चैतन्य का भाव और धर्म जुदा जुदा है। न तो जड़ चैतन्य हो सकता है और न चैतन्य जड़। स प्रकार भाष्य का कथन जैन शास्त्र और जैन दर्शन के प्रतिकूल नही है किन्तु अनुकूल -समर्थक है। इसके विपरीत वेदान्त-प्रतिपादित '**एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति**' के द्धान्त के प्रतिकूल पड़ता है। यदि ब्रह्म के सिवा अन्य कुछ नही है तो युष्मत् और स्मद् अधंकार और प्रकाश, पदार्थ और पदार्थ को जानने वाला, एक हो जायंगे। न चैतन्य स्वरूप माना गया है। यदि दोनों पदार्थ चैतन्य रूप हो तब तो एक में ेल सकते है। किन्तु यदि दोनों तमः प्रकाशवत् भिन्न गुण वाले हों तब एक में कैसे ेल सकते है। अगर दोनों अलग अलग रहते है तो "**एको ब्रह्माद्वितीयोनास्ति**" द्धान्त कहां रहा। इस प्रकार विचार करने से सभी जगह जैन तत्व और जैन दर्शन की ाद्वाद शैली मिलेगी। स्याद्वाद शैली बिना वस्तु तत्व विवेचन ठीक नहीं हो सकता।

मतलब यह है कि आत्मा ने अपने भ्रम से ही जगत् पैदा कर रखा है। जिस तरह रस्सी में सांप की कल्पना हुई उसी प्रकार मैं दुबला हूं, मैं लगड़ा लूला हू, आदि अनेक कल्पनाए की जाती है। विचार करने पर मालूम होगा कि आत्मा न दुबला है और न लगड़ा लूला। दुबला और लगड़ा लूला शरीर है मगर भ्रमवश शरीर के धर्म आत्मा में मानकर मनुष्य भयभीत या दुःखी होता है। आत्मा और शरीर के गुण स्वभाव भिन्न भिन्न है। अज्ञानवश जीव दोनों को एक मानता है और अनेक प्रकार का जाल रचता है। इस भ्रम को मिटाने के लिए तथा काल्पनिक जगत् बनाने से बचने के लिए प्रार्थना में कहा गया है **'जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद'**। भगवद् भक्ति से सब प्रकार के भ्रम मिट जाते हैं भ्रम मिटने पर दु ख कभी नहीं हो सकता।

इसी बात को जैन सिद्धान्त के अनुसार देखें कि आया यह संसार भ्रम-कल्पना से ही बना हुआ है अथवा वास्तविक है। शास्त्र कहते हैं व्यवहार दृष्टि से जगत् वास्तविक है और निश्चय दृष्टि से काल्पनिक। इस विषय का विशेष खुलासा उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में किया गया है।

महानिर्ग्रंथ अध्ययन में नाथ अनाथ की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि जीव भ्रमवश अपने को अनाथ मानता है और अभिमान से नाथ समझता है। वास्तव में वह न नाथ है और न अनाथ है। नाथ अनाथ का सच्चा स्वरूप बताकर राजा श्रेणिक का भ्रम मिटाया गया है। इसी बात को समझ कर किसी बात का त्याग न करने पर भी केवल सच्ची समझ पैदा हो जाने के कारण राजा श्रेणिक ने तीर्थंकर गोत्र बांध लिया था। महानिर्ग्रन्थ और श्रेणिक का संवाद ध्यान पूर्वक सुनने से उसका रहस्य ध्यान मे आयगा। मैं अनाथी मुनि के चरण रज के समान भी नहीं हू और आप भी श्रेणिक राजा के समान नही है। फिर भी उन मुनि की बातचीत कहने के लिए मुझे जैसे अपने आत्मा को तय्यार करना होगा वैसे आपको भी कुछ तय्यारी करनी होगी। जैसे उस चोर ने मुर्दे का पार्ट पूरा अदा किया था वैसे आपको भी श्रेणिक का पार्ट अदा करना चाहिए। ऐसा करने पर ही इस कथा का रहस्य समझ में आयगा।

राजा श्रेणिक के परिचय के लिए इस कथा में कहा गया है—

पभूयरयणो राया सेणिओ मगहाहिवो।
विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिसिचेइये ॥ २ ॥

पहले पात्र का परिचय कराना आवश्यक होता है। श्रेणिक इस कथा में प्रधान है। वह अनेक रत्नों का स्वामी था। श्रेणिक साधारण राजा नहीं था किन्तु मगध का अधिपति था।

शास्त्र में श्रेणिक को बिम्बिसार भी कहा गया है। श्रेणिक की बुद्धिमत्ता के लिये ा प्रसिद्ध है। श्रेणिक के पिता प्रसन्नचन्द्र के सौ पुत्र थे। पिता यह जानना चाहता था उसके पुत्रों में सबसे अधिक बुद्धिमान कौन है। परिक्षा करने के लिये प्रसन्नचन्द्र ने एक न कृत्रिम आग लगा दी और अपने पुत्रों से कहा कि आग लगी है अतः महलों में से सार भूत चीजें हों उन्हे बाहर निकाल डालो। पिता की आज्ञा पाते ही सब लड़के पनी २ रुचि के अनुसार जिसे जो वस्तु अच्छी लगी वह निकालने लगा श्रेणिक ने घर से दुन्दभी निकाली। दुन्दभी को निकालते देख कर उसके सब भाई हसने लगे और हने लगे कि यह कैसा आदमी है जो ऐसे अवसर पर ऐसी वस्तु बाहर निकाल रहा है। गारा के सिवा इसे कोई अच्छी वस्तु घर में नहीं दिखाई दी जो इसे निकालना पसन्द या है। यह अब नगारा बजाया करेगा। मालूम होता है, यह ढोली है। खजाने से नादि न निकाल कर यह दुन्दुभी निकाली है।

ऊपर की नज़र से श्रेणिक का यह काम बड़ा हल्का मालूम पड़ता था मगर उसके र्म को कौन जाने। राजा प्रशन्न चन्द्र इसका मर्म समझते थे। समझते और जानते हुए ी उस समय प्रसन्न चन्द्र ने श्रेणिक की प्रशंसा करना उचित नहीं समझा। कारण निन्यान्वे ाई एक तरफ थे और अकेला श्रेणिक एक तरफ। क्लेश हो जाने की सम्भावना थी। सन्न चन्द्र ने पुत्रों से पूछा कि क्या बात है। सबने कहा कि हमने अमुक अमुक चीज नेकाली है पर पिताजी हम सब बड़े हैरान हैं कि आप के बुद्धी मान पुत्र श्रेणिक ने नगारा नेकाला है। इससे बढ़कर कोई बहुमूल्य वस्तु आपके खजाने में इसे नहीं मिली। वाद्य की या कमी है। दस पांच रुपयों में वाद्य मिल सकता है। यह निरा मूर्ख मालूम पड़ता है। सन्न चंद्र ने श्रेणिक की ओर नज़र कर के कहा कि ये लोग तुम्हारे लिए क्या कह रहे हैं सुनते हो। श्रेणिक ने उत्तर दिया कि पिता जी! राजाओं को रत्नों की क्या कमी है। यह नगारा राज्य चिह्न है। यदि यह जल जाय तो राज्य चिह्न जल जाता है और यदि यह बच जाय तो सब कुछ बच गया समझना चाहिए। राज्यचिह्न के रह जाने से अनेक रत्न पैदा किए जासकते है

आंज कल भी नगारे की बहुत रक्षा की जाती है। नगारे पर होशियार रक्षक रखे जाते हैं। यदि किसी राजा का नगाड़ा चला जाय तो उसकी हार मानी जाती है। उसका राजचिह्न चला जाता है।

श्रेणिक ने कहा कि राज्य चिह्न समझ कर इस की रक्षा करना मैंने सब से जरूरी समझा है। श्रेणिक के भाई कहने लगे यह मूर्खता है। युद्ध के समय यदि नगाड़ा बजाया जाय तो हमारी समझ में आ सकता है कि मौके पर राज्य चिन्ह बचा लिया किन्तु शान्ति काल में आग मे जलती वस्तुओं की रक्षा के वक्त नगाड़ा निकालना कोई बुद्धिमत्तापूर्ण काम नहीं है।

प्रसन्न चन्द्र श्रेणिक पर बहुत प्रसन्न हुए किन्तु प्रसन्नता बाहर न दिखाई श्रेणिक को आंख के इशारे से समझा दिया कि इस समय तू यहां से चला जा। श्रेणिक चला गया। बाहर रह कर उसने बहुत रत्न प्राप्त किये। प्रसन्नचन्द्र ने अन्त में उसकी बुद्धिमत्ता से खुश होकर उसी को राज्यभार सौंपा। श्रेणिक भेरी (दुन्दुभी-एक वाद्य विशेष) निकाल कर लाया था। भेरी शब्द का मागधी में भम्भा या बिम्ब होजाता है। श्रेणिक बिम्ब को ही सार माना था अतः उसका नाम बिम्बिसार भी है। घर से निकाल दिये जा पर वह बहुत रत्न लाया था अतः बहुत रत्नों का स्वामी कहा गया।

अब श्रेणिक शब्द का अर्थ देखलें। कहते हैं वह घर से निकाल दिया जाने भी राजकुमार ही रहा। ऊँचे ओहदे पर ही रहा, नीचे नहीं गिरा। विपत्ति में पड जाने भी वह सम्पन्न ही रहा—श्रेष्ठ ही रहा अतः श्रेणिक कहलाया।

श्रेणिक संसार की सब सम्पदाओं से युक्त था मगर उसके पास ज्ञानसम्पदा न थी। आप लोगों को अन्य सब सम्पदाएं प्रदान करने वाले और ज्ञानसंपदा प्रदान करने वा में बड़ा कौन मालूम होता है। एक आदमी आपको बल देता है, धन देता है, सब कु देता है और दूसरा आपको आत्मा की पहिचान कराता है। इन दोनों में आपको कौन ब लगता है। जो आत्मा की पहिचान कराते है और यह श्रद्धा पैदा कर देता है कि आ और शरीर, तलवार और म्यान अलग अलग है, वे महात्मा जगत् में बहुत थोड़े हैं संम्पदा देने वालों से ये महात्मा कम उपकारक नहीं है। बहुत अधिक उपकारक हैं।

यदि आप लोगों को आत्मा और शरीर का तलवार और म्यान के समान पृथक् पृथक् भान हो जाय तो क्या चाहिए। इस बात पर दृढ़ श्रद्धान हो जावे तो बेड़ा पार है। किन्तु दुःख है कि व्यवहार के समय ऐसा विश्वास कायम नहीं रहता, यदि कभी किसी वीरयोद्धा के पास तलवार हो और उस समय यदि शत्रु उसके सामने आजाय तो वह वीर तलवार को संभालेगा या म्यान को। यदि उसने उस समय तलवार न संभाल कर म्यान संभाला तो क्या वह वीर कहलायेगा और शत्रु से अपनी रक्षा कर सकेगा। इसी प्रकार आप लोगों पर भी मान लो कोई आपत् आ जाय तो उस समय आप म्यान के समान शरीर का बचाव करोगे अथवा तलवार के समान आत्मा का। शरीर को तो संभाला जाय पर उसमें निवास कर ने वाले आत्मदेव को न संभाला जाय यह कितनी मूर्खता की बात होगी।

कामदेव श्रावक की परीक्षा करने के लिए एक देव पिशाच का रूप धारण कर हाथ में तलवार लेकर आया और कहने लगा कि तू तेरा धर्म छोड दे नहीं तो मै तेरे शरीर के टुकड़े २ कर डालूंगा। यह सुन कर काम देव किञ्चित् भी भयभीत न हुआ। शास्त्र कहते हैं कि पिशाच के शब्द सुन कर कामदेव श्रावक का एक रोम भी नहीं डिगा। उसे जरा भी भय या त्रास न हुआ। जरा विचार कीजिये कि कामदेव को भय क्यों नहीं हुआ। क्या उसके पास सम्पत्ति नही थी जिसका उसे मोह न था। शास्त्र कहता है उसके पास अठारह करोड सोनैया और साठ हजार गायें थी। वह श्रीमन्त और ठाट बाट वाला था। पिशाच के शब्द सुनकर कामदेव हँसता हुआ विचार कर रहा था कि हे भगवान्! यदि मैं ने धर्म और आत्मा को न जाना होता तथा तेरी शरण न पकड़ी होती तो आज मेरी क्या दशा होती। इस कठोर परीक्षा मे मै टिक सकता या नहीं। परीक्षा उसी की होती है जो पाठशाला पढ़ने जाता है। जो पाठशाला नहीं जाता उसकी कौन परीक्षा करे। कामदेव भगवान् का भक्त और श्रावक था अतः उसकी परीक्षा हुई है। उसने भगवान् महावीर का धर्म अंगीकार किया हुआ था अतः परीक्षा हुई। उसने ऐसा न सोचा कि महावीर का धर्म स्वीकार करने से मुझ पर आफत आई है अतः हे महावीर मेरी रक्षा करो—बचाओ।

आज तो भ्रम से उत्पन्न डाकिन भूतों का भी भय होता है लेकिन कामदेव सामने खड़े हुए भूत को देखकर भी नहीं डरा। पिशाच बड़ा भयानक रूप धारण किये हुए था। हाथ में तलवार लिए हुए था। टुकड़े करने की बात कह रहा था फिर भी कामदेव का एक रोम भी विचलित न हुआ, यह कितने आश्चर्य की बात है। कदाचित् आप लोग यों दलील दें कि हम गृहस्थ हैं अतः इतने मजबूत नहीं रह सकते। क्या

कामदेव गृहस्थ नहीं थे । वे नहीं डरते थे तो आप क्यों डरते हो । यह कहो कि हमें अभी आत्मा और शरीर के तलवार–म्यान के समान पृथक् २ होने में पूरा विश्वास नहीं है। कुछ संदेह है ।

यह पिशाच मेरे शरीर के टुकड़े करना चाहता है किन्तु अनन्त इन्द्र भी मेरे टुकड़े नहीं कर सकते । मैं जानता हूं और मानता हूं कि टुकड़े शरीर के हो सकते हैं आत्मा के नहीं । शरीर के टुकड़े होने से आत्मा का कुछ नहीं बिगड़ता । शरीर तो पहले से ही टुकड़ों से जुड़ा हुआ है ।

मैं सब सन्त और सतियों से यह बात कहना चाहता हूं कि यदि हमारे श्रावकों में भूत पिशाच आदि का भय रहा तो यह हमारी कमजोरी होगी । विद्यार्थी के परीक्षा में फैल होने पर जैसे अध्यापक को शर्मिन्दा होना पड़ता है वैसे ही श्रावक श्राविकाओं में भय होने पर साधुओं को शर्मिन्दा होना चाहिए । भगवान् महावीर का धर्म प्राप्त करने के बाद भय खाने की बात ही नहीं रहती ।

कामदेव ने हँसते हुए कहा—ले शरीर के टुकड़े कर डाल । कामदेव मन में विचार करता है कि इस पिशाच ने धर्म नहीं पाया है अतः यह ऐसा काम करना चाहता है। मैंने धर्म प्राप्त किया है अतः इस अग्नि परीक्षा में उतरकर अपने धर्म को शुद्ध स्वच्छ बनालूं। जैसे इसने मुझ पर निष्कारण वैर भाव लाना अपना धर्म मान रखा है। वैसे मैंने भी निष्कारण वैरियों पर क्रोध न करना अपना धर्म मान रखा है । अधर्म वैर करना सिखाता है और धर्म प्रेम करना । यदि मैं शान्त--स्वभाव छोड़ कर अशान्त बन जाऊं तो इस में और मुझ में क्या अन्तर रहेगा ।

दैवी और आसुरी दो प्रकार की प्रकृतियाँ होती है । यहां इन दोनों की परस्पर लड़ाई हो रही है । गीता में इन दोनों प्रकृतियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है ।

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ ! संपदमासुरीम् ॥

दंभ, दर्प, अभिमान, क्रोध, निर्दयता और अज्ञान ये छ आसुरी प्रकृति के लक्षण हैं । जिस में ये बातें पाई जाती हो वह असुर है । दैवी प्रकृति के लक्षण निम्न प्रकार हैं ।

अभयं सत्त्वसंशुद्धि र्ज्ञानयोगव्यवस्थिति ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्तमार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमाधृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

दैवी प्रकृति का पहला लक्षण अभय है । जो स्वयं निर्भय होता है वही दूसरों को अभयदान दे सकता है । भय से कांपने वाला व्यक्ति दूसरों को क्या अभयदान देगा । कामदेव के समान आत्मा और शरीर को जुदा २ मानने और विश्वास करने वाले ही दूसरों को निर्भय बना सकते है । कामदेव ने अपना अक्रोध रूप धर्म नहीं छोड़ा । अक्रोध धर्म को छोड़ना ऐसा समझा जैसे कोढ़ रोग को लेकर अपना स्वास्थ्य दान करना । अथवा चिन्तामणि रत्न देकर बदले में कंकड़ लेना । कामदेव में ऐसी दृढ़ता थी लेकिन आज आप लोग दर दर के भिखारी बन रहे हो । कहीं किसी देव को पूजते हो और कहीं किसी को । स्त्रियों में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है । यदि हम साधु लोग भी मंत्र--तंत्रादि का ढोंग करने लगे तो बहुत लोग हमारे पास उमड़ पड़ें किन्तु यह साधु का मार्ग नहीं है । हम तो भगवान् महावीर का धर्म सुनाते है जिसे पसन्द पडे वह लेले और जिसे पसन्द न पड़े वह न ले ।

पिशाच ने मौखिक भय से कामदेव को डिगते न देखकर उसके शरीर के टुकड़े२ कर डाले । कामदेव इस अवस्था में भी यह मानता रहा कि मुझे वेदना नहीं हो रही है किन्तु जन्म जन्म की वेदना जा रही है ।

ऑपरेशन करते समय शरीर में वेदना होती है किन्तु जो लोग दृढ़चित होते हैं वे उस समय भी प्रसन्न रहते हैं । जब डाक्टर ने मेरे हाथ का ऑपरेशन करने के लिए कहा तब मैंने अपना हाथ उसके सामने लम्बा कर दिया । उसने क्लोराफार्म सुंघाने के लिए कहा लेकिन मैंने सुंघने से इन्कार कर दिया । बिना क्लोराफार्म के ही मेरा ऑपरेशन हुआ और जो वेदना हुई उसे मैने प्रसन्नता पूर्वक सहन किया । सुना है, फ्रांस में एक आदमी ने यह देखने के लिए कि नसें काटने पर कैसी वेदना होती है, अपनी नसें काट डाली । नसें काटते २ वह मर गया मगर अन्त तक वह हँसता ही रहा ।

कामदेव श्रावक भी शरीर के टुकड़े होते समय हँसता ही रहा। आखिर देव ह
गया और अपना पिशाच रूप छोड़कर दैवी रूप प्रगट किया। कामदेव ने अपने अ
धर्म के जरिये पिशाच को देव बना लिया। भगवान् महावीर देवाधिदेव हैं। अनन्त इ
मिलकर भी उनका एक रोम नहीं डिगा सकते। आप ऐसे भगवान् के शिष्य है अतः कु
तो दृढ़ता रखिये। जो बात सागर में होती है थोड़े बहुत रूप में वह गागर में भी हो
चाहिए। भगवान् का किंचित् गुण भी हम में आये तो हम निर्भय बन सकते हैं।

देवता कामदेव से कहने लगा कि इन्द्र ने आप के विषय में जो कुछ कहा
वह ठीक निकला। मैने आपके शरीर के टुकड़े क्या किये मेरे पाप के ही टुकड़े कर डाले
जिस प्रकार लोहे की छुरी पारस के टुकड़े करते हुए स्वयं सोने की बन जाती है उ
प्रकार आप की धर्म दृढ़ता देखकर मेरे पाप विनष्ट हो गये हैं। मैं अब ऐसे का
कभी न करूंगा।

कहने का सारांश यह है कि श्रेणिक राजा अनेक रत्नों का स्वामी था मगर ए
धर्म रूप रत्न की उसमें कमी थी। वह जल तारिणी, उपद्रवादि नाशिनी विद्याएं जानत
था किन्तु धर्म रूप रत्न उसके पास न था। और इसीसे वह अनाथ था।

आज अनाथ उसे कहा जाता है जिसका कोई रक्षक न हो। जिसे कोई खा
पीने की वस्तुएं देने वाला न हो। और जिसका रक्षक हो तथा खाने-पीने की वस्तुएं दे
वाला हो वह सनाथ गिना जाता है। किन्तु महा निर्ग्रन्थअध्ययन नाथ अनाथ की व्याख्
कुछ और प्रकार से करता है, यह बात अवसर होने पर बताई जायगी।

सुदर्शन चरित्र—

तिनपुर सेठ श्रावक दृढ़ धर्मी, यथा नाम जिनदास।
अर्हद्दासी नारी खासी रूप शील गुणवान रे ॥ धन० ॥ ५ ॥
दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावन हार।
सेठ प्रेम से रखे नेमसे करे साल संभाल रे ॥ धन० ॥ ६ ॥

कथा में सुदर्शन का जो पूर्व भव का चरित्र बताया गया है उससे अपने चरित्र को
सुधारने की शिक्षा लेनी चाहिए। सुदर्शन के परिचय के साथ उसके मां बाप का भी

रिचय दिया गया सो तो अच्छी बात है मगर उसके पूर्व भव का परिचय देना आज कल के तरुण युवकों को अच्छा नहीं लगता। आज के बहुत से युवकों को पूर्व भव की बातों पर विश्वास नहीं बैठता। उन्हें विश्वास हो या न हो किन्तु यह बात निश्चित है कि पूर्व भव है, पुनर्जन्म है। शास्त्रीय पुरानों के साथ २ पुनर्भव की पुष्टि के लिए कई प्रत्यक्ष प्रमाण भी मिले है। कई बच्चों को जातिस्मरण ज्ञान हुआ है और उन्होंने अपने पूर्व जन्म के हालात बताये हैं।

चम्पा नगरी में जिनदास नाम का एक सेठ रहता था। उसकी पत्नि का नाम अर्हद्दासी था। दोनों की जोडी कैसी थी इसका वर्णन हैं मगर अभी कहने का समय नहीं है। जहां एक अंग में धर्म हो और दूसरे में न हो वहां जीवन अधुरा रहता है। आपके दोनों हाथ हैं और इनकी सहायता से आप सब काम कर सकते हैं फिर भी आपने विवाह किया है दो हाथ के चार हाथ बनाये है। विवाह करके आप चतुर्भुज--भगवान बन गये है चतुर्भुज भगवान को भी कहते है। अर्थात् विवाह करके आदमी अपूर्ण से पूर्ण बन जाता है। गृहस्थ जीवन विवाह करने से पूर्ण बनता है। यदि कोई विवाह करके चतुर्भुज के बजाय चतुष्पद बन जाय तो कैसा रहे। बहुत से लोग विवाह करके जो काम अकेले से शक्य न था वह पत्नि की सहायता से करके भगवान् में लीन हो जाओ यह चतुर्भुज बनना है और यदि ऐसा न करके संसार के विषय विकार या भोगविलास में ही फंसे रहो तो चतुष्पद बन जायगे।

जिनदास और अर्हद्दासी धर्म के काम इस प्रकार करते थे मानों ईश्वर के अवतार हों। एक दिन अर्हद्दासी के मन में विचार हुआ कि आज हम दोनों इस घर में धर्म करने वाले है मगर भविष्य में हमारे पश्चात् कौन धर्म करेगा। हमारे धर्म का उत्तराधिकारी कोई होना चाहिए। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में धर्म की लगनी और श्रद्धा अधिक होती है। अर्हद्दासी इस चिन्ता में डूब गई। चिन्तावस्था में सब कुछ बुरा लगने लगता है। बाहर से सेठ आये और सेठानी से पूछा कि आज उदास क्यों बैठी हो। सेठानी ने चिन्ता का कारण व्यक्त नहीं किया। अपने भावों को छिपाये रही। सेठ उसकी चिन्ता मिटाने और प्रसन्न करने के लिए उसे बाग बगीचे में लेगये, खेल तमाशे दिखाये किन्तु कोई परिणाम न निकला। सेठानी की चिन्ता न मिटी।

बुद्धिमान लोगों का कहना है कि स्त्री को मुर्झाई हुई न रखना चाहिए। स्त्री को मुर्झाई हुई रखना, अपने अंग को ही मुर्झित रखना है। सेठ ने सेठानी को राजी रखने के,

अनेक प्रयत्न किए मगर सब व्यर्थ गये। अत में सेठ ने सोचा कि दर्द कुछ और है इलाज कुछ और हो रहा है। सेठानी से चिन्ता का कारण पूछा सेठानी से अब रहा न गया। विचार करने लगी कि मेरे पति मेरे सुख दुःख के साथी अतः इनके सामने अपनी चिन्ता प्रकट करना चाहिए। सेठानी ने कहा मुझे कपड़े और गहने आभूषण की चिन्ता नहीं है। जो स्त्रियां ऐसी चिन्ता करती है वे जीवन अर्थ नहीं समझतीं। मुझे तो यह चिन्ता है कि आपके जैसे योग्य पति के होते हुए हमारे घर में हमारा उत्तराधिकारी घर का रख वाला नहीं है। मैं अपना कर्त्तव्य पूरा न सकी। कुल दीपक के बिना सर्वत्र अंधेरा है।

सेठानी का कथन सुनकर सेठ विचार करने लगे कि मैं जिन भक्त हूँ। संत प्राप्ति के लिए नहीं करने योग्य काम मैं नहीं कर सकता। योग्य उपाय करना बुद्धिमा का काम है। सेठानी से कहा—प्रिये! हम लोग जिनेश्वर देव के भक्त हैं। पुत्र होना होना हमारे हाथ की बात नहीं है। यह बात भाग्य के अधीन है। ऐसी चिन्ता कर अपने नाम को लजाना है। अतः चिन्ता छोड़ कर अपनी संपत्ति दान आदि कामों लगाओ जिससे संतान विषयक अन्तराय टूटनी होगी तो टूट जायेगी। हमारा धन कि अयोग्य हाथ में न चला जाय अतः अपने हाथों से ही पात्र कुपात्र का ख्याल रखक दान दें। सेठ ने सठानी की चिन्ता मिटादी और दोनों पहले की अपेक्षा अधिक ध करणी करने लगे। इनके घर में रहने वाला सुभगदास ही भावी सुदर्शन है। दास क्य करके सुदर्शन बनता है इसका विचार आगे है।

राजकोट
१२—७—३६ का
व्याख्यान

श्रेणिक को धर्म प्राप्ति
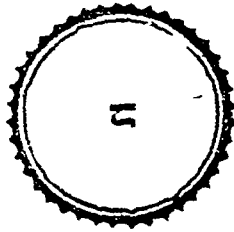
"श्री महावीर नमूं वरनाणी............।"

यह भगवान् महावीर स्वामी चोवीसवें तीर्थङ्कर की प्रार्थना है। एक एक तार को सुलझाते सुलझाते सारा गुच्छा सुलझ जाता है और एक एक के उलझते सारी वस्तु उलझ जाती है। यह आत्मा इस संसार में उलझ रहा है। इस को सुलझाने तथा सत्य सरल वनाने का मार्ग परमात्मा की प्रार्थना करना है। भक्ति मार्ग आत्मा की उलझन मिटा देता है।

अब हम यह देखें कि आत्मा की उलझन कौन सी है। आत्मा द्रव्य को भूलकर पर्याय की कद्र करता है यही इस की उलझन है। आत्मा घाट तो देखाता है मगर जिस सोनेका वह घाट वना है उसको नहीं देखता। सोने की कद्र नहीं करता सोने के वने हुए विविध प्रकार के घाट (रचनाविशेष) की कद्र करता है। संसार व्यवहार में भी यदि कोई सोने को न देखकर केवल घाट को ही देखे और वनावट के आधार से ही क्रय विक्रय

करले तो उसका दिवाला निकल जायगा। चतुरव्यक्ति घाटकी तरफ गौणरूप से देखेगा। उसकी नजर सोने की तरफ होगी कि यह सोना कितना शुद्ध है। आप लोग भी दागीने खरीदते वक्त केवल डिजाइन (घाट) की तरफ नहीं देखेंगे किन्तु सोनेके टंच देखोगे। द्रव्य की तरफ नजर रखोगे। वस्तु का मूल्य द्रव्य के आधार पर होता है। बनावट मुख्य आधार नहीं होती। जबकि बनावट भी रखनी पड़ती है। बनावट का खयाल न रखने से घर की श्रीमती जी के नापसन्द करने पर वापस बाजार का चक्कर लगाना पड़ता है।

ज्यों कञ्चन तिहुं काल कहिजे, भूषण नाम अनेक।
त्यों जग जीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक॥

ज्ञानी कहते है केवल पर्याय की तरफ ही मत खयाल रखो मगर द्रव्य को भी देखो। कहा है।

जिस प्रकार सुवर्ण हर समय सुवर्ण ही कहा जाता है चाहे उसके बने आभूषणों के कितने ही नाम क्यों न रख लिए गये हों। उसी प्रकार चाहे जिस योनि का जीव हो किन्तु आत्मा सब में समान है। जीव की पर्याय कोई भी हो, चाहे देव हो, मनुष्य हो तिर्यञ्च हो, नारक हो, सब में आत्मा समान है। आपने देव और नारक जीवों को आंखों से नहीं देखा है। शास्त्र में सुने है। किन्तु मनुष्य और तिर्यञ्च जीवों को प्रत्यक्ष देख रहे हो। ये सब पर्याय हैं। आत्मा की यही भूल है कि वह इन पर्यायों को देखता है मगर इन में जो चेतन द्रव्य रहा हुआ है उसकी तरफ लक्ष्य नहीं देता। घाट पर मोहने वाली स्त्री जैसे पीतल के दागिने खरीद कर अपनी भूल पर पछताती है उसी प्रकार पर्याय का खयाल करने वाला द्रव्य की कद्र नहीं करके पछताता है।

आत्मा इस प्रकार की भूल न करे अतः ज्ञानियों ने अहिंसा व्रत बतलाया है सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि व्रत इसी के लिए हैं। अहिंसा व्रत में यही बात है कि अपनी आत्मा के समान सब जीवों को मानो। '**अप्पसमं मनिज्ज छप्पि कायं**' छहों काया के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानो। पर्याय के कारण भेद मत करो जब तक अपनी आत्मा के समान सब जीवों को नही माना जाता तब तक अहिंसा व्रत का पालन नहीं हो सकता। जिसे पूर्ण अहिंसा का पालन करना होगा उसे पर्याय की तरफ

ई खयाल न रखकर केवल शुद्ध चेतन रूप द्रव्य का खयाल रखना होगा । भगवद् गीता भी कहा है कि—

'ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः' पंडित ात् ज्ञानी, ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता. और चण्डाल सब पर समान नज़र रखते है । सब शुद्ध चेतन द्रव्य को देखते है । उनकी विविध प्रकार की शुद्ध अशुद्ध खोलियों का ाल नहीं करते । सब जीवों की समान रूप से सेवा करते हैं । पर्याय की तरफ देखने आदत को मिटाने से आत्मा परमात्मा बन जायगी । जो भगवान् महावीर को मानता है । मनुष्य, स्त्री बालक, वृद्ध, रोगी, नीरोगी, पशु-पक्षी, सांप, बिच्छु, कीड़ी मकोड़ी आदि नियों का खयाल किये बिना सब की समान रूप से रक्षा करनी चाहिए । जो ऐसा नहीं नता वह भगवान् महावीर को भी नहीं मानता । महावीर को मानना और उनकी वाणि न मानना, यह नहीं हो सकता । भगवान् स्वयं कहते हैं कि चाहे कोई व्यक्ति मेरा नाम ले किन्तु वह यदि मेरी वाणी को मानता है, मेरे कथनानुसार अपनी आत्मा के समान ा जीवों को मानता है तो वह मुझे प्रिय है । वह मेरा ही है । जो छः काय के जीवों को त्मतुल्य नहीं मानता । वह मेरा नाम लेने का भी अधिकारी नही है ।

आप से अधिक न बन सके तो कम से कम छहो काय के जीवों को खुद की ात्मा के समान मानिये । पर्याय दृष्टि गौण करके द्रव्य द्राष्टि को मुख्य बनाइये । सब का ात्मा समान है और आत्मा तथा शरीर अलग २ है । गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने कपड़े उतार कर नये पहन लेता है उसी प्रकार आत्मा ाने शरीर को छोड़ कर नया शरीर धारण करता है । शरीर रूप पर्याय बदलता रहता है गर आत्मा सब अवस्थाओं में कायम रहता है । कपड़े बदल लेने मात्र से मनुष्य नही दल जाता । इसी प्रकार शरीर के बदल जाने से आत्मा नही बदल जाती । नाटक में रुष स्त्री का सांग बनाता है और स्त्री पुरुषका किन्तु सांग बदल लेने से न तो पुरुष स्त्री बन ाता है और न स्त्री पुरुष ही । साधारण मति वाले लोग सांग बदल जाने से भ्रम में पड़ ाते है । किन्तु समझदार सूत्र धार ऐसे भ्रम में नहीं फंसता । सूत्र धार स्त्री वेष धारी रुष को उसके मूल नाम से ही पुकारता है । पोषाक के कारण उसकी असलियत को हीं भुलाता । इसी प्रकार ज्ञानी जन पर्याय की तरफ न देखकर उसके भीतर रहे हुए द्रव्य

को देखते हैं। पुट्ठा बदल लेने से पुस्तक नहीं बदलती। '**एगे आया**' के सिद्धान्तानुसार सब आत्माएं समान हैं। अन्तर केवल पर्यायों और शरीरों का है। हमारी भूल का मूल कारण यही है कि शरीरों के अनित्य होने से हम आत्मा को भी अनित्य मानने लग जाते है। आत्मा नित्य है। शरीर अनित्य है। आत्मा को नित्य मानने पर पर्यायें अपने आप जुदा मालूम होंगी और अनित्य भी मालूम होंगी।

उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में यही बात बताई गई है। कल कहा था कि राजा श्रेणिक मगध देश का अधिपति था और प्रभूत रत्नों का स्वामी था। आगे कहा है कि:—

पभूयरयणोराया सेणिओ मगहाहिवा।
विहार जत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिंसि चेइये॥ २॥
नाणा दुम लयाइण्णं नाणा पक्खि निसेवियं।
नाणा कुसुम संच्छिन्नं उज्जाणं नंदणोवनं॥ ३॥

महाराजा श्रेणिक को सब रत्न मिले है मगर एक समकित रूप रत्न नहीं मिला है। तत्व ज्ञान नहीं हुआ है। वे इसकी खोज में है।

आपलोग समकितरत्नको बड़ा मानते हो या मिट्टीके बने रत्न को। एकपैसा खो जानेपर आपको जितनी चिन्ता होतीहै उतनी क्या समकितरत्नके खो जानेपर होतीहै। 'आपलोग हमगृहस्थ हैं' कहकर गिरनेके स्थानपर चलेभी चले जातेहैं। यहबात प्रत्यक्ष जानते हुए कि अमुकस्थान पर गिराहोंगेहै, आप लोग अर्थ लाभ या कीर्ति लाभ की कामना से चले जाते है। क्या कामदेव श्रावक गृहस्थ नहीं था? वह भी गृहस्थ ही था किन्तु उसके मन में समकित की कीमत इन रत्नों की अपेक्षा अधिक थी। आपके एक खीसे में रत्न हो और एक में कोड़ी। आप किस खीसे की अधिक संभाल करेंगे? यदि कोई कोडी वाले खीसे की अधिक संभाल करे तो आप उसे महा मूर्ख समझोगे। आप लोगों में यदि यह समझ आजाय कि समकित के रहते धन धान्यादि रहे तो भले रहे किन्तु समकित के जाते इनका रहना बेकार है, तो कितना अच्छा हो। धन धान्यादि और समकित दोनों में से यदि किसी एक के जाने का समय आवे तो धन धान्यादि को जाने देना चाहिये मगर समकित को न जाने देना चाहिये। शास्त्र में कहा है:— "**सदा परम दुल्लहा**" श्रद्धा परम दुर्लभ। दुःख इस बात का है कि ऐसे

समय पर कमजोरी आ जाती है और मनुष्य बाह्य संपत्ति की रक्षा का विशेष ध्यान रखता है। कामदेव श्रावक में यही विशेषता थी कि वह शरीर तक के जाने पर भी अपने धर्म से न डिगा। अडोल रहा।

श्रेणिक राजा को समकित रत्न मिल गया था अतः शास्त्र में उसकी भावी गति का वर्णन है। यदि समकित प्राप्त न होता तो न मालूम क्या गति लिखी जाती। और लिखी जाती या न लिखी जाती इसका भी पता नहीं। क्योंकि शास्त्रकार धर्म मार्ग पर आये हुए या आने वालों का ही शास्त्र में जिक्र किया करते है। प्रसंग से दूसरों का वर्णन आये यह दूसरी बात है। श्रेणिक को केवल समकित रत्न ही मिला था। श्रावकपन प्राप्त नहीं हुआ फिर भी वह भविष्य में पद्मनाथ नामक तीर्थंकर होगा। आपलोग धर्म क्रियाएं करते है किन्तु यदि दृढ़ श्रद्धा विश्वास के साथ करो तो मोक्ष के लिए उपयोगी होगी। बिना समकित या श्रद्धा के की हुई क्रियाएं ऐसी है जैसी कि बिना अंक वाली बिंदिया। बिना अंक वाली बिंदी किस काम की। क्रोध, मान, और लोभ को हल्का बनाकर अन्तरात्मा में जागृति लाओ और धर्म क्रियाएं करो तो आनन्द ही आनन्द है।

श्रेणिक राजा यद्यपि धर्म क्रियाएं न कर सका मगर वह तत्व का जिज्ञासु था उसकी रानी चेलना राजा चेडा की पुत्री थी, चेड़ा राजा के सात पुत्रियां थी। सातों ही सतियां हुई है। चेलना के रग रग में धर्म भावना भरी हुई थी। चेलना इस बात की फिक्र में रहती थी कि मेरे पति को कब और किस प्रकार समकित रत्न प्राप्त हो। कबस समकित धारी धर्मात्मा राजा की रानी कहाऊं। इधर श्रेणिक राजा यह सोचा करता था कि मेरी रानी यह धर्म का ढोंग छोड़ कर कब मेरे साथ मनमाने मौज मजा उड़ाये। दोनों की अलग अलग इच्छाएं थी। कभी कभी श्रेणिक की तरफ से चेलना के धर्म की मीठी परीक्षा भी हुआ करती थी। जो धर्म पर दृढ रहता है वह अपना सिर तक दे देता है मगर धर्म को नहीं छोडता। दोनों में धर्म सम्बन्धी चर्चा भी हुआ करती थी किन्तु वह चर्चा कभी क्लेश या मनमुटाव का रूप धारण न करती। दूसरे पर अपने धर्म का प्रभाव डालने के लिये बहुत नम्रता और सरलता की जरुरत होती है झगडे टटे से दूसरे पर हमारे धर्म का प्रभाव न पडेगा। हमारे आचरण ही ऐसे होने चाहिये कि जिन्हे देख कर सामने वाला हमारे धर्म को अपना ले। हमारे आचरण धर्म विरुद्ध हो और हम धर्म की बातें बघारते रहे तो कोई भी हमारे फन्दे में न फंसेगा। हमारा चरित्र ही जीता जागता धर्म का नमूना होना चाहिए।

चेलना के धर्म की परीक्षा करते करते एक बार श्रेणिक जिद्द पर चढ़ गया। एक महात्मा को देखकर चेलना से कहने लगा। देखो तुम्हारे गुरु कैसे हैं जो नीची नज़र रख कर चलते हैं। कोई मार पीट दे तो भी कुछ नहीं बोलते। मेरे राज्य में यह कानून है कि कोई किसी को मार पीट दे तो उसे सजा दी जाती है किन्तु ये तुम्हारे धर्म गुरु तो फरियाद ही नहीं करते। गुरु के कायर होने से उसके अनुयायी में भी कायरता आती है। हमारे गुरु तो वीर होने चाहिए। ढाल तलवार बांधकर घोड़े पर सवार होने वाले बहादुर व्यक्ति हमारे गुरु होने चाहिए।

चेलना ने उत्तर दिया कि मेरे गुरु कायर नहीं है किन्तु महान् वीर हैं। मैं कायर की चेली नहीं हूं। वीर की चेली हूं। मेरे गुरु की वीरता के सामने आप जैसे सौ वीर भी नहीं टिक सकते। आपके बड़े २ सेनाधिपतियों को भी काम देव जीत लेता है किन्तु हमारे गुरु ने इस काम देव को भी अपने काबू में कर रखा है। जो लाखों को जीतने वाला है उसको जीतने में कितनी वीरता की आवश्यकता होती है, इसका ज़रा विचार कीजिये। इनके सामने अप्सरा भी आजाय तो ये विचलित नहीं होते। यह बात तो एक बच्चा भी समझ सकता है कि जो लाखों को जीतने वाले को भी जीत लेता है वह कितना बहादुर होगा।

श्रेणिक राजा ने सोचा कि यह ऐसे मानने वाली नहीं है। इसके गुरु के पास एक वेश्या को भेजूं और वह उन्हें भ्रष्ट कर दे तब यह मानेगी। चेलना यह बात समझ गई कि इस वक्त धर्म की कठिन परीक्षा होने वाली है। वह परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि हे प्रभो! मेरी लाज तेरे हाथ में है। प्रार्थना कर के वह ध्यान में बैठ गई।

राजा ने वेश्या को बुलाकर हुक्म दिया कि उस साधु के स्थान पर जाकर उ आचरण भ्रष्ट कर आ। तुझे मुँह मांगा इनाम दिया जायगा। वेश्या बन ठन कर साथ कामोद्दीपक सामग्री लेकर साधु के स्थान पर गई। साधु ने स्त्री को अपने धर्म स्थान देख कर कहा कि खबरदार। यहां रात के समय स्त्रियां नहीं आ सकतीं। ठहर भी ना सकतीं। यह गृहस्थ का घर नहीं है। धर्म स्थान है।

वेश्या ने उत्तर दिया, महाराज आपकी बात वह मान सकती है जो आपकी भ हो। मैं तो किसी और ही मतलब से आई हूँ। मै आपको आनन्द देने आई हूँ। इ

कह कर वेश्या साधु के स्थान में घुस गई । साधु समझ गये कि यह मुझे भ्रष्ट करने आई है। यद्यपि मैं अपने शील धर्म पर दृढ़ हूँ तथापि लोकोपवाद का खयाल रखना जरूरी है। बाहर जाकर कहीं यह यों न कह दे कि मै साधु को भ्रष्ट कर आई हूँ । कथा में यह भी कहा है कि चेलना रानी ने इस बात की परीक्षा कर ली थी कि वह साधु लब्धिधारी हैं। उसने सब से कह रखा था कि कोई सच्चा साधु यहां न आये। ये साधु यहां आये थे अतः उसे विश्वास था कि वह लब्धि धारी हैं ।

महात्मा ने अपने प्रभाव से विकराल रूप धारण कर लिया । यह देख कर वैश्या घबड़ाई। कहने लगी, महाराज क्षमा करो। मै अपनी इच्छा से नहीं आई हूँ । मुझे तो श्रेणिक राजा ने भेजा है । मै अभी यहां से भाग जाती मगर बाहर ताला लगा है अतः विवशता है आप तो चींटी पर भी दया करने वाले हो। मुझ पर दया करो।

उन महात्मा ने अपना वेष दूसरा ही बना लिया था। शास्त्र में कारण वश वेष बदलने का लिखा है। साधु लिंग को बदलना अपवाद मार्ग में है। चरित्र की रक्षा तो उस समय भी की जाती है।

इधर यह कांड हुआ, उधर श्रेणिक ने चेलना से कहा कि जिन गुरु की प्रशसा तुम पुल बाध रही थी जरा मेरे साथ चलकर उनके हाल तो देखो। वे एक वैश्या को लिये बैठे है। रानी ने कहा बिना आंखो से देखे मैं इस बात को नहीं मान सकती। अगर सचमुच मेरे गुरु वेश्या को लिये बैठे मिलेंगे तो मै उन्हें गुरु नही मानूगी। मै सत्य की उपासिका हूं। राजा चेलना को लेकर साधु के स्थान पर आया और किवाड खोले। किवाड खुलते ही वह वेश्या इस प्रकार भगी जैसे पिंजड़े का द्वार खुलने पर पक्षी भागता है। भागते हुए वह वेश्या कह गई कि महाराज ! आप मुझ से दूसरे काम ले सकते है मगर ऐसे तप तेज धारी महात्मा के पास कभी मत भेजियेगा। मै इन की दया के प्रभाव से ही अपने प्राण बचा पाई हूं।

रानी ने यह बात सुनकर राजा श्रेणिक से कहा कि महाराज यह तो आप की करतूत मालूम पड़ती है। मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे धर्म गुरु ऐसा कभी नहीं कर सकते। चालिये उनके दर्शन करें। अन्दर सुविहित जैन वेषधारी साधु न थे किन्तु दूसरा वेष पहिने हुए साधु थे। रानी ने कहा मैं द्रव्य भाव दोनो दृष्टि से जो साधु होता है उसे

सच्चासाधु मानती हूं। ये रजोहरण मुखवस्त्रिका धारी नहीं है। अतः मेरे धर्म गुरु नहीं है। राजा बड़ा लज्जित हुआ। मन में विचारकिया कि रानी ठीककहती है। अब मुझे इस धर्मके तत्व जानने चाहिए। यहीं से राजा को जैन धर्मके तत्वो को जाननेकी रुचि जागृत हुई।

यद्यपि राजा श्रेणिक राज महलों में रहता था फिर भी जंगल की खुशनुमा हवा लेने के लिए जाया करता था। वह यह बात समझता था कि ताजा हवा के बिना ताजा जीवन नहीं बनता। शास्त्र में विहार यात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसी यात्रा होती है वैसा ही उसका फल भी होता है। धर्म यात्रा, धन यात्रा, शरीर यात्रा आदि जुदी जुदी यात्राओं का फल जुदा २ है। धर्म की यात्रा में धर्म की और धन की यात्रा में धन की रक्षा की जाती है। इसी प्रकार शरीर यात्रा का अर्थ शरीर की रक्षा करना है।

आज शरीर यात्रा के नाम से ऐसे काम किये जाते हैं कि जिनसे शरीर अधिक बिगड़ता है। आप लोग बाहर घूमने जाते हो मगर आपकी यह यात्रा कितनी निकम्मी और व्यर्थ होती है इसका जरा विचार करो। आज शहरों में बिना पाखाने के कोई मकान नजर नहीं आता जब कि पुराने जमाने में अच्छे अच्छे घरों में भी पाखाने न होते थे शक्तिकी कमीके कारण मैं यहां गोचरी के लिए नहीं निकला हूं मगर दिल्ली में मै गोचरी के लिए घूमा करता था। जहां कहीं भी गया पहले प्रवेश करते ही पाखाने के दर्शन होते थे बम्बई, कलकत्ता की इस विषय में क्या दशा होगी कहा नहीं जा सकता। एक मारवाड़ी भाई को यह गाते सुना है कि—

कलकत्ता नहीं जाना यारों, कलकत्ता नहीं जाना।
जहर खाय मर जाना यारों, कलकत्ता नहीं जाना॥
कल का आटा, नलका पानी, चर्बी का घी खाना॥ यारों कल० ॥

यह भाई कलकत्ते जाने का इतना विरोधी क्यों बन गया इसका कारण सोचिये आज वेजिटेबल घी चला है। गाय रखने में कई लोग पाप मानते हैं मगर वेजिटेबल घी खाने में पाप नहीं मानते। जीवन यात्रा को लोग भूल गये हैं। जीवन नष्ट करने की सामग्री बढ़ रही है।

राजा श्रेणिक जीवन यात्रा के कामों को नहीं भूला था अतः वह विहार यात्रा के लिए निकला है। बहुत से लोग कहते हैं, हम शास्त्र क्या सुने उसमें तो तप करके शरीर सुखाने की बातें ही लिखी हैं। मगर यह बात नहीं है। शास्त्रों में इह लोक और परलोक तथा शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति की बातें हैं। किसी शास्त्र विशारद गुरु से शास्त्र सुने जायं तब उनके ज्ञान खुलें। यद्यपि शास्त्रों का मुख्य प्रतिपाद्य विषय मुक्ति है। तथापि मुक्ति के लिए उपयोगी जिन जिन बातों की आवश्यकता होती है उनका विशद वर्णन शास्त्रों में है। आप लोग आम के फल खाते हो किन्तु फल बिना वृक्ष के नहीं होता। फल के लिए वृक्ष, डाली, पत्तों आदि पर भी ध्यान देना होगा। संवर और निर्जरा से ही आत्मा का कल्याण होता है यह बात ठीक है किन्तु इन से सम्बन्धित बातों पर भी शास्त्रकारों ने विचार किया है। शरीर धर्म करणी करने में मुख्य साधन है और इसीलिए राजा श्रेणिक विहार यात्रा घूमनेके लिये निकला है। ग्राम और शहरके भीतरी भाग की अपेक्षा उनके बाहर निकलने पर हवा बदल जाती है। ग्राम शहर की गन्दगी बाहर नहीं होती। शास्त्र में हवा के सात लाख भेद बताये गये है। प्रत्येक भेद के साथ प्रकृति का जुदा जुदा सम्बन्ध है। समुद्री हवा और द्वीपकी हवा का गुण अलग अलग है। इसी प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधोदिशा की हवाओं के गुण धर्म जुदा जुदा हैं और मनुष्य पशु पक्षियों पर उनका असर भी जुदा जुदा होता है। जो वायु विशारद होता है वह हवा का रुख देखकर भविष्य की बातें कह सकता है। बिना सोचे यह कभी न कह डालना चाहिये कि शास्त्रों में तो केवल मुक्ति का ही वर्णन है।

श्रेणिक राजा नगर से निकल कर विहार यात्रा के लिए मंडि कुक्षि नामक बाग में आया। शास्त्र के कथनानुसार वह बाग नन्दन वन के समान था। शास्त्र में उस के वृक्ष फल, फूल, पत्तों आदि का वर्णन है जो यथावसर बताया जायगा।

सुदर्शन—चरित्र

दास सुभग बालक अति सुन्दर गौएं चरावन हार।
सेठ प्रेमसे रखे नेम से, करे सालसंभाल ॥ धन ॥ ६ ॥

एक दिन जंगल में मुनि देखे, तन मन उपज्यो प्यार।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में, बिसर गया संसार रे। धन ॥ ७॥

कल बताया गया था कि सेठानी को पुत्र की चाहना थी। किन्तु पुत्र प्राप्ति लिए उन्होंने अपना धर्म कर्म नहीं छोड़ा था। धर्म पर कलंक लगे ऐसे काम नहीं किये अरणक श्रावक को धन की जरूरत थी अतः जहाज लेकर विदेश गया था। समुद्र में देव ने आकर उसे कहा कि अपना धर्म छोड़ दे अन्यथा जहाज डूबो दूंगा। अरणक जहाज डूब जाना मंजूर किया मगर धर्म न छोड़ा। पहले के श्रावक धर्म पर दृढ़ रहते थे।

जिनदास सेठ के यहां गौएं भी थी। वह उन की रक्षा और पालन, पोषण अपने शरीर के रक्षण पोषण की तरह करता था। गायों के लिए प्राचीन भारतीयों कैसी दृष्टि थी यह बात सब जानते हैं। कृष्ण महापुरुष थे, यह बात सबको मंजूर है। कृ स्वयं हाथ में डण्डा लेकर गायें चराया करते थे। गायों का महत्त्व समझने के लिए बात बड़े महत्त्व की है।

श्री उपासक दशांग सूत्र में वर्णित दशों श्रावकों के यहां हजारों की तादादमें गा थीं। उनका जीवन गौओं की सहायता के बिना नही चल सकता था। विवाह में गोदान दिया जाताथा। गौ के बिना जीवन पवित्र नहीं रह सकता। अमेरिका निवासी लो गौ की उपयोगिता समझ गये हैं। गो शब्द का अर्थ पृथ्वी भी होता है। पृथ्वी जैसे स का आधार है वैसे गाय भी मनुष्य जीवन का आधार है यह बात ध्यान में रख कर गा का नाम भी गो रखा गया है। पुष्टि कारक घी और दूध दही गाय से ही मिलता है आज हम कितने पतित हो गये है कि ऐसे महान् उपकारक पशु की रक्षा करने में असमर्थ बन गये है।

जिस दास ने अपनी गायों की देखभाल करने के लिए सुभग नामक एक गवा पुत्र को रखा। सुभग को जिनदास आत्म तुल्य मानता था। सुभग प्रतिदिन गायोंको जंग में चराने लेजाता और संध्या को वापस ले आया करता था।

आज गायों के लिए गोचर भूमि की चिन्ता कौन करें। वकील लोग अन्य कामों के लिए तय्यार हो जाते है मगर इस काम के लिये कौन तय्यार हो। वकील लोग गाये रखते ही नहीं अतः उन्हे क्यों चिन्ता होने लगे। जो लोग गाये रखते है। उन्हे फरियाद नहीं करना आता और जिन्हे अपने हक्को की रक्षा के लिये फरियाद करना आता है वे गाये ही नहीं रखते। आज गोचर भूमि की बहुत तंगी हो रही है और इससे गोधन कमजोर हो रहा है। कुछ समय पहिले तक जंगल प्रजा की चीज माना जाता था। प्रजा को उसमें पशु चराने और लकड़ी आदि लाने का अधिकार था। अबतो जगलात कानून लागु हो गया है अतः गायों को खड़ी रहने के लिये भी जगह नहीं है।

सेठ जिनदास सुभग के खाने--पीने ओढ़ने बिछाने आदि का खयाल रखते थे। उसे शीतताप और वर्षा से बचाने का भी वे प्रबन्ध करते थे। मुसलमानी मज़हब में कहा गया है कि जिस गृहस्थ के घर में मनुष्य या पशु--पक्षी दुःखी हों वह गृहस्थ पापी है। अपने आश्रित प्राणियों के सुख दुःख का खयाल रखना परम कर्त्तव्य है। आजकल पोशाक, फर्नीचर, मोटर और घोड़ागाड़ी आदि की जितनी सम्भाल रखी जाती है उतनी अपने आश्रित मनुष्यों और पशुओं की नहीं रखी जाती। आश्रितजनों को क्या क्या कष्ट हैं, उनके कुटुम्ब का भरण पोषण ठीक तरह से होता है या नहीं आदि बातों का ध्यान यदि मालिक लोग रखा करें तो आपसी सम्बन्ध मीठा हो जाय।

प्रेम के जरिये किसी से काम लेना अच्छा तरीका है। मारपीट कर जबरदस्ती काम लेना बेहुदा तरीका है। मारपीट कर किसी को नहीं सुधारा जा सकता। खुद के लड़के को भी मारपीट कर नहीं सुधारा जा सकता, यह बात अब लोग समझने लग गये है। पढ़ाने लिखाने के लिए लडकों को मारना पीटना अब अच्छा नहीं माना जाता। स्कूलों और पाठशालाओं मे इसकी मुमानियत होती जा रही है।

पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि मनुष्य को न तो पानी की तरह अति नम्र होना चाहिये और न पत्थर के समान कठोर ही। किन्तु बिकानेरी मिश्री के कुंजे के समान होना चाहिये। मिश्री को यदि कोई सिर में मारे तो उसे चोट लगेगी और खून आ जायगा। लेकिन यदि कोई मिश्री को मुख में रखेगा तो वह पानी-पानी होकर मिठास देगी, मनुष्य को भी व्यवहार में ऐसा ही बनना चाहिए।

जिनदास, सुभग के साथ इसी प्रकार का वर्ताव करता था। वह उसे सुधारने का प्रयत्न करता था। सुभग भी उसे अपने पिता के समान मानता था और कभी कभी जिनदास को धर्म क्रियाएँ करते हुए देखा करता था। वह अभी धर्म के समीप नहीं आया है। एक दिन वह जंगल में गायें चरा रहा था कि वहां एक महात्मा को वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठे हुए देखा। महात्मा और सुभग का संगम किस प्रकार हुआ यह बात अवसर आने पर बताई जायगी। अभी तो यह ध्यान में रखा जाय कि महात्माओं के दर्शन से कैसा चमत्कारिक असर होता है। मनुष्य का कुछ का कुछ बन जाता है।

राजकोट
१४—७—३६ का
व्याख्यान
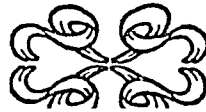
वृक्षों की उपयोगिता
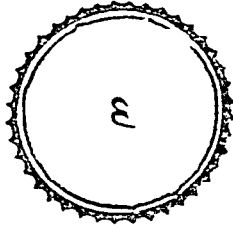
"श्री आदिश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिरनामी तुम भणी........"

यह प्रार्थना प्रथम तीर्थ कर भगवान् ऋषभदेव की है। प्रार्थना करने का अभ्यास कम ज्यादा मात्रा में संसार के सब प्राणियों को है। प्रभु प्रार्थना, ईश-प्रार्थना, पारमार्थिक प्रार्थना, सब प्रार्थनाओं में उत्कृष्ट प्रार्थना है। यदि प्रभु प्रार्थना सबसे उत्कृष्ट वस्तु है तो इसमें सबसे उत्कृष्ट तत्व का विचार होना चाहिये। हर एक मनुष्य किसी न किसी वस्तु का ग्राहक जरूर होता है किन्तु जो रत्न का ग्राहक होता है वह उत्कृष्ट माना जाता है। परमात्मा की प्रार्थना करने वाले के भाव भी उच्च होने चाहिए। हम लोग इस बातपर विचार करें कि कैसे भाव रख कर ईश प्रार्थना करें। क्या इच्छा लेकर प्रार्थना करें। इच्छायें भी बदलती रहती हैं। अतः निरीह और निर्विकार होकर प्रार्थना करनी चाहिए। पहले अशुभ इच्छाओं का त्याग करके शुभ इच्छायें पैदा करना चाहिए। बादमें और भी शुभ इच्छाओं को भी

मिटाकर निरीह-इच्छा रहित शुद्ध इच्छा वाले बनने की कोशिश करना चाहिए। अशुभ से शुभ में और शुभ से शुद्ध में प्रवेश करना चाहिए। शुद्ध इच्छा से प्रार्थना करने वाला व्यक्ति परमात्मा के निकट पहुँचता है।

भगवान् आदिनाथ की प्रार्थना अनेक कला से की गई है। पानी का किसी भी प्रकार सुधार किया जाय। वह अनादि कालीन ही रहेगा। इसी प्रकार प्रार्थना, किसी भी कला से की जाय वह नई नहीं कही जा सकती। यह बात अलग है कि प्रार्थना करने वालों कि रुचि भिन्न हो और इससे प्रार्थना की भाषा में भी भिन्नता हो। पहले मागधी में प्रार्थना की जाती थी। मागधी से फिर सस्कृत में प्रार्थना होने लगी और अब हिन्दी भाषा में प्रार्थना हो रही है। रुचि के अनुसार भावों और भाषा में परिवर्तन अवश्य हुआ है मगर प्रार्थना पुरातन ही है प्रार्थना में कहा गया है।

मो पर मेहर करिजे हो, मेटीजे चिन्ता मन तणी।
मारा काटो पुराकृत पाप॥

हे प्रभो! मैं अनेक लोगों की शरण में गया मगर मेरे मन की चिन्ता नहीं मिटी। तथा मेरी आशा भी पूरी नहीं हुई। मेरे मन की चिन्ता कायम है अतः मैं तेरी शरण आया हूं। तू मेरी आशा पूर और चिन्ता चूर। भगवान् से आशा पूरी करने की प्रार्थना की जा रही है किन्तु क्या आशा पूरी कराना है यह भी समझलें। आप लोग साधुओं के पास जाते हैं। कौन-सी आशा पूरी कराने के लिए जाते है? क्या धन दौलत, स्त्री, पुत्र कीर्ति आदि की आशा लेकर जाते हैं। ऐसी आशा तो साधुओं के यहां पूरी नहीं होती अतः ऐसी आशा से उनके पास जाना वृथा है।

परमात्मा संसार के वातावरण से परे है अतः उससे सांसारिक कामना पूरी कराने की प्रार्थना करना व्यर्थ है। परमात्मा से यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभो! हमें आशा रहित बनादे। हमारी कामना मात्र खतम हो जाय। हमें संकल्प विकल्प करते अनन्त काल हो गया है अतः अब संकल्प विकल्प मिटादे। भगवन्! तू मेरी यह आशा पूरी कर कि मुझ में आशा ही न रहे।

कोई मनुष्य जब पानी में डूब रहा हो तब वह राज्य लेना पसन्द करेगा अथवा नौका। जो संसार समुद्र को पार करना चाहेगा वह तो परमात्मा की चरण शरण रूप नौका

लेना ही पसद करेगा। उसे राज्य से क्या मतलब । आप भी भगवच्चरण शरण की प्रार्थना करिये ।

मनुष्य सच्ची प्रार्थना कब कर सकता है यह बात शास्त्र द्वारा बताता हू । सिद्धान्त में कहा है कि किस तत्त्व को जान लेने के बाद सच्ची प्रार्थना होती है। सम्यक्त्व रूप तत्त्व का बोध होने पर सच्ची प्रार्थना होती है। श्रेणिक राजा को किसी बात की कमी न थी। वह जिसकी तरफ निगाह डाल लेता था सामने वाला अपने को धन्य मानता था। ऐसे श्रेणिक राजा से भी महामुनि अनाथी ने अनाथ होना स्वीकार करा लिया। आप नाथ होने का अभिमान मत करो।

राजा श्रेणिक विहार यात्रा के लिए नगर से बाहर निकला। प्रकृति के नियमों का पालन और रक्षण करना आवश्यक है। ऐसा करने से आगे उन्नति होती है। श्रेणिक ७२ कलाओं में निपुण था। तदुपरान्त शरीर शास्त्र, नीति शास्त्र, अर्थ शास्त्र और भौतिक शास्त्र विशारद अनेक लोग उसके दरबार में रहते थे। फिर भी वह विहार यात्रा के लिए मंडी कुक्ष बाग में गया। वह बाग अनेक वृक्षों से परिपूर्ण था। जिसमें अनेक वृक्ष हो, शास्त्रकार उसे बाग कहते है। वृक्ष और लता में यह अन्तर है कि वृक्ष अपने आधार पर खड़ा रहता जब कि लता दूसरे के आधार से ऊपर की ओर फैलती है। दोनों फूल-फल देते हैं। वृक्ष और लता से जो युक्त हो वह बाग कहा जाता है। वृक्षों के साथ लता होना आवश्यक है।

कोई भाई यह प्रश्न कर सकता है कि मोक्ष मार्ग बताने वाले इस प्रकरण में शास्त्रकार ने बाग का क्यों वर्णन किया। शास्त्रकार जीवनोपयोगी वस्तुओं को नही भूले थे। हम कर्त्तव्य च्युत हो रहे हैं। बौद्ध साहित्य में यह बात पाई जाती है कि बुद्ध ने एक बार जब कि वे गया के जगल में गये थे कहा था हम योगियों के भाग्य से ही जंगल हरा भरा पड़ा है। यदि जंगल न होता तो हम योगियों की आत्म साधना में बड़ी कठिनाई होती। योग लेने पर भी योगी जंगल का महत्त्व नही भूलते। बड़े २ जंगलों में ही बडे २ सिंह पैदा होते है। वृक्षों से सिंह नहीं जन्मते मगर वृक्षों में उनका भरण पोषण होता है। रेतके पहाड़ों में सिंह नही उत्पन्न होते। मतलब यह है कि जीवन के लिए आवश्यक बातें न बताकर केवल मोक्ष की बातें ही बताना आकाश के फूल बताने के समान है। वृक्ष और लताए हमारे जीवन के लिए भाई बन्धुओं के समान उपयोगी हैं। वैज्ञानिकों का तो यहां तक कथन है कि भाई बन्धु और मित्रों से भी वृक्षों की आवश्यकता अधिक है। वृक्षों की

सहायता से हमारा जीवन टिक रहा है। मनुष्य के शरीर में से कारबन हवा निकलती है वि
में बहुत जहर होता है। यदि यह ज़हरीली हवा बनी रहे, वृक्ष उसे न खींचें तो मनु
मर जायें। इस कारबन हवा को वृक्ष खींच लेते हैं। उनके लिए यह अनुकूल है। प्रकृ
की कुछ विचित्र रचना है कि जो चीज मनुष्य के लिए जहर है वही चीज वृक्ष के लि
अमृत होती है। वृक्ष उस कारबन हवा को पचा कर आक्सीजन हवा छोड़ते हैं। मनु
जीवन आक्सीजन हवा के आधार पर टिका हुआ है।

वृक्ष की इतनी उपयोगिता होते हुए भी कुछ भाई कहते हैं कि वृक्षों की क्या जरू
है, बड़ा आश्चर्य होता है। पहले के लोग वृक्ष की आत्मीयजन के समान रक्षा करते थे
किसी बड़े वृक्ष को काटना महान् पाप समझा जाता था। यदि वृक्ष कट जाता तो उ
बड़ा दुःख होता था। जो जहर लेकर बदले में अमृत प्रदान करता हो उसकी दया
करना महान् कृतघ्नता है।

महाभारत में वृक्ष को अजात शत्रु कहा है। यानी वृक्ष का कोई शत्रु नहीं है
वृक्ष किसी को अपना शत्रु नहीं मानता। जो उसे पत्थर मारता है उसे भी वह फल देता
और जो कुल्हाड़ा मारता है उसे भी अपना सर्वस्व [illegible] है। बदले में कोई वस्तु न
मांगता। अहा! वृक्ष के समान उपकारी कौन है [illegible] भी [illegible] का उचि
[illegible] नहीं किया जा[illegible]

वृक्षों के वर्णन के बाद शास्त्र में कहा है कि उस बाग में अनेक पक्षी रहते थे। इस कथन से जाहिर है कि उस समय आज के समान पाक्षियों की हत्या नहीं हुआ करती थी। आज पंखों के लिए पक्षियों की हत्या की जाती है। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि यूरप और अमेरिका के लोगों की शिकार प्रियता के कारण अनेक पक्षी-कुल-नष्ट कर दिए गये हैं। आधुनिक सुधार और फैशन ने क्या २ नहीं किया। क्या आप यह प्रतिज्ञा कर सकते हैं कि जिन चीजों में पाक्षियों के पंखों का उपयोग हो वे काम में न लायेंगे। अनेक बुद्धिमान लोगों ने उन वस्त्रों को त्याग दिया है जिनकी बनावट में हिंसा होती है। जैसे रेशमी और चर्बी लगे वस्त्र। क्या आप इतना भी न कर सकेंगे।

उस बाग में नाना प्रकार के पक्षी स्वतंत्रता और आनन्द पूर्वक निर्भय हो कर बैठते, खेलते, कूदते और नाचते थे। जहां पक्षी भी निर्भय होकर बैठ सकते हैं वहां समझना चाहिये कि दया है। पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज कहा करते थे कि जब मैं टोंक राज्य छोड़ कर जयपुर राज्य में आया तब मेरा मन प्रसन्न हुआ। वहां मुझे पाक्षियों की चां-चूं सुनाई दी। टोंक राज्य में शिकार करने का प्रचार अधिक होने से पाक्षियों का दर्शन दुर्लभ था। पाक्षियों से भी मानव जीवन को लाभ पहुँचता है यह बात आप क्या जानो। आप को क्या मालूम कि हीरा कैसे पैदा होता है। यह कहावत है कि जिस देश में बड़े रत्न पैदा होते हैं उसी देश में महापुरुष भी पैदा होते हैं। गंगा नदी और हिमालय जैसे पर्वत भारत देश में ही हैं। यही कारण है कि यह देश महा पुरुषों की खान है। प्रकृति की जैसी रक्षा की जाती है वैसी ही वह फल भी देती है।

वह मंडीकुक्ष बाग फूलों से छाया हुआ था। अनेक प्रकार के सुगन्धित फूलों की महक चारों ओर उड़ रही थी। आजकल लोग महक के लिए सेंट लगाते हैं। उन्हें भारतीय इत्र भी पसन्द नहीं है। उनको यह पता नहीं है कि सेंट में मिली हुई ब्रांडी दिमाग में जाकर कितना नुकसान करती है। भारतीय होकर भारत की वस्तुओं पसन्द न करना और विदेशी वस्तुओं के पीछे पड़े रहना कितना घातक है। आप लोग अनेक प्रकार के तेलों का इस्तेमाल करते हो किन्तु कभी यह नहीं सोचते कि ये किस प्रकार तय्यार किये गये हैं। जिन चीजों से तेल बना है वे हमारी प्रकृति के अनुकूल हैं या प्रतिकूल यह जानना चाहिए। आज का पोशाक ही ऐसा है कि जिसके लिए तेल लवेंडर और साबुन आदि की जरूरत पड़ती है। फूलों की गरदन मरोड़ कर उनमें से इत्र निकलना प्रकृति से वैर करना है। प्रकृति के साथ ऐसा वर्ताव करने के कारण ही आजकल नये नये रोग पैदा हुए हैं। और डाक्टर भी

बढ़े हैं। डाक्टरों की वृद्धि होना अच्छा चिह्न नहीं है। वास्तविक चीजें नष्ट की जा रही हैं और भ्रष्ट वस्तुएं उन का स्थान ले रही है।

इत्र और सेंट के लिए बड़े २ पाप होते हैं। उनके उपयोग से मन और बुद्धि में विकृतियाँ पैदा होती हैं। किन्तु जंगल या बगीचे की प्राकृतिक खुशबू में दोष नहीं होते, यदि मैं अपने कान में इत्र का पुम्बा (रुई में लगा इत्र) रखलूं तो आप लोग क्या कहोगे। साधु मानने से भी इन्कार कर दोगे। किन्तु प्राकृतिक सुगन्ध हवा के द्वारा हमारे नाक में प्रवेश करे उसमें किसे क्या एतराज हो सकता है? इत्र लगाना यानी कुदरत से लड़ाई करना है। फूलों से अपने आप जो सुगन्ध निकलती है वह प्राकृतिक है। अनाथी मुनि बाग में बैठे हैं। उनके लिए कोई यह नहीं कह सकता कि वे मौजमजा लेने के लिए बैठे हैं। वह बाग इतना सुन्दर था कि नन्दन बन के लिए भी उस की उपमा दी जाती थी। आध्यात्मिक साधना में प्रकृति बड़ी साधक है।

उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंहजी कहा करते थे कि बुद्धि का घर आराम है। जब आराम हो तभी बुद्धि पैदा होती है। आराम का स्थान शहर ही नहीं है। शहर के बाहर एकान्त स्थान में जाकर देखने से पता लगेगा कि वहां कितना आराम और कैसी बुद्धि खिलती है। आप लोग केवल नगरवासी मत बन जाओ। आप लोग केवल नगर में रहते हो अतः हम साधुओं को भी नगर में आना पड़ता है। ग्रामों की अपेक्षा नगर में विकार ज्यादा पैदा हो गये है। उनके सुधार के लिये हमें भी शहरों की खाक छाननी पड़ती है। मेरा मतलब यह नहीं है कि आज ही आप लोग शहर छोड़दे। किन्तु वास्तविक जीवन स्रोत कहां है यह बात ध्यान में रखिये। मुझे दया, पौषध और सामायिक आदि धर्म कार्य बहुत प्रिय हैं फिर भी मैं उनके विषय में अधिक भार न देकर शरीर और आत्मा के कल्याण के लिये भार इसलिये देता हूं कि बिना शरीर स्वस्थता के धर्म कार्य ठीक तरह से नहीं हो सकते। धर्म को पवित्र रखने के लिये ही मै शरीर धर्म पर भार देता हूं।

सुदर्शन चरित्र।

जीवन का सुधार कैसे होता है यह बात सुदर्शन के चरित्र से बताता हूं:—

एक दिन जंगल में मुनि देखी तन मन उपज्यो प्यार।
खड़ा सामने ध्यान मुनि में निसर गया संसार रे। धन० ॥ ७ ॥

गगन गये मुनिराज मंत्र पढ़ बालक घर को आया।
सेठ पूछते मुनि दर्शन के सभी हाल सुनाया रे। धन० ॥८॥

सुभग बालक गायें चराते हुए नित्य प्रकृति से नया पाठ पढ़ा करता था। आप कहेंगे ज्ञान तो पुस्तकों मे भरा पड़ा है प्रकृति से क्या पाठ सीखता होगा। लेकिन यह बात नहीं है। प्रकृति जीती जागती पुस्तिका है। उससे वह ज्ञान मिलता है जिससे मनुष्य महान् बन सकता है। प्रकृति रूपी पुस्तिका क्या क्या शिक्षा देती है यह बात अभी समयाभाव से नहीं कही जाती। केवल बात बताता हूं। जब जंगल में कोई झरना बहता है और कल कल ध्वनि करता है तब महा पुरुष उस ध्वनि से बहुत शिक्षा लेते हैं। वे सोचते हैं कि अहा! यह झरने की कल कल ध्वनि मेरे सोते हुए हृदय तारों को जागृत कर रही है। यदि मैं भी ऐसा ही बन जाऊं तो क्या अच्छा हो। यह ध्वनि सदा समान रूप से चालू रहती है मैं यहां नहीं आया था तब भी यह ध्वनि चालू थी। वर्तमान में भी चालू है और भविष्य में भी चालू रहेगी। चाहे कोई राजा आओ चाहे कोई रंक, चाहे विद्वान चाहे मूर्ख। सब के लिए समान रूप से आवाज करती है। यह सब अवस्थाओं में समान रहती है। झरने को कोई गाली दे या प्रशंसा करे सब को अपनी मधुर तान से आनंदित करता है। यह अपना शब्द नहीं बदलता। महापुरुष मन में विचार करते है कि इस झरने के समान हम भी यदि एक रस रहें, वैश्या के समान अपना रूप न बदला करें तो आत्म कल्याण हो जाय। यह झरना एक धार से बहता रहता है। हम समय समय पर धारा बदलते रहते हैं। आज किस धारा से काम कर रहे है और कल किस धारा से करेंगे पता नहीं है। झरना एक तीसरा गुण भी सीखाता है। यह अपना सब बल किसी बड़ी नदी को दे देता है। उस बड़ी नदी में मिलकर समुद्र में लय हो जाता है। अपनी हस्ती को महान् समुद्र में मिला देता है। अपना नामो निशान मिटा देता है। इसी प्रकार हम भी किसी महापुरुष की संगत करके परमात्म रूपी समुद्र में अपने आप को मिला दें, अपने व्यक्तिगत अहंत्व को महान् ईश्वर में लय कर दें तो कितना उत्तम हो। एक झरने से ज्ञानी जन इतनी शिक्षाए ले सकते हैं तो जंगल की अन्य अनेक वस्तुओं के सम्बन्ध में क्या कहना।

सुभग जंगल में जाकर प्रकृति से बहुत बातें सीखता था। वह आधुनिक ढंग से गाना बजाना और पढ़ना—लिखना न जानता था किन्तु प्राकृतिक रचना का रसिक था।

प्राकृतिक दृश्य देख कर आनन्द मानता था। बादलों के उतार चढ़ाव से जीवन के उतार चढ़ाव की कल्पना करता था। वह प्रकृति से प्यार करता था अतः प्रकृति भी उसकी सहायता करती थी। प्रकृति मनुष्य की क्या सहायता करती है यह बात बहुत कम लोग जानते हैं। मनुष्य को अच्छी समझदार स्त्री अथवा पुत्रादि मिलते हैं यह प्रकृति की ही कृपा है। पूर्व पुण्य के प्रभाव से ही ऐसा होता है।

प्रकृति सुभग के लिए क्या करती थी यह नहीं कहा जा सकता मगर जो कुछ आगे हुआ है उसे देख कर यह कहा जा सकता है कि उसने पुण्यानुबन्धी पुन्य बांधा था जिससे जंगल में एक महात्मा से उसकी भेंट हो गई। आप लोग वेश्या को पैसों के बल पर घर बुला सकते हो मगर कोयल को नहीं बुला सकते। उसकी मधुर तान सुनने के लिए वन में ही जाना पड़ेगा। अन्य लोगों को कहीं भी बुलाया जा सकता है मगर महात्माओं को हर कही नहीं बुला सकते। वे स्वेच्छा से ही जहाँ चाहें जाते हैं।

एक तपोधनी महात्मा उस वन में वृक्ष के नीचे आगये और ईश्वर ध्यान में लीन हो गये। वे महात्मा कैसे थे। कहा है—

ज्ञान के उजागर सहज सुख सागर सुगुन रतनागर विराग रस भर्यो है।
शरण की रीति हरे मरण को न भय करे करन सौं पीठि दे चरन अनुसर्यो है॥
धर्म को मंडन मर्म को विहडन है परम नरम हो के कर्म से लर्यो है।
ऐसे मुनिराज भुवलोक में विराजमान निरखी बनारसी नमस्कार कर्यो है॥

महात्माओं को ज्ञान उजागर नहीं करता मगर वे ज्ञान को उजागर करते है। वे शास्त्र को सुशास्त्र बनाते हैं, जगत् को तीर्थ बनाते हैं। वे सहज सुखी हैं। किसी का सुख हरण करके वे सुखी नहीं होते। न कोई उनका सुख हरण ही कर सकता है। इन्द्र में भी यह ताकत नही है कि वह महात्माओं का सुख छीन सके। आप पूछेंगे कि सहज सुख कैसा है। आप सहज सुख को जानते हो मगर अभी उसे भूले हुए हो। मान लो एक आदमी के पास खाने पीने और ऐश आराम की सब सामग्री मौजूद है किन्तु किसी ने कह दिया कि एक सप्ताह बाद तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। खान पान और भोग विलास से मिलने वाला उसका सुख उसी क्षण काफूर हो जायगा! यदि इन वस्तुओं में सुख ... तो इनके होते हुए भी सुख कैसे हवा हो गया। अतः मानना पड़ेगा कि वस्तु

जन्य सुख वास्तविक सुख नहीं है। वास्तविक सुख सदा एक समान रहता है। महात्माओं को यदि कोई कह दे कि आपकी मृत्यु संनिकट है तो उन्हें बडा आनन्द होता है।

मरने से जग डरत है सो मन बड़ो अनन्द।
कब मरिहौं कब भेटिहौं पूरण परमानन्द॥

महात्मा सहज सुखी है। उन का आनन्द उनके भीतर होता है। बाह्य वस्तु पर उनका आनन्द अवलम्बित नही होता। इन्द्रिय-विषय विकास में सुख नहीं है, सुखाभास है, भ्रम है।

महात्मा लोग गुण के भंडार और वैराग्य के सागर होते है। जो वैरागी है, वह न किसी की शरण मे जाता है और न किसी से भय खाता है इन्द्रियों के व्यवहार को जीत कर चारित्र का पालन करता है। महात्मा जहां जाते हैं वहां धर्म का मंडन ही होता है भले वे मौन ही क्यों न रहते हो। उनका जीता जागता चेहरा ही धर्म का मण्डन करता है। वे मिथ्यातम का नाश करते है। चुप नहीं बैठे रहते किन्तु सदा दुष्कर्मों से लड़ाई करते रहते है जिस प्रकार कुत्ता घर से परिचित होजाने के कारण वार वार घर आया करता है इसी प्रकार काम क्रोध लोभ आदि विकार परिचित होने के कारण बारबार मन में आया करते है मगर महात्मा सदा जागरूक रहते है उनको मन में स्थान ग्रहण नही करने देते। हमारे मन में सद् भाव जागृत हो गया है अत: श्वानवत् विकारी भावों का अब गुजारा यहा नहीं हो सकता। साथ ही नग्न बन कर कर्मनाश करते है। कर्म नाश नग्न हुए बिना नही होता।

आजकल लोग मुनियों को नमस्कार करते हुए ऐसे खड़े रहते हैं मानो उनकी कमर ही अकड़ गई हो । यह भी कहते हैं कि नमन करने में क्या रखा है । उन अकड़बाज भाइयोंसे मैं पूछना चाहता हूँ कि किसी साहबबहादुर के द्वार पर जाकर उन्हें नमन न करो तो वे नाराज हो जायंगे । उनकी नाराजी आप सहन नहीं कर सकते । दूसरी बात उनको नमन करने में सभ्यता मानते हो । पैसे की गुलामी के लिए नमन करने में शर्म नहीं लगे और गुणवान् महात्माओं को नमन करने में शरम लगे यह कितनी आश्चर्य की बात है ।

मुनि को वन्दन करके सुभग सामने खड़ा है । मुनि की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिला रहा है । मुनि की तरह वह भी ध्यान में डूब गया । वह इस बात को भूल गया कि मैं कहा हूँ और मेरी गायें कहां हैं । ध्यान के प्रताप से क्या होता है यह बात यथावसर बताई जायगी ।

राजकोट
१८—७—३६ का
व्याख्यान

जन्म भूमि की महत्ता

६
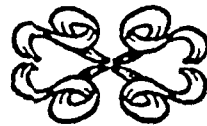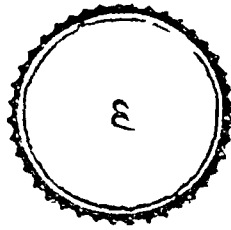
"श्रीजिन अजित नमो जयकारी, तू देवन को देवजी........।"

भक्त परमात्मा को किस रूप में देखता है? वह परमात्मा की अनन्य भाव से भक्ति करता है। जिसकी प्रार्थना की जाय उसे सर्वोत्कृष्ट मानना, उसके गुणों पर मुग्ध हो जाना जो उसकी निन्दा करे उसके प्रति उदासीनता रखना अनन्य भक्ति का लक्षण है। जो आराध्य की निन्दा करता है उसके साथ किसी प्रकार का द्वेष भाव न रखे न उस पर क्रोध करे। इस प्रार्थना में अनन्य भक्ति बताने के लिए ही कहा गया है—

दूजा देव अनेरा जग में, ते मुज दाय न आवे जी।
तहमने तहवचने हमने तू ही अधिक सुहावेजी ॥ श्री० ॥

इस कथन पर पूरी तरह विचार करने से आपको अनन्य भक्ति की बात समझ में आ जायगी और प्रार्थना का मर्म भी ज्ञात हो जायगा। यह बात विस्तार पूर्वक समझा-

जितना समय नहीं है। थोड़ा कहता हूं—

प्रार्थना करने वाला भक्त कहता है कि मुझे तू (अजितनाथ) ही पसन्द है दूसरा कोई देव मुझे पसन्द नहीं है। इस पर से यह प्रश्न उठता है कि क्या अन्य दे में शक्ति या सामर्थ्य नहीं है जिससे वे पसन्द नहीं पड़ते। अन्य देवों से सांसारिक कामों जैसी सहायता मिलती है वैसी श्रीअजितनाथ तीर्थङ्कर से नही मिलती। वे वीतराग है अ संसार व्यवहार की बातों में हमारे मदद गार नहीं हो सकते। इस प्रश्न का विशेष वि एक प्रकार का चमत्कार मालूम होगा किन्तु अभी समय नहीं है। इस प्रश्न का उत्तर वि पतिव्रता स्त्री से पूछा जाय। उसे अपना पति ही क्यों पसन्द है।

रावण के यहां किसी सांसारिक सुख की कमी न थी। उसकी लंका सोने की थी। दूसरी ओर राम वन में रहते थे। वल्कल वस्त्र धारण करते थे, वन्य फल फूल पर अपना गुजारा चलाते थे और ज़मीन पर सोते थे। सीता ने राम को क्यों पसन्द किया? रावण को पसन्द क्यों नहीं किया? आधुनिकलोगोंका साजोसामान की वस्तुओंके प्रति आक· र्षण अधिक है अतः ऐसा प्रश्न उठता है कि ऐश्वर्य को छोड़कर सादगी को क्यों पसंद किया गया था। सांसारिक पदार्थों के प्रति राग भाव न हो तो ऐसा प्रश्न ही खड़ा न हो। सीता का रावण के साथ कोई द्वेष भाव न था। रावण, राम से स्नेह तुडवाकर अपने प्रति जुडवाना चाहता था। इसी कारण वह उससे नाराज थी।

भक्त कहते है, जो दूसरे देव परमात्मा से हमारा नेह तुडवाते है वे हमें पसन्द नहीं है। सीता भी यही कहती थी कि जो राम से मेरा नाता तुड़ाना चाहता है वह मुझे प्रिय नहीं है। जो राम के साथ स्नेह जुड़ाता है वह मुझे अति प्रिय है जैसे जटायु पक्षी और त्रिजटा राक्षसी।

भक्त लोग माया के ठाट बाट की तरफ नहीं देखते अत: सांसारिक पदार्थों का आकर्षण होते हुए भी अन्य देवों से प्रेम नहीं करते। शंका कांक्षा आदि पांच दोष इसी लिए बताये गये हैं कि कहीं भक्त संसार की माया में फंसकर दूसरे देवों को न मानने लग जाय। पहले के श्रावकों के जीवन चारित्र की तरफ ध्यान देगें तो आप अनन्य भक्ति का

सकते। मगर प्रयत्न करो, कुछ तो उनका अनुकरण करो। बालक अक्षर जमाने के लिए अपने सामने अच्छे अक्षर रखते हैं। यद्यपि वे तादृश अक्षर नहीं लिख सकते तथापि वैसेही हरूफ लिखने की कोशिश करते हैं। और कोशिश करते करते कभी तादृश अक्षर और उनसे अच्छे भी लिखने लग जाते हैं। यही बात चित्रकार के विषय में भी है। आप प्राचीन श्रावकों का आदर्श सामने रखकर आगे बढ़िये।

आनन्द श्रावक था। उसके पास सम्पत्ति थी। वह हमारा आदर्श कैसे हो सकता है। उसने सर्वथा निवृत्ति मार्ग अंगीकार नहीं किया था। साधारण श्रावक के लिए उत्कृष्ट श्रावक आदर्श हो सकता है। इस में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती। अंतिम मंजिल तो मुक्ति ही है यह बात ठीक है मगर बीच की सीढ़ियां जब तक कि उन पर न चढ़ा जाय तब तक के लिए आदर्श हो सकती है। कुटुम्ब का मोह छोड़े बिना यदि आनन्द निवृत्ति मार्ग को ग्रहण कर लेता तो वह कहीं का न रहता। वह क्रामिक विकास का मार्ग पकड़े हुए था। भगवान् ने भी उसे साधु बनने का उपदेश नहीं दिया किन्तु बारह व्रत धारण करने का उपदेश दिया था।

आजकल तो बारह व्रतों के अर्थ में भी संकुचितता आगई है। आनन्द के यहां चालीस हजार गायें थी फिर भी वह श्रावक था। भगवान् का अनन्य भक्त था। प्रवृत्ति मार्ग में रह कर भी भक्त भगवान् की अनन्य भक्ति कर सकता है। जिसे कर्तव्य अकर्त्तव्य का वास्तविक भान होता है। वह सच्ची भक्ति कर सकता है। आनन्द श्रावक के पास चालीस हजार गायें थीं। गायें अधिक न बढ़ने का यह कारण मालूम पड़ता है कि जिसकी उसे सहायता करनी होती थी उसे वह गायें ही देता था। पैसे देकर मनुष्यों को आलसी न बनाता था। जब तक स्वयं कुटुम्ब न छोड़ दिया जाय तब तक दूसरे कुटुम्बों का रक्षण करना और उन्हें सुखी बनाने का प्रयत्न करना श्रावक का नैतिक कर्त्तव्य है। कुटुम्ब की ममता त्यागे बिना अन्य प्राणियों की दया छोड़ देना अनुचित है। निवृत्ति क्रमशः होती है। अनधिकार चेष्टा से किसी को लाभ नहीं हो सकता।

निवृत्ति कैसी हो यह बात महानिर्ग्रन्थ के चरित्र से बताता हूं। कल बताया गया था कि मंडिकुक्ष बाग फूलों से छाया हुआ था और मेरु पर्वत पर स्थित नन्दनवन के समान था। देवों का वर्णन करते हुए नन्दन वन भले बड़ा मान लिया जाय किन्तु एक दृष्टि से [illegible] तो नन्दन वन मंडिकुक्ष बाग से छोटा था। एक दृष्टान्त से यह बात समझाता हूं।

एक राजमहल है जिसमें संगमरमर की फरसी लगी हुई है। दीवालों पर चित्रादि चित्रित है। सब सजावट से सुसज्जित है। दूसरी ओर एक खेत है जिसमें काली मिट्टी है। राजमहल और खेत दोनों में से आप किसे पसन्द करेंगे। दोनों में से कौनसी वस्तु आपके लिए अधिक उपयोगी है। यदि आपको कुछ दिन के लिए राजमहल में रख दिया जाय तो अच्छा लगेगा किन्तु साथ में यह शर्त लगादी जाय कि जब तक राजमहल में रहोगे खेत से निपजने वाली कोई वस्तु वहां न दी जायगी। शायद आप ऐसी अवस्था में एक दिन भी रहना पसन्द न करोगे। इसके विपरीत यदि आपसे कहा जाय कि आपको खेत से उत्पन्न सब वस्तुएं दी जायंगी मगर रहना झोंपड़े में पड़ेगा। आप झोंपड़े में रहना पसन्द कर लेंगे क्योंकि खेत के बिना निर्वाह नहीं हो सकता है। राजमहल का व्यामोह दुःख देने वाला है।

नंदन वन और मन्डीकुक्ष के विषय में यही बात लागू है। नंदन वन देवों के मन बहलाव के लिए है। वहां मनुष्यों के जीवन के लिए उपयोगी सामग्री नहीं है। मंडीकुक्ष बाग में फलफूल आदि हैं जिनसे हमारे शरीर को पुष्टि मिल सकती है। पक्षी भी फलादि खाकर आनन्दित होते थे तो मनुष्य अवश्य उससे लाभ प्राप्त करते थे। पक्षी फलों के पहले परीक्षक हैं। आक का फल बंदर और पक्षी नहीं खाते। अतः मनुष्य भी उसे नहीं खाते। एक बात और है। जो पशु पक्षी फल खाते हैं अर्थात् फलाहारी है वे मांस नहीं खाते। मनुष्य कैसा प्राणी है जो फल भी खाता है और मांस भी खा जाता है। बंदर फलाहारी है अतः मांस नहीं खाता। पर मनुष्य ने फलाहार की मर्यादा का उल्लंघन कर दिया है। क्या अधिक बुद्धि मिलने का यह दुरुपयोग नहीं है।

मंडीकुक्ष बाग से सब को पोषण मिलता था लेकिन नंदन वन के लिए यह बात नहीं है। यही कारण है कि मंडीकुक्ष बाग में तपोधनी मुनि बैठे हैं और भगवान् के चौमासे भी हुए हैं मगर नंदन वन में क्या कोई साधु मिल सकता है। अतः नंदन वन की अपेक्षा मण्डीकुक्ष बड़ा ठहरता है। आप लोग स्वर्ग का सुन्दर वर्णन सुन पढ़ कर ललचा मत जाइये। आपका राजकोट बड़ा है या स्वर्ग? राजकोट में धर्म की जो जागृति हो सकती है वह स्वर्ग में नहीं हो सकती। स्वर्ग में मुनि नहीं मिल सकते मगर आपके यहां मुनियों का ठाट लग रहा है।

कहा जाता है कि गोपिकाओं की भक्ति से प्रसन्न होकर इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग में लिवा लाने के लिए विमान भेजा। गोपियों ने क्या उत्तर दिया सो सुनिये—

ब्रजवालो म्हारे वैकुण्ठ नथी आवो ।
त्यां नन्द नो लाल क्यां थी लावो ॥ ब्रज ॥

गोपियों ने कहा स्वर्ग में नन्दलाल श्री कृष्ण नहीं हैं अतः हमें वहां आना पसंद हीं है । विमान लाने वालों ने कहा कि अरी तुम क्या पागल हो गई हो जो स्वर्ग में आने मना कर रही हो । वहां रत्नों के महल हैं और इच्छा करने मात्र से ही पेट भर जाता । तुम्हारे व्रज में दुष्काल का भय रहता है और अनेक प्रकार के दुःख भी मौजूद हैं । ोपियों ने कहा कि पहले यह बताओ कि तुम विमान लेकर हमें लेने के लिए किस कारण आये हो । हमारे किस शुभ कार्य से प्रेरित होकर यहां आये हो । नन्दलाल की भक्ति प्रेरित होकर ही यहां आये हो । तुम्हीं बताओ कि नन्दलाल की भक्ति बड़ी चीज़ है या र्ग । स्वर्ग में नन्दलाल की भक्ति नहीं हो सकती अतः हम वहां आना नहीं चाहती । म भक्ति का विक्रय करना नहीं चाहती । तुम्हारा स्वर्ग हमारे व्रज से बड़ा होता तो वहां न्दलाल ने जन्म क्यों नहीं लिया । गोपियों के उत्तर से देव चुप हो गये और उनकी क्ति और श्रद्धा की प्रशंसा करते हुए आकाश में चले गये ।

आप लोग भी यदि स्वर्ग को बड़ा मानों तो क्या वहां साधु श्रावक मिल सकते ? । क्या वहां तीर्थंकर जन्म धारण कर सकते हैं । यहां रहकर धर्म की जैसी साधना की ा सकती है वैसी वहां नहीं हो सकती ।

मुसलमानों की हदीसों में कहा है कि अल्लाने दुनिया बनाकर फरिश्तों से कहा के तुम लोग इन्सानों की इनायत करो । उनकी बन्दगी करो । इस हुक्म के अनुसार सब रिश्ते इन्सानों की बन्दगी करने लग गये मगर एक फरिश्ते ने इस हुक्म का पालन नहीं केया । उसने अल्ला से कहा कि आप ऐसी क्या आज्ञा देते हैं । कहां हम फरिश्ते और हाँ इन्सान । इन्सान खाक का बना है अतः नापाक है हम पाक हैं । अल्लामियां ने सको फटकार दी और बन्दगी के लिए हुक्म दिया । इन्सान की बन्दगी फरिश्ते भी करते ; अतः इन्सान बड़ा है ।

आप लोगों के लिए राजकोट बड़ा है । राजगृही नगरी भी नहीं है राग की ष्टि से दोनों एक है । कमी इस बात की है कि यहां अनाथी मुनि जैसे मुनि नहीं हैं । गर श्रेणिक जैसे श्रोता भी तो नहीं है । साधु और श्रावक दोनों साधारण कोटि के हैं ेर भी स्वर्ग से आपका राजकोट बढ़कर वो है क्योंकि स्वर्ग में साधारण कोटि के साधु

श्रावक भी नहीं होते। आप लोग इस सुअवसर से लाभ उठाइये। स्वर्ग के लिए अपनी धर्म करणी को बेंच मत डालिये। निष्काम होकर धर्म कर्म करिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि निष्काम कर्म हजार गुना फल देता है।

आपका विवाह हो चुका है। आपकी श्रीमती यदि कहे कि मैं रोटी बनाती हूं अतः बदले में कुछ दीजिये तो आप अपनी स्त्री से क्या कहेंगे। आप यही कहेंगे कि क्या तुम मेरे यहां किराये पर आई हो। जब स्त्री को आप यह-उत्तर देते हैं तब भगवान् से किसी प्रकार की मांग करना कितना बेहुदापन है।

मीराबाई से किसी ने पूछा कि तुम्हें राणा प्रिय क्यों नहीं लगते उसने उत्तर दिया कि:—

संसारी नो सुख एवो, झांझवानो नीर जेवो।
तेने तुच्छ करी फरीये रे मोहन प्यारा॥

संसार का सुख तुच्छ है। मुझे भगवान् अति प्रिय हैं। राणा एक जन्म के साथी बन सकते है। मैं ऐसे साथी की खोज में हूं जो कभी साथ न छोड़े।

मैंने शांकर भाष्य देखा तो उसमें भी यही बात देखने को मिली संसार के जीव मृगजल के समान भुलावे में पडे हुए हैं। सूर्य की किरणें रेत पर गिर कर ऐसा भ्रम पैदा करती हैं मानों पानी भरा पड़ा हो। बेचारा मृग पानी की लालसा से दौड़ता जाता है मगर कहीं पानी नहीं मिलता। और आगे दौड़ लगाता है मगर उसकी इच्छा पूरी नहीं होती। यही हाल संसार के लोगों का है। उनकी इच्छायें कभी पूरी नहीं होती। मीराबाई इस तत्त्व को समझ गई थी अतः सांसारिक सुखों के भ्रम जाल में न फंसी। एक साथ दो घोडों पर सवार नहीं हुआ जा सकता परमात्मा की भक्ति और विषयवासना दोनों साथ नहीं चल सकते। विषय वासनाओं का ममत्व त्यागे बिना ईश्वर भक्ति असभव है।

कहने का मतलब यह है कि न तो स्वर्ग से यह भूमि कम है और न मंडीकुक्ष बाग नन्दन वन से कम है। फिर आप स्वर्ग की प्रशंसा और इच्छा क्यों कर करते है।

अमेरीकन डाक्टर थोरे जो कि महान् आध्यात्मिक विद्वान था। एक दिन अपने शिष्य के साथ जंगल में गया। शिष्य ने प्रश्न किया कि स्वर्गभूमि बढ़ी है या यह भूमि।

ने उत्तर दिया कि जिस भूमि पर तू पैर देकर खड़ा है और जो तेरा वलन उठा रहा है
से यदि स्वर्ग भूमि को बड़ी मानता है तो तुझे यहां खड़ा रहने का भी अधिकार नहीं
। आम लोगों का कल्याण भी इसी भूमि पर होने वाला है। स्वर्ग के गुण गान करना
मोह है।

दर्शन चरित्र-

अब तक मैं बगीचे की बात कर रहा था जिसे श्रेणिक राजा ने बनवाया था।
ब जंगल की शोभा देखिये और उस पर विचार कीजिये हमारे यहां के जंगल की समता
स्वर्ग नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति जंगल से स्वर्ग को बड़ा मानता है तो उसका
र्थ इतना ही है कि जैसे नाटक में पाउडर लगाई हुई स्त्री में चमक अधिक दिखाई देती
वस्तुतः उसमें उतनी चमक दमक नहीं होती। नाटक में सांग करने वाली स्त्री और
र की स्त्री में जितना अन्तर है उतना ही स्वर्ग और वन में है। नाटक सीनेमाओं की नटी
ड़ी देर के लिए है। वह मोह पैदा करती है और जीवन को जंजालमय बना देती है।
उके विपरीत घर की स्त्री स्वदार संतोष व्रत सिखाती है। खुद भी शील का पालन
रती है।

सुभग ग्वाले को ऐसे सुन्दर जंगल में ही महात्मा मिले है। जिन्हें इन्द्र नरेन्द्र भी
न्दन करते हैं ऐसे महात्मा जंगल में मिले हैं। भारत के जंगल का ऐसा अनुपम प्रताप
। इससे बढ़कर स्वर्ग को उत्तम मानना कितनी भूल है। पेरिस शहर की बड़ी तारीफ
नते हैं। राजकोट के साथ उसकी तुलना कीजिये कि कौन अच्छा है। जहां आत्म साधना
ो वह अच्छा है।

मुनि को देखकर सुभग बहुत खुश हुआ और हाथ जोड़कर सामने खड़ा रहा।
मुनि के प्रति वह इतना आकर्षित हो गया कि सब सुध बुध भूल गया। जैसे लोह चुम्बक
े आकर्षित होता है। परमात्मा का आकर्षण भी लोह चुम्बकवत् है मगर हम लोहा बनें
ब परमात्मा हमें आकर्षित करे। सुभग को प्राकृतिक शिक्षा मिली थी। विकारी शिक्षा
का स्पर्श भी उसे नहीं हुआ था। वह लोहा बना हुआ था अतः पारस के समान मुनि का
स पर कैसा प्रभाव पड़ा है सो देखिये।

किस प्रकार मन से मुनि के सामने ध्यानमुद्रा में खड़ा है। योग शास्त्र का कथन
है कि अपने मन का प्रभाव दूसरे पर डाला जा सकता है। मिस्मेरिज्म योग की एक तुच्छ

किया है। उसके प्रभाव से भी आदमी इतना कठोर बना दिया जा सकता है कि लोहे के धन की मार भी वह सह सकता है। मेस्मेरेजम का प्रभाव स्त्री और बालक पर अधिक पड़ता है। भोले सुभग पर भी मुनि के योग का प्रभाव पड़ा और वह सब कुछ भूल गया वह समाधि में लीन हो गया। शाम होने का भी उसे खयाल न रहा।

गगन गये मुनिराज मंत्र पढ़, बालक घर को आया।
सेठ पूछते मुनि दर्शन का, सभी हाल सुनाया रे धन ॥ ८ ॥

ध्यान पूरा होते ही वह महात्मा नवकार मंत्र पढ़कर आकाश में उड़ गये। भगवती सूत्र में जंगाचारण विद्याचारण मुनियों का जिक्र है। मुनि को आकाश में उड़ते हुए देखकर सुभग चिल्लाने लगा ओ महात्मा ओ महात्मा। मगर वे निस्पृह महात्मा कब रूकने वाले थे। जिस प्रकार सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल बन्द हुए बिना नहीं रहता उसी प्रकार समय हो जाने से वे महात्मा उड़कर चले गये। महात्मा चले गये मगर उनका उच्चारण किया हुआ नमो अरिहन्ताणं मंत्र उसे याद रह गया। वह सोचने लगा कि इस अरिहन्ताणं मंत्र के प्रभाव से ही वे आकाश में उड़ सके हैं जिनके प्रभाव से आकाश में उड़ा जा सकता है वह मंत्र कैसा होगा। अवश्य बहुत शक्ति शाली होगा।

इस प्रकार विचार करते हुए संध्या होजाने का उसे भान आया। वह गायों को खोजने लगा। संध्या समय घर जाने का रोजमर्रा का अभ्यास था अतः गायें घर पहुंच गईं। किन्तु सुभग को आया हुवा न देख कर सेठ जिनदास को चिन्ता हुई। आज क्या बात हुई जो जिनदास नहीं आया है। उस पर कोई विपत्ति तो नहीं गुजरी अथवा कोई ठग उसे ललचा कर कहीं ले तो नहीं गया है। सेठ बडा व्याकुल हुआ और इधर उधर घूमता हुआ उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

जो आदमी केवन अपने स्वार्थ का ही खयाल करता है वह अपने स्वार्थ का भी नाश करता है और जो दूसरों पर उपकार करता है वह अपना भी भला करता है सेठ सुभग के लिए चिन्ता क्या कर रहा था, अपने यहां पुत्र का आह्वाहन कर रहा था।

इतने में सुभग घर पर आया। सेठ ने उसे गले लगा लिया और पूछने लगा कि आज इतनी देरी से कैसे आये। सुभग भी दौड़ता और घबड़ाया हुआ आया था कि पिताजी मेरी चिन्ता करते होंगे। सेठ को देखकर वह भी बहुत प्रसन्न हुआ। कहने लगा पिताजी

आज जंगल में बड़ा आनन्द आया। आज मैंने जंगल में एक महात्मा को देखा। उनका मैं क्या वर्णन करूं। मेरे में इतनी शक्ति नहीं है। वे मुझे इतने प्यारे लगे जितना बछड़े को गाय लगती है। मै उन्हें देखकर अपने आप को भूल गया। उनके चेहरे से अनन्त शांति झरती थी। मैं उनपर मुग्ध बन गया। सेठ कहने लगा तुझे धन्य है जो ऐसे महात्मा के दर्शन हुए। यदि अभी वहीं पर हो तो मैं भी चलूं और दर्शन करूं। लड़के ने कहा अब वे वहां कहां हैं वे तो अरिहन्ताणं कह कर आकाश में उड़ गये।

लड़के की बातें सुनकर सेठ उसकी सराहना करने लगे और धन्यवाद देने लगे। कोई काम खुद से न बन सके तो कम से कम उसके करने वाले की प्रशंसा तो करनी ही चाहिए। पौषध में बैठे हुए सुबाहु कुमार ने कहा था 'वे लोग धन्य हैं जो भगवान् की वाणि सुनते हैं'। वे धन्य हैं जो संयम लेते हैं। आप से यदि अच्छा काम न बन पड़े तो उसके करने वाले की प्रशंसा तो जरूर करिये। इससे लाभ है।

सुभग सुदर्शन का ही जीव है। उसको धन्य कहना सुदर्शन के शील को धन्य कहना है। अथवा यों कहिये कि आत्मा को ही धन्य बनाना है। दूसरों के गुणों को देख कर प्रसन्न होना यह हृदय की विशालता प्रकट करता है। बहुत से लोग इतने ईर्षालु प्रकृति के होते है कि वे दूसरों के द्वारा किए हुए अच्छे कामोंको सहन नहीं कर सकते और भीतर ही भीतर जलते रहते है। इससे उनको खुद को ही नुकसान है।

सुभग और जिनदास की बातें आगे यथावसर बताई जांयगी। आज इतना ही भाव कहा। जो अच्छाई को गृहण करेगा उसका भला है।

राजकोट
१६—७—३६ का
व्याख्यान

फूल और लेश्या का समन्वय

१०
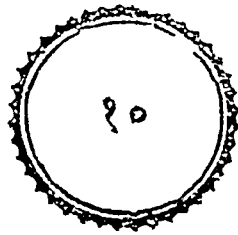
आज म्हारा संभव जिनजी का हित चित से गुण गास्यां राज। प्रा०।

परमात्मा की प्रार्थना करते वक्त कैसी भावना रखनी चाहिए यह बात मैं बारंबार कहता हूं और आप लोग सुनते हो। इस प्रार्थना में कहा गया है—

तन, मन, धन, प्राण समर्पी प्रभु ने इन पर वेग रिझास्यां राज।

परमात्मा की प्रार्थना कुछ लेने के लिए नहीं करना चाहिए मगर देने के लिए करना चाहिए। परमात्मा से प्रार्थना करना कि हे भगवान्! यह दो वह दो अथवा अमुक इच्छा पूरी करो स्वार्थी प्रार्थना है। इसके विपरीत यह चाहना करना कि हे प्रभो! मैं तेरी प्रार्थना इसलिए करता हूं कि मुझ में तन मन धन और प्राण तक दूसरों के लिए न्यौछावर

रने की शक्ति आजाय, सच्ची और निस्वार्थ प्रार्थना है। हे भगवान्! मुझे ऐसा बल ीजिये कि मैं अपनी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, कौटुम्बिक या अन्य समस्त शक्तियाँ ारे समर्पित करदूं।

लेने में सुख मानने वाले लोग जगत् में बहुत हैं। किन्तु चन्द लोग ऐसे भी हैं ो देनों में राजी होते हैं। ऐसे भी कई व्यक्ति हो गये हैं जिन्होंने स्वयं भूखा रह कर ूसरों को भोजन खिलाया है। दूसरों के प्राणों की रक्षा करने के लिए अपने प्राणों का ालिदान करने वालों की भी कमी नहीं है। मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिए अपना ारा शरीर तक दे डाला था। मोहम्मद साहब के लिए कहा जाता है कि वे एक फाखता े लिए अपने गाल का मांस काट कर देने के लिए तैय्यार हो गये थे। महाभारत में राजा शिवी और रन्तीदेव की कथा है। राजा रन्तीदेव चालीस दिन से भूखा था। जब वह भोजन रने के लिए बैठा तब एक चाण्डाल चिल्लाता हुआ आया कि मै भूखों मर रहा हूं। रन्ती-देव ने अपना भोजन उसे देदिया। इस प्रकार देकर राजी होने वालों की संख्या भी कम नहीं है। दूसरों को कुछ भी देना निस्वार्थ भाव से देना परमात्मा को ही देना है। नम्रीभूत ोकर देना चाहिए अभिमान से नहीं देना चाहिए। देते देते कभी आप महापुरुष बन ायंगे।

शास्त्र के साथ व्यावहारिक बातों का भी जिक्र करना पड़ता है। शास्त्र-कथन का उद्देश्य आत्मा में जागृति लाना है। जागृति जिस प्रकार से हो उस प्रकार से उपदेश देने की आवश्यकता होती है। दो दिन से मंडीकुक्ष बाग का वर्णन किया जा रहा है और संभव है कि आज का दिन भी इसी में लग जाय।

फूलों से छाये हुए उस बाग में अनाथी मुनि आये हुए थे। वहीं पर राजा श्रेणिक की उन से भेंट हुई थी। इस कथन में बहुत कुछ रहस्य भरा है। कोई पूर्ण पुरुष ही पूरी तरह वर्णन कर सकता है। मैं अपूर्ण हूं अतः मेरा वर्णन भी अपूर्ण होगा।

फूल और मनुष्य का कैसा निकट का सम्बन्ध है यह बात वैज्ञानिक जानते हैं। ैं वैज्ञानिक नहीं हूं किन्तु वैज्ञानिकों के विचार सुनकर तदनुसार कुछ कहना चाहता हूं। ुझे जो लगा है इसके विरुद्ध यदि कोई बतायेगा तो उसे मानने को मैं तय्यार हूं।

फूलों में अनेक रंग होते हैं। वैज्ञानिकों के कथनानुसार रंग की विभिन्नता सूर्य की किरणों से सम्बन्ध रखती है। सूर्य किरणों से ही फूलों में तरह तरह के रंग आते हैं। इस

पर प्रश्न होता है कि सूर्य किरणें सब फूलों पर समान रूप से पड़ती हैं फिर विभिन्न क्या कारण है। वैज्ञानिक उत्तर देते हैं कि किरणों को ग्रहण करने में विभिन्नता है रंगों में भी विविधता है। जो फूल सूर्य किरणें ग्रहण कर के स्वयं में से अधिक से त्याग करता है वह सफेद बनता है जो कुछ कम त्याग करता हैं वह गुलाबी होता है उससे भी कम त्याग करता है वह पीला होता है। इसके बाद लाल रंग होता है। जो ज्यादा है और त्यागता कम है वह हरा होता है। जो फूल सूर्य की किरणों को खा है त्यागता कुछ भी नहीं वह काला होता है। जो अधिक से अधिक त्याग करता सफेद और जो कुछ भी त्याग नहीं करता वह काला होता है। काला रंग किरणों के जाता है, यह बात फोटो के केमेरे पर काला कपडा डाला जाता है, इससे भी सिद्ध होता काला कपड़ किरणों को भीतर नहीं पहुंचने देता जिससे फोटो अच्छा आता है।

मंडीकुक्ष बाग में फूलो का वर्णन करके शास्त्रकार ने यह बतलाया है कि ि को ग्रहण करने और त्याग ने का तारतम्य क्या है। जैन शास्त्रों को किसी अभ्यासी गु समझा जावे तो मालूम होगा कि उनमें क्या क्या सामग्री भरी पड़ी है। आज के पोथिया पंडित बन जाते हैं और कहने लगते है कि जैन शास्त्रों में कुछ नहीं है। वा में ऐसे लोगों ने शास्त्र समझने का प्रयत्न ही कब किया है। केवल पोथियां पढलेने से ज्ञान नहीं होता। ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी योग्य गुरु की शरण लेना चाहिए एक कवि कहता है—

पढ़ के न बैठे पास अच्छर बांच सकै,
बिना ही पढ़े कहो कैसे आवे फारसी।
जौहरी के मिले बिन हाथ नंग लिए,
फिरो, बिना जौहरी वाको संशय न टारसी।
वैद हू के मिले बिन बूंटी को बतावे कौन,
भेद बिन पाये वाकी औषध है छारसी।
सुन्दर कहत मुख रंच हू न देख्यो जाय,
गुरु बिन ज्ञान जैसे अन्धेरे में आरसी॥

पुस्तक में अक्षर लिखे हैं मगर गुरु के बताये बिना फारसी भाषा कैसे आ सकती है। हाथ में नग है मगर बिना जौहरी की सहायता के उस की कीमत कैसे आंकी जा सकती है। बूंटियां तो अनेक हैं मगर किसी अनुभवी वैद्य की सहायता के बिना उनका तत्त्व कैसे समझा जा सकता है। बिना गुरु के ज्ञान प्राप्त करना वैसा ही है जैसा अंधेरे में कांच लेकर मुँह देखना। आज कल लोग पुस्तकों से ही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। पुस्तकों के नाम से बहुत सारा गंदा और घासलेटी साहित्य भी प्रचलित हो गया है। प्रत्येक बात गुरु मुख से समझी जाय तो भ्रम में पड़ने का कोई कारण नहीं है।

जैन शास्त्रों में अनेक स्थान पर लेश्याओं का जिक्र है। लेश्या दो प्रकार की है —१ द्रव्य लेश्या २ भावलेश्या। लेश्यताति लेश्या। जैसे गोंद दो कागजों को चिपकाता है वैसे आत्मा और कर्मों को जो चिपकाती है वह लेश्या है किसी आचार्य के मत से योग प्रवृत्ति भी लेश्या है। अर्थात् मन वचन और काया की प्रवृत्ति लेश्या है। किसी के मत से **"कृष्णादि द्रव्य साचिव्यादात्मनः परिणाम विशेषः लेश्या"** कृष्णादि द्रव्यों के संयोग से आत्मा में जो परिणाम विशेष होताहै वह लेश्या है। द्रव्य भाव दोनों लेश्याएं छः२ प्रकार की हैं।

१ शुक्ल लेश्या २ पीत लेश्या ३ तेजो लेश्या ४ कापोत लेश्या ५ नील लेश्या ६ कृष्ण लेश्या। शुक्ल का रंग सफेद होता है। पीत का पीला, तेजो का लाल, कापोत का बैंगनी, नील का नीला और कृष्ण का काला होता है।

अब हमें फूल और लेश्या का साम्य समझना है। यह आत्मा प्रकृति से कुछ न कुछ ग्रहण करता ही है। हवा, पानी, गरमी आदि प्राकृतिक पदार्थों की सहायता के विना आत्माका निर्वाह नहीं हो सकता। जैसे फूल किरणे लेताहै वैसे आत्मा भी प्राकृतिकसहायता लेता है। जो आत्मा जितनी सहायता लेता है उसकी अपेक्षा अधिक त्याग करता है वह शुक्ल लेश्या वाला है। कई आत्मा स्वार्थ में इतनी रची पची रहती है कि अपने स्वार्थ के सामने वे दूसरों का खयाल ही नहीं कर सकती। किन्तु कई आत्मा परमार्थ में इतनी मशगूल रहती है कि उन्हें अपने प्राणों का भी ध्यान नहीं रहता। सब से अधिक परमार्थ करने वाला शुक्ल लेश्या धारी होता है और जो केवल लेना ही जानता है देना कुछ नहीं जानता वह कृष्ण लेश्या धारी है।

वर्ण के समान लेश्या में गन्ध, रस और स्पर्श भी है कोई कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति को सूंघकर यह पता नहीं लगा सकता कि इसमें अमुक लेश्या है। इसका पता लगाने का साधन जुदा है। मन का फोटो लिया जाता है मगर साधारण केमेरे से नहीं। उसके साधन जुदा हैं। द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या का परस्पर सम्बन्ध है अतः द्रव्य लेश्या के समान भाव लेश्या को भी समझना चाहिए।

जैसे फूलों में सुधार किया जाता है वैसे लेश्या में भी सुधार होसकता है। आप भी अपनी लेश्या को सुधारने का प्रयत्न कीजिये। वस्त्र और खानपान के साथ भी लेश्या का सम्बन्ध है। भगवान महावीर ने साधुओं के लिए सफेद वस्त्रों का विधान किया है। यह बात रहस्य पूर्ण है। आधुनिक राष्ट्रीय पोषाक भी सफेद ही पसद किया गया है। रंग के साथ भावों का सम्बन्ध है स्वाभाविक रंग से स्वाभाविक भाव पैदा होते हैं। भगवान ने खानपान के विषय में भी विधि बतलाई है। कौनसी वस्तुएं खाने योग्य है और कौनसी नहीं खाने योग्य है इसका विस्तृत विलेचन है। बहुत से भाई कहते हैं कि जीव रहित पदार्थ खाने योग्य हैं। किन्तु केवल जीव रहित होना ही भोजन की उपयुक्तता नहीं है। कि भोजन से कैसी प्रकृति बनती है यह मुख्य बात है। गीता में तामसी राजसी और सात्विक भोजन का विस्तृत वर्णन है। विकारी निर्विकारी आहार का वर्णन जैनागमों में भी है तमोगुणी पदार्थों को जैनागमों में विगय अर्थात् विकृति कहा गया है। जो साधु आचार्य उपाध्याय के दिये बिना ऐसा आहार करता है उसे दण्ड आता है। दूध दही घी शक्कर आदि में जीव नहीं है मगर ये विगय हैं। खाने पर नियन्त्रण रख कर अपनी प्रकृति सतोगुणी बनाने से लेश्या में भी सुधार होता है।

आजकल बहुत से लोग लाल शरबत पीते हैं जो शराब का ही रूपान्तर है। कुरान हदीसों मे भी कहा है कि जो वस्तु बुद्धि में विकार पैदा करती हो वह न खानी पीनी चाहिए। वह हराम है। देशकाल के अनुसार खाने पीने की वस्तुओं में थोड़ा परिवर्तन हो सकता है। मैने कुरान में पढ़ा है कि अल्ला ने जमीन और आसमान बनाकर इन्सान के खाने के लिए फल और वृक्ष बनाये। इससे मालूम पड़ता है कि इन्सान का आहार फलादि है। मांस आदि नहीं। सब समझदार लोगोने मांस खाने का निषेध किया है और कहा कि अपने पेट को किसी की कबर मत बनाओ।

सारांश यह है कि खान पान और पहनने का भावों परिणामों के साथ सम्बन्ध है
ग्तः इस पर पूरा कण्ट्रोल रखना चाहिये ।। हमारे पूर्वजों ने संयम पर इसी कारण भार
ःया है। आज कल केंडी फैशन चली है। फैशन से बड़ी हानि है । जैन सामायिक में
पड़े उतार कर बैठते हैं और मुसलमान नमाज पढते वक्त सादे कपड़े पहनते हैं। इस में
ही रहस्य है खादी और विलायती कपड़ों में भी अन्तर है। खादी सादगी की पोषाक है
ब कि विलायती कपड़े अभिमान के। जिसकी आदत ही खराब हो वह बुरी वस्तु को भी
च्छी मानता है गांधीजी की लिखी आरोग्य तत्त्व दर्शक पुस्तक में देश विशेष के लोगों
ारा विष्ठा खाने का जिक्र है। अमुक देश के लोग विष्ठा खा जाते हैं। एतावता विष्ठा भक्ष्य
हीं हो जाता। जयपुर के भंगी टट्टी को सड़ाकर उसमें उत्पन्न कीड़ों का रायता बनाकर
ड़ी खुशी से खा जाते हैं। पनवेल में मछलियों की दुर्गन्ध से मैं हैरान था मगर सुना कि
छली खाने वाले इन्हें बड़े शोक से खाते हैं। खाने वाले खाये मगर बुरी वस्तु बुरी ही
हेगी। खान पान पर विचार कीजिये जिससे आपके खयालात भी सुधरे। आपके भावों में
हान् गुण उत्पन्न हो ऐसी कोशिस कीजिये। आत्मा के सुधार के लिए खान पान का सुधार
प्रावश्यक है। श्रेणिक राजाने मडीकुक्ष बाग का सुधार करवायाथा वह पूर्ण चौकसी रखताथा
के बाग के फल फूलों में दोष न आने पायें। आत्मा का सुधार तो अनाथी जैसे महात्माओं
की कृपा से ही हो सकता है। जो अपनी लेश्या सुधार रहा है देवता भी उसे नमन करते हैं।

देवावि तं नमंसन्ति जस्सधम्मेसयामणो ।

जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं। आत्मा
में देवों को झुकाने की भी शक्ति मौजूद है।

सुदर्शन चरित्र-

अब सुदर्शन का चरित्र सुनाया जाता है । किस प्रकार भावों में शुद्धता लाकर
आत्म कल्याण किया जा सकता है ।

प्रमुदित भावे सेठ कहे, धन मुनि दर्शन जो पाया।
अपूर्ण मंत्र को पूरण करके, शुद्ध भाव सिखलाया रे ॥ धन० ॥९॥

मुनिराज ने सुभग को कोई प्रत्यक्ष उपदेश नहीं दिया था । सुभग ने उनकी
[illegible] देखकर तथा मंत्र सुनकर कुछ ग्रहण कर लिया था। जिनदास सेठ सुभग को धन्य-

वाद देता है। तेरा अहो भाग्य है जो तूने ऐसे लब्धीधारी मुनि के दर्शन किये हैं। जो बात घर बैठे नहीं होती वह जंगल में हो गई है। यदि मुझे श्रीकृष्ण द्वारा गौएं चराने का महत्त्व ज्ञात होता तो मैं खुद गायें चराने आता और ऐसे महात्मा के दर्शन करता। इस वक्त गोरक्षा के काम भुलाये जा रहे है। बल्कि बहुत से लोग ऐसे कामों में बाधक भी होते हैं। एक भाई ने गोरक्षा के लिए भूमि दान किया था। उसके मर जाने के बाद उसके वारिस ने कहा कि भूमि दान मरने वाले के साथ मर गया। अब उस भूमि का मैं मालिक हूं। मुकद्दमा चल रहा है। वकीलों की बन आई है। अच्छे काम के लिए दान की हुई भूमि का महत्त्व छोड़ देने में क्या हर्ज है। मुख से बातें करने मात्र से गोरक्षा नहीं हो जाती। यदि आप लोग विचार पूर्वक यत्न करें तो एक भी गाय न कटने न पाये। सुना है मोटेमियां ने यह जाहिर किया था कि गौरक्षा करना हिन्दु और मुसलमान दोनों का कर्त्तव्य है। गाय हिंदुओं को मीठा और मुसलमानों को कडुआ दूध नहीं देती। सबको समान रूप से दूध देती है और पोषण करती है। लोग अपने बंगलों की चिन्ता करते है मगर गाय की चिन्ता नहीं करते।

सुभग बड़ा राजी हो रहा था। जब सेठने उसकी सराहना की तब उसकी खुशी का पार न रहा। पाप के कामों की सराहना करने से पाप वृद्धि होती है और धर्म कार्यों की सराहना करने से धर्म की। आज कल कुछ युवकों ने तो केवल निन्दा करने का ही काम अपना रखा है। वे कहते है हमारे दिल में जो धधक होगी वही काम करेंगे। युवकों से मेरा कहना है कि युवावस्था के जोश में होश गुमाकर काम मत करना। होश कायम रखकर विचार पूर्वक कार्य करने से सफलता चेरी बन जाती है। बेसमझी से आपकी धधक कहीं आपको गिरा न दे इसका ध्यान रखना। पहले के श्रावक जहां कहीं मिलते कहते थे। अयमाउसो ?

अयमाउसो ! यह निर्ग्रन्थे पावयणे अट्ठे। अयमाउसो ! निगन्थे पावयणे परमट्ठे। सेसे अणट्ठे।

हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थ है, यह निर्ग्रन्थ प्रवचन परमार्थ है इसके सिवा सब अनर्थ है। इस प्रकार धर्म की प्रशंसा करते थे। हज जाकर आने वा‍ से मुसलमान भाई इसी लिए मिलते है। वे कहते हैं हम हज करने के लिए नहीं जा सके तुम्हें धन्य है जो तुम हज करके आ सके हो। जो लोग व्याख्यान सुनने के लिए न आये हैं वे व्याख्यान सुनने वालों की प्रशंसा किया करें और व्याख्यान सुनने वाले हम

नाई हुई बातें सुनाया करें तो हमारा काम कितना हलका हो जाय। तथा उपदेशक । उपदेशक हो जाय।

सुभग ने सेठ से कहा कि आकाश में उड़ते समय वे मुनि कुछ मंत्र बोल रहे थे। आप मुझे वह मंत्र सिखा दीजिये ताकि मैं भी आसमान में उड़ा करूं। सेठ ने पूछा वह कौनसा मंत्र था जरा बताओ। 'अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं' ऐसा वे बोलते थे। सेठ समझ गया और उसे सिखाने लगा--

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहुणं
ऐसो पंच नमोकारो, सव्व पाव पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलम्॥

कहो यही वह मंत्र है न? जो साधु महात्मा बोले थे। जी हां, यही मंत्र था सुभग ने उत्तर दिया। सेठ ने कहा तू ने अच्छी बात याद रखी।

मित्रो! एक दिन मैं जंगल गया था। रास्ते में एक फकीर बोल रहा था 'याद से आबाद, भूल से बरबाद'। वह किसकी याद के लिए कह रहा था। धन पुत्र स्त्री आदि को तो लोग खूब याद रखते हैं। वह परमात्मा की याद के लिए कह रहा था। जो परमात्मा को नहीं भूलता उसके हाथ से कभी पाप नहीं हो सकता। वह बरबाद नहीं होता।

बिस्मिल्लाहि रहमाने रहीम

अर्थात् अल्लाह के नाम के साथ शुरू करता हूँ। जो भगवान् का नाम याद [illegible] है उससे बुराई नहीं हो सकती। क्या वह किसी के गले पर छुरी चला सकता है। [illegible] कोई ठाकुर साहिब रामजी का नाम लेकर किसी के गले पर छुरी चला सकता है। [illegible] चला सकता है।

कई लोग कहते हैं नाम से क्या होता है। मैं कहता हूं नाम के बिना काम नहीं होता। अदालत में जाकर कोई जज महोदय से केह कि मुझे दस हजार रुपये लेने हैं सो दिलवावें। बिना नाम के जज किससे रुपये दिलाये। अतः नाम याद रखना बहुत जरूरी है।

नाम लेने में भी अन्तर है। एक तो सम्बन्ध जोड़ कर नाम लिया जाय और दूसरा बिना सम्बन्ध के नाम लिया जाय। उदाहरणार्थ समझिये कि एक तो वर या कन्या एक दूसेर का नाम सगाई होने के पहले लेते हैं और एक सगाई होने के बाद। दोनों समय के नाम लेने में कितना अन्तर हो जाता है। बाजारू रिती से ईश्वर का बार बार नाम लेने और उसके साथ सम्बन्ध जोड़कर नाम लेने में बड़ा फर्क है। परमात्मा से तादात्म्य सम्बन्ध जोड़कर नाम लिजीये, बडा आनन्द आयगा।

नवकार मंत्र सिखाकर सेठ जिनदास सुभग से कहने लगे कि इस मंत्र का ब प्रभाव है। भगवान् पार्श्वनाथ ने जहरीले सांप को यह मंत्र सुनाया था। इसके प्रभाव से धरणेन्द्र देव हुआ।

एक चोर को शूली की सजा दी गई थी। वह शूली पर लगे हुए था कि प्यास लगी। राजा के डर से कोई उसके पास न जाता था। एक दयालु सेठ उधर निकला। चोर ने कहा सेठजी मैं प्यास के मारे मर रहा हूं। शूली से जितनी वेदना हो रही है उतनी प्यास के मारे हो रही है। सेठने कहा मैं पानी लेने के लिए जाता मगर न मालूम मेरे पहुँचने के पूर्व ही तेरी मृत्यु हो जाय। अतः तब तक तूं अरिहन्ताणं आदि मंत्र बोलते रहना ताकि मर जाय तो तेरी सद्गति हो जाय। वह नमो अरिहन्ताणं आदि मंत्र भूल गया मगर बोलने लगा—

आणु टाणु कछु न जानू सेठ वचन परमाणू।

जो कुछ सेठने कहा वह प्रमाण है। सेठ पानी लेकर आया तब तक व चुका था। नवकार मंत्र के प्रभाव से वह देव हुआ। उधर चोर को पानी पिलाने कोशिश करने के कारण राजा के आदमियों ने सेठ को पकड़ लिया और राजा के उपस्थित किया। राजा ने राजाज्ञा भंग करने के कारण उसे शूली की सजा किन्तु देव बने हुए चोर के जीव ने अपना आसन कंपायमान होने से आकर उसकी की। शूली का सिंहासन बन गया।

नवकार मंत्र का प्रभाव बताने के लिए जिनदास सेठ एक और कथा सुभग को सुनाते हैं। एक श्रीमति नवकार मंत्र का बहुत जाप किया करती थी। उसकी सासू उसके इस कार्य से बहुत अप्रसन्न रहा करती थी। एक दिन अपने बेटे से शिकायत की कि बहू मेरा कहना नहीं मानती है और दिन भर नवकार मंत्र जपती रहती है। इस से यह मंत्र छुड़ा दे मगर उसने न छोड़ा। श्रीमती ने कहा पति देव! इस मंत्र के प्रभाव से ही मैं सासूजी के कठोर वाक्य बाण सहन करती हूं। यह मंत्र क्रोध पर काबू करना सिखाता है। 'नमो अरिहन्ताणं का अर्थ है जिन्होने अरि अर्थात् काम क्रोध लोभ आदि शत्रुओं को हन्ताणं यानी नष्ट कर दिया है उनको नमस्कार हो इस मंत्र में क्या बुराई है। आप मेरी परीक्षा कर सकते हैं कि मैं इस मंत्र के प्रभाव से क्रोध को जीतती हूं या नहीं।

श्रीमती के पति ने सोचा इस प्रकार रोज रोज घर में क्लेश होना ठीक नहीं है, इसको मार डालना ही अच्छा है। एक दिन एक गारुड़ी सांप लेकर उधर से निकला। उसने सोचा यह अच्छा उपाय है। लोग समझेंगे सांप काटने से मर गई है। गारुड़ी से सांप लेलिया और एक मटके में बन्द करके रख दिया। रातको जब श्रीमती अपने पति के पास गई तब कहा पति देव! क्या आज्ञा है। पति ने कहा तू आज्ञा आज्ञा कहती है मगर मेरा कहा तो करती नहीं है। श्रीमती ने कहा ऐसा तो मैंने कभी नहीं किया। मैं सदा आपकी आज्ञाएँ पालन करती रही हूँ। पति ने कहा, जा उस घड़े में फूलों की माला रखी है, उठा ला और मुझे पहना दे। नवकार बोलती हुई झट से वह गई और माला लाकर उसे पहना दी। पति के आश्चर्य का पार न रहा। वह नवकार मंत्र के प्रभाव से बहुत प्रभावित हुआ।

> **मंत्र बड़ो नवकार, सुमरलो, मंत्र बड़ो नवकार।**
> **कृष्ण भुजंग को घाला घट में, दिया मारण को हार।**
> **नाग मिट के भई फूल की माल, मंत्र जपा नवकार॥ सुमरलो॥**

श्रीमती के पति ने अपनी माता से कहा कि मां! तू बहू से झगड़ा करना छोड़दे यह साधारण स्त्री नहीं है। कोई देवी है। मा ने कहा तू इसके चक्र में फंस गया है। पुत्रने मन में सोचा माता ऐसे न मानेगी इसे भी चमत्कार दिखाना पड़ेगा। माता के सामने ही कहा, श्रीमति जाओ इस घड़े में से माला उठा लाओ और मेरी मा को पहिनादो। श्रीमति

के जाने के पहले माला को बता दिया था कि घड़े में क्या है। माता घड़े में सांप देख कर डर गई थी। मगर श्रीमती तुरत गई और घड़े में हाथ डालकर माला लाई। नवकार मंत्र के प्रभाव से जब श्रीमती सांप को हाथ लगाती थी तब वह माला हो जाता था और जब मा बेटे देखते तब सांप ही दिखाई देता था। लड़के ने माता को समझाया कि माता नवकार मंत्र के प्रभाव से ही यह साँप माला बन जाया करता है। जिस नवकार मंत्र को छुड़ाने के लिए आप जिद पकड़े हुई हो उसका यह प्रभाव है। हम सब क्रोध किया करते है मगर श्रीमती कभी किसी के प्रति क्रोध नहीं करती है यह भी इस मंत्र का ही प्रभाव है। श्रीमती के घर का क्लेस उसदिन से शान्त हो गया। सब आराम से रहने लगे।

सुभग नवकार मंत्र के प्रभाव की कथाएँ सुनकर बहुत खुश हुआ। उसे नवकार मंत्र याद होगया था अतः अपने को निर्भय अनुभव करने लगा। आगे क्या होता है यह अवसर होने पर कहा जायगा।

राजकोट
१७—७—३६ का
व्याख्यान

—: मुनि का प्रभाव :—
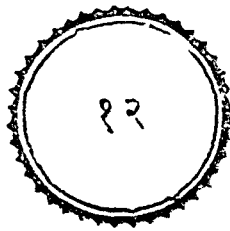
श्री अभिनन्दन दुःख निकन्दन वंदन पूजन योग जी ॥ प्रा० ॥
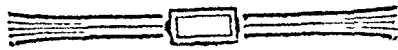
भक्त भगवान् की प्रार्थना किस भाव से करते हैं यह बात मैं बारंबार कहता हूँ। यह विषय इतना लम्बा और सरस है कि जितना अधिक इस पर विचार किया जाय, उतना ही चमत्कार मालूम होगा।

इस प्रार्थना में परमात्मा को दुःखनाशक मानकर उससे प्रार्थना की गई है कि हे प्रभो! तू मेरे दुःखों का भी नाश कर। प्रत्यक्षवादी भाई दलील करते हैं कि यदि दुःखनाश के लिए ही प्रार्थना की जाती है तब तो प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। दुःखनाश अन्य उपायों के द्वारा भी शक्य है। जो परमात्मा हमें दिखाई नहीं देता [illegible] को दूर पर उससे दुःखनाश करने की प्रार्थना करना उचित नहीं है। इसलिए

दुःख मिटाने के लिए डाक्टर मौजूद हैं । मानसिक दुःख मिटाने के लिए आमोद प्रमोद की सामग्री है मानापमान का दुःख होतो वकील बेरिस्टर की शरण में जानेसे दुःख दूर हो सकता है । स्त्री पुत्र की आवश्यकता हो तो विवाह किया जा सकता है । मतलब यह कि दुःख मिटाने के प्रत्यक्ष साधन मौजूद हैं फिर अप्रत्यक्ष परमात्मा से प्रार्थना करने से क्या लाभ है। परमात्मा से ऐसी प्रार्थनादि कहना वृथा है ।

श्री अभिनंदन दुःख निकन्दन वन्दन पूजन योग जी ।
आशा पूरो चिन्ता चूरो आपो सुख आरोग जी ॥

इस दलील के उत्तर में ज्ञानियों ने बहुत विचार किया है । जिन साधनों या वे डाक्टर और वकीलों को दुःख मिटाने का कारण माना जाता है वे दुःख मिटाने के वास्तवि कारण नहीं है । ऐसा निश्चित नहीं है कि इन उपायों को काम में लेने पर दुःख मिट जाते हों । दुःख मिट जाने पर वापस भी हो सकते हैं । डाक्टरों के द्वारा रोग घटने बजाय बढ भी सकता है । वकीलों से पोजिशन की रक्षा होने के स्थान पर पोजिशन बिगड़ ... भी सकती है । स्त्री और पुत्र सुख देने के बजाय दुःख भी देते हैं । ऐसे अनेक दृष्टान्त ... मौजूद है । ये सब साधन दुःख मिटाने के लिए पूर्ण कारगर कारण नहीं है । एक मात्र ... परमात्मा की शरण ही अचूक साधन है जिससे दुःख मिट जाते हैं वापस कभी नहीं होते।

बहुत से भाई मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए पुस्तकों का वाचन करते है। मेरा कहना है कि केवल पुस्तको के भरोसे पर भी नहीं रहना चाहिए बहुत सी पुस्तके अच्छी होती है जिनसे आत्म शान्ति का उपाय मालूम पड़सकता है और बहुत सी खराब भी होती है जिनसे अशान्ति और दुःखके कारण बढ़ जाते हैं । अतः ज्ञानियों के वचन पर विश्वास करिये । वे कहते है जो सुखदुःख कर्म के निमित्त से होते हैं वे अस्थाईक्षणिक होते हैं । स्वर्ग और नरक भी अस्थायी है । स्वर्ग सुख की आशा भी छोड़ देना चाहिए । परमत्मा की शरण लेने से ही स्थायी शान्ति मिलती है और हमेशा के लिए दुःख नाश हो जाता है ।

आप कहेंगे महाराज ! यह तो आध्यात्मिक सुख की बात हुई । हम तो सांसारिक जीव हैं । हमें भौतिक सुख की आवश्यकता है । उसकी कुछ बात बताईये । मेरा कहना है भौतिक सुख, आध्यात्मिक सुख का दास है । आप आध्यात्मिक सुख के लिए ही प्रय कीजिये । धान्य के साथ जैसे भूसा पैदा होता है वैसे आध्यात्मिक सुख के साथ भौतिक

सुख निश्चित् है। आप भूसे के लिए यत्न मत कीजिये। धान्य के लिए यत्न कीजिये सो भूसा तो मिलेगा ही। भूसे का यत्न करने पर मिले और न भी मिले। परमात्मा की शरण में जाने से आप में एक आकर्षण शक्ति पैदा होगी जिससे समस्त भौतिक चीजें आपके पास खिंचकर चली आयेंगी किन्तु तब आप उनको तुच्छ मानने लगेंगे। किसी आदमी को एक रत्न मिला। उस रत्न में प्रत्यक्ष रुप से खाने पीने आदि की वस्तुए न दिखाई देती थीं मगर उसके प्रभाव से सब कुछ मिल जाता था। आध्यात्मिक सुख मिलने पर भौतिक सब सुख मिल जाते है। आध्यात्मिक सुख प्रभु शरण से ही मिल सकता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में आत्म कल्याण का स्पष्ट मार्ग बताया हुआ है। उस मार्ग पर चलने की कोशिश की जाय तो सांसारिक सुख के लिए किये जाने वाले संकल्प विकल्प मिट जायं और आध्यात्मिक सुख प्राप्त हो जाय। आत्मा भ्रम जाल में फंसकर कई वार भौतिक वस्तुओं के कारण अपने को नाथ मानने लगता है। होता यह है कि वह वस्तुओं में बुरी तरह फंस जाता है और उल्टा उनका दास वन जाता है। जो वस्तु नाथ बनाने वाली है उसे वह भूल जाता है राजा श्रेणिक भी इस विषय में भूला हुआ था। उसने महा मुनि अनाथी के उपदेश से अपनी भूल को किस प्रकार दूर किया यह वात आप इस अध्ययन से समझिये।

वाग का वर्णन कर चुकने के बाद आगे शास्त्रकार कहते हैं:—

> तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
> निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइअं॥ ४॥

जहां वे विराजते हैं वहां वैर भाव नहीं रहता। आपस में वैर रखने वाले जीव भी निर्वैर होकर विचरने लगते हे। शेर और बकरी तक साथ रहने लगजाते हैं। भयभीत होने वाले प्राणी निर्भय होजाते हे। चैतन्य प्राणियों के अलावा जड़ जगत् पर भी महात्माओं का प्रभाव पडता है।

राजा श्रेणिक विचार करने लगा आज बगीचे का वातावरण क्यों बदला हुआ मालूम होता है। मैं नित्य यहां आया करता हू मगर आज कुछ नवीनता अनुभव हो रही है। क्या मेरा मन बदल गया है। अथवा बगीचे के सब प्राणी और वृक्षादि बदल गये है। वृक्ष के नीचे एक मुनिराज को देखकर वह विचार में डूब गया। साधु का और वृक्ष का क्या सम्बन्ध है जिससे शास्त्रकार ने दोनों को जोड़ दिया है। यदि परस्पर तुलना की जाए तो ज्ञात होगा कि साधु और वृक्ष में बहुत साम्य है। वृक्ष पर शीत और ताप गिरते है वह शांति पूर्वक अडिग खड़ा रहकर उन्हें सहता है। किसी से इस बात की फरियाद नहीं करता। आप कहेंगे 'वह क्या फरियाद करें, वह जड़ है। क्या हम भी उसके समान जड़ बन जाय'। आप वृक्ष के समान जड़ मत बनिये मगर आपको शक्ति मिली है उसका कुछ तो उपयोग करिये। वृक्ष शीत ताप को सहन करता है। आप भी कुछ सहन करिये आपको वह बहू पसन्द है या नहीं जो सासू के वचनों का आघात सह लेती है और सामने नहीं बोलती। यदि आघात सहने वाली बहू पसन्द है तो इसका अर्थ स्पष्ट होगया कि आघात सहन करना अच्छी बात है। जो सासुएं अच्छी बहूएं चाहती है उन्हें स्वयं अच्छी बनने की कोशिश करना चाहिये। वृक्ष जैसे पवन का आघात सहन करता है वैसे ही जो पुरुष संसार व्यवहार के अनेक आघात सहन करता है वह महान् बन जाता है। संसार में कैसे भी काण्ड हों सब अवस्थाओं में सहन शील रहना, कल्याण का मार्ग है।

महाभारत में कहा है कि युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह का अन्तिम समय जानकर एक बात पूछी थी। धर्म और राजनीति की अनेक बातें जानने के बाद आखीरी शिक्षा लेने के लिए यह बात पूछी गई थी। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा तुम जो कुछ पूछना चाहो पूछ सकते हो। मैं तुम्हारी तिजोरी में जितनी भी शिक्षा की बातें हो रखना चाहता हूं। युधिष्ठिर ने पूछा किसी प्रबल शत्रु के आक्रमण करने पर राजधर्म का अनुसरण करते हुए क्या करना चाहिए। भीष्म ने दिया उत्तर कि यह बात समझाने के लिए मै तुम्हें एक प्राचीन कथा सुनाना चाहता हूं।

दियों का स्वामी समुद्र सब नदियों पर बड़ा प्रसन्न था मगर वेत्रवती नदी पर अप्रसन्न था। मुद्र ने वेत्रवती नदी से कहा तू बड़ी कपटिन है। अन्य नदियां अनेक प्रकार का सामान कर मुझे भेंट करती है मगर तुने एक टुकड़ा भी मुझे नहीं दिया। तेरे में वेंत की कड़ियां बहुत होती है मगर कभी एक लकड़ी भी मेरे लिए नहीं लाई। जिसके पास जो स्तु हो वह यदि अपने पति को न दे तो उसका व्यवहार अच्छा नहीं गिना जा सकता।

समुद्र का कथन सुन कर वेत्रवती ने उत्तर दिया कि इस में मेरा कोई कसूर नहीं । जब मैं बड़े जोर से पूर के साथ बहती हूं तब बेंत की लकड़ियाँ नीचे झुक जाती है जिससे मेरा पानी उनके उपर होकर निकल जाता है। पूर निकल जाने के बाद वे लकड़ियां पुनः जैसी की तैसी खड़ी हो जाती है। जो मेरे सामने झुक जाते है उनका मै कुछ भी बिगाड़ने में असमर्थ हू। हे समुद्र! अब आपही बताइये कि इस में मेरा क्या कसूर है।

समुद्र और वेत्रवती का यह संवाद सुनाकर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा, जब प्रबल शत्रु चढ़कर आये तब वही करना चाहिये जो बेंतों ने किया। बेंत पानी का पूर आने पर, झुक जाती है मगर अपनी जड़ नही उखड़ने देती। इसी प्रकार शत्रु के आने पर नम्र होजाना चाहिए और जब उसका जोश ठण्डा हो जाय तब वापस अपनी मूल स्थिति में आजाना चाहिए। युधिष्ठिर! तुम अजातशत्रु हो अतः तुम्हारे लिए ऐसा प्रसंग न आयेगा मगर यह शिक्षा दूसरों के लिए हितकारी होगी। युधिष्ठिर अजातशत्रु थे। इसी प्रकार वृक्ष भी अजातशत्रु है। युधिष्ठिर की अजातशत्रुता के विषय में सन्देह हो सकता है मगर वृक्षों की अजातशत्रुता के विषय में सन्देह को कोई स्थान नहीं है। किसी कारण से यदि [illegible] डाली गिर जाय तो भी वृक्ष ऋतु के अनुसार फल फूल देता ही है। वृक्ष किसी [illegible] अपना रोना नही रोता।

मनुष्यों पर पुत्रमरण आदि का दुःख तो होता ही है मगर रो रो कर वे दूसरा [illegible] भी मोल लेलेते है। यदि मनुष्य ऐसे प्रसंगों पर वृक्षों से शिक्षा ग्रहण कर लिया करें [illegible] रोकर उसकी वृद्धि न करें तो कितना अच्छा हो। एक कवि कहता है—

रे मन वृक्ष की मति लेहुँ।

[illegible] वाले से नहीं बैर करत, सिंचन वाले से नहीं स्नेह रे ॥

कवि अपने मन को सम्बोधित करके कहता है हे मन ! तू वृक्ष की मति ग्रहण कर। वृक्ष अपने पर कुल्हाड़ी मारने वाले पर वैरभाव नहीं रखता और न पानी सिंचने वाले पर स्नेह भाव रखता है। सुख दुःख में समान भाव रखता है। न काहूं सो वैर न काहूं सो द्वेष। यदि मनुष्य समाज वृक्ष से शिक्षा लेकर किसी से राग द्वेष न करे तो यह संसार कितना सुन्दर बन जाय।

कदाचित् कोई यह कहें कि यदि हम इतने सीधे और सरल बन जाय तो हमारे शत्रु हमें काट डाले और हमारा नामो निशान मिटा डाले। पर इस विषय में वृक्ष क्या कहता है सो सावधान होकर सुनिये। वृक्ष कहता है 'मैं किसी से भी नहीं कट सकता। जब कटता हूं तब अपने ही वंशज की सहायता से कटता हूं। यदि कुल्हाड़ा में लकड़ी का हत्था न हो तो मै कट नहीं सकता' इसी प्रकार सामने वाला व्यक्ति आप से वैर भाव रखता है किन्तु यदि आप उसे अपने मन की सहायता न पहुँचाये तो वह आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। आप अपना मन रूपी हत्था शत्रु को पहुँचाते हैं अतः वह आपका नुक्सान कर सकता है। वैर से वैर की वृद्धि होती है। यदि हम में सामने वाले के लिए दुर्भावना नहीं है किन्तु सद्भावना है तो सामने वाले की ताकत नहीं है कि वह अपने दुष्ट परिणामों का हम पर असर कर सके। उसकी दुष्ट भावना का असर हम तक नही पहुँच सकता बशर्ते कि हम प्रतिवैर करके उसके भावों को उत्तेजित न करें।

इस प्रकार सुशिक्षा देने वाले महान् उपकारी वृक्ष को भी मनुष्य काट डालते हैं यह कितनी कृतघ्नता है। घाटकोपर (बम्बई) में एक दिन मैं जंगल गया था। वापस लौटते वक्त, जिस वृक्ष को मैं जाते वक्त हरा भरा और लहलहाता हुआ छोड़ गया था, कटा हुआ देख कर मुझे बहुत दुख हुआ। मेरे साथी सन्तों ने वृक्ष काटने वालों से पूछा कि इसे क्यों काट डाला तो उत्तर मिला कि इसके कोयले बनाकर चूना पकाया जायगा जिससे सेठिया लोगों के बंगले बनेंगे। आप लोगों के बंगलों के लिए बेचारे वृक्षों की यह दशा होती है।

मैने हदीसों मे पढ़ा है कि कातिलुल शजर को महापाप माना गया है अर्थात् वृक्ष को काटना बड़ा गुनाह माना है। हरा वृक्ष सबको शांति देता है। बंगला सबको शांति

नहीं देता। मकान बनाने के लिए ही वृक्षों का विनाश नहीं हुआ है किन्तु इस मशिनरी युग में एंजिनों और मील आदि कारखानों को आहुती देने के लिए जंगल उजाड़ कर दिए गये है। कहीं लकड़ी के कोयले जलाये जाते हैं और कहीं लकड़ी। मेवाड़ के कई कारखानों में लकड़ी जलाई जाती है। जिससे वृक्ष काटे जाते है। इस प्रकार इस यंत्रयुग ने वृक्षों का बड़ा नाश किया है। वृक्षों के नाश के साथ प्रकृति का सौंदर्य और आपका सुख भी नष्ट हो रहा है।

मंडीकुक्ष बाग में वृक्ष के नीचे जो महात्मा विराजमान हैं वे वृक्ष के ही समान हैं। किसी भी प्रकार के आघात प्रत्याघात की वे शिकायत करने वाले नही हैं। आप भी ऐसे बनिये।

सुदर्शन चरित्र—

कल कहा था कि सेठ ने सुभग को नवकार मंत्र सिखा कर उसका महत्व समझाने के लिये कुछ कथाएं सुनाई थी। श्रावक के संपर्क में रहने से रहने वाले का सुधार होना चाहिये। आज तो लोग अपने लड़के का भी सुधार नहीं कर सकते है। अपनी स्त्री को भी नहीं सुधार सकते। वकील बैरिस्टर और पंडित लोग अन्य कामों में समय दे देते है मगर घर की स्त्री के सुधार के लिये उन्हे समय नही मिलता। बल्कि यों कहते है कि वह अपनी गति से काम करे। हमें क्या। लेकिन श्रावक का कर्त्तव्य है कि जो गुण खुद में हो वह दूसरों को भी दे। उववाई सूत्र में श्रावक को धम्मक्खाई कहा है। धम्मक्खाई का अर्थ है धर्म का कथन करने वाला। श्रावक स्वयं धर्म का अभ्यासी हो तभी दूसरों को धर्म का स्वरूप समझा सकता है। खरे खोटे गुरु की परीक्षा भी तभी की जा सकती है। घर सुधार पहले होना चाहिये।

शास्त्र में कहा है कि जितशत्रु नामक राजा के सुबुद्धि नामक प्रधान था सुबुद्धि श्रावक था। जितशत्रु धर्म को न मानता था मगर सुबुद्धि ने उसे धार्मिक बना दिया। श्रावक का लक्षण बताते हुए कहा है।

स्वारथ के सांचे परमारथ के सांचे, चित्त सांचे बैन कहे सांचे जैन मती है।
काहू के विरुद्ध नाहीं परजाय बुद्धि नाहीं, आतम गवेषी न गृहस्थ है न जती है॥

सिद्धि ऋद्धि वृद्धि दीसें घट में प्रकट सदा, अन्तर की लच्छी सो अजाची लच्छपति है।
दास भगवान के उदास रहे जगत सों, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है॥

श्रावक सोचता है कि मै गृहस्थ नहीं हूं और साधु भी नहीं हूं। श्रावक अपना स्वार्थ साधता है मगर सत्य के साथ। दूसरों को पीड़ा पहुंचाये बिना। यदि सत्य का घात होता हो तो श्रावक लाखों की सम्पत्ति की भी परवाह नहीं करता। कई लोग किसी भी प्रकार से विषय भोग की सामग्री इकट्ठा करने में ही भक्ति मानते है। मगर भक्ति भोग में नहीं है, त्याग में है।

श्रावक सत्य का उपासक होता है। कोई कहे कि उपाश्रय में रहे तब तक सत्य का उपासक रहे और दुकान पर जाये तब सत्य का आश्रय कैसे लिया जाय। किन्तु शास्त्र कहता है सत्य की खरी कसौटी तो लोक व्यवहार ही है। उपाश्रय में धर्म या सत्य का पाठ पढाया जाता है। उस पाठका अमली आचरण तो व्यवहारमें ही होना चाहिये। मदरसे में छात्र पांच और पांच दस सीखे और दुकान पर आकर पांच और पांच ग्यारह बताने लगे तो कैसे काम चले। क्या वह शिक्षा सच्ची गिनी जा सकती है ? कदापि नहीं। धर्म स्थानक में सत्य अहिंसा की शिक्षा ली जाय और बाहर जाकर बाजार में सफेद झुंठ का व्यवहार किया जाय तो धर्म की हसी कराना है।

श्रावक लोग बारह व्रत ग्रहण करके व्यवहार में उसका पालन करते है। कई लोग दलील करते हैं कि '**कन्नालीए**' अर्थात् कन्या सम्बन्धी गोवालीए–गाय सम्बन्धी और भोमालीए–भूमि सम्बन्धी झूठ न बोलना इतना अर्थ ठीक है। व्यवहार में यह निभ भी सकता है। मगर कन्या, गाय और भूमि को उप लक्षण बनाकर मनुष्यमात्र, पशुमात्र और भूमि से उत्पन्न सम्पूर्ण पदार्थों के विषय में झूठ न बोलना, कैसे निभ सकता है। दलील करने वालों की मंशा है कि व्रतों में कुछ छूट होनी चाहिए। मगर ज्ञानी कहते है यदि कन्या के विषय में झूठ बोलना पाप है तो वर या अन्य किसी के विषय में झूठ बोलना कैसे धर्म होजायगा। झूठ मात्र पाप है। श्रावक को इसके लिए अपने आप पर काबू करना ही चाहिए। यदि यह कहा जाय कि बिना झूठ बोले व्यापार करना संभव नहीं है तो यह मिथ्या धारणा है यूरोप के लोग सत्य के साथ अपना व्यापार चला सकते हैं तो आप क्यों नहीं चला सकते। बल्कि जो सत्य पूवर्क–व्यापार करता है उसका व्यापार अच्छा चलता है। असत्य के बिना काम चल सकता है किन्तु सत्य के बिना काम नहीं चल सकता।

जितशत्रु राजा को धर्म की बातें अच्छी न लगती थी। मगर सुबुद्धि प्रधान राज्य
। काम संभालता हुआ भी धर्म का पालन करता था। एक दिन राजा और प्रधान दोनों साथ में
ा खाने निकले, मार्ग में एक खाई के सडे हुए पानी से बड़ी दुर्गन्ध निकल रही थी।
ा घृणा-भाव दिखाता हुआ झट से निकल गया। सुबुद्धि ने कहा, राजन्! हमारी कमी
कारण ही यह पानी दुर्गन्ध युक्त है। राजा ने कहा प्रधान! दुर्गन्ध सुगन्ध कैसे हो
कती है। प्रधान ने बात को वहीं छोड़ कर मन में नक्की कर लिया कि राजा को यह बात
यक्ष करके दिखानी चाहिए। उसने अपने एक खानगी नौकर से उस खाई का सड़ा पानी
क घड़े में भरवाकर मंगवाया और उसमें क्षारादि द्रव्य डालकर एक घड़े से दूसरे में और
रे से तीसरे में, इस प्रकार ४९ दिन तक उडेल कर उसे शुद्ध किया। फिर राजा की
निहारी को एक कलशा भर करके दिया और कह दिया कि आज राजा जब भोजन करे
पीने के लिए यही पानी रखना, राजा ने पानी पीकर पनिहारी से कहा कि आज पानी
त अच्छा है। सदा ऐसा ही क्यों नहीं लाया करती। पानिहारी ने कहा महाराज! यह
नी प्रधानजी के यहां का है। प्रधान को बुलाकर राजा ने उपालंभ दिया कि तुम अच्छा
नी पीते हो और हमारे लिए उसका प्रबन्ध नहीं करते यह कितनी भद्दी बात है। प्रधान
कहा यह तो पुद्गलों का स्वभाव है कि बुरे के अच्छे और अच्छे के बुरे बन जाते हैं।
स दिन जिस खाई के पानी की दुर्गन्ध के मारे आप ने नाक बंद कर लिया था, यह वही
नी है जिस का आप आज बखान कर रहे हो। महाराज! किसी पर घृणा करने से
सका सुधार नहीं हो सकता। मगर उसे सुधारने का भरसक प्रयत्न करने से वह सुधर सकता
। पानी का सुधार हो सकता है तो मनुष्य का क्यों नही।

राजा ने प्रधान की अक्ल होंशियारी से प्रसन्न होकर कहा कि तू मुझे प्र[illegible]पित
ं सुना। प्रधान ने कहा महाराज! पानी की तरफ क्या देखते हैं अपनी आत्मा की ओर
[illegible]ये। यह भी पानी के समान दुर्गन्ध युक्त है। उसे शुद्ध बनाने का प्रयत्न करना चाहिए
[illegible] खराब होने से सारा वृक्ष खराब होता है। आत्मा सब [illegible] मूल है अतः प्रथम उसे
[illegible]रना चाहिए।

सुभग नवकार मंत्र सीखकर खाते, पीते, उठते, बैठते हर वक्त उस की रट लगाने लगा। भोले लोगों में विश्वास अधिक होता है। सुभग एक भोला और सीधा साधा लड़का था। दुनिया के गुढ़ माया जाल से एकदम अपरिचित था। सुभग नवकार मंत्र के कारण अपने आपको निर्भय अनुभव करने लगा। 'अब मैं कहीं भी जाऊं, मुझे भूत प्रेत डाकिन शाकिन आदि किसी का भी कोई भय नहीं है मैं निर्भय और अमर हूँ'।

गांधीजी की अन्य बातों में चाहे किसी का मतभेद हो मगर उनके सत्य के विषय में किसी को भी संदेह नहीं है। उन्होंने अपनी आत्म कथा मे लिखा है कि 'मुझे मेरी धाय माताने यह बात सिखाई थी कि राम का नाम लेने से किसी तरह का भय न रहेगा। मेरे कोमल दिमाग में उसके उस कथन पर विश्वास जम गया था अतः उस प्रकार का भय नही होता था।

आप लोग भी नवकार मंत्र जानते हैं। आपके हृदय में भूत प्रेत आदि का भय तो नहीं है। यदि आपसे कोई स्मशान में रहने के लिए कहे तो आप इन्कार तो नहीं करेंगे? आपकी कल्पना का भूत और शास्त्र कथित देवयोनि का भूत जुदा जुदा है। आपका कल्पित भूत तो एक थप्पड़ में भाग जाता है। एक ताविज या गंडा बांध लेने से भी भाग जाता है। शास्त्र वर्णित देव के लिए तो कहा गया है 'क्रोड चक्री एक सुर कह्यो।

अमेरिका में भूतों की लीला का ढोंग चला। दो मित्रों ने इसकी जांच करने का नक्की किया। भूत लाने वाले के पास जाकर एक ने कहा कि मेरी बहिन का भूत ला दो। बहिन जीवित थी। भूत लाने वाले ने जरा ऊँचा करके कहा को भूत आ गया है। वह बड़े आश्चर्य में पड़ गया कि जीवित व्यक्ति का भूत कैसे आ गया। खामोश होकर बैठा रहा। दूसरे ने कहा, नेपोलियन का भूत ला दो। झट नेपोलियन का भूत आ गया। वह मित्र तलवार लेकर उसके सामने दौड़ा भूत नौ दो ग्यारह हो गया। वह सोचने लगा कि जिस नेपोलियन ने अपनी वीरता से सारे यूरप को कम्पा दिया था उसका भूत क्या एक तलवार से डर सकता है। फिर शंकराचार्य के भूत को बुलवाकर उससे वेदान्त के प्रश्न पूछे गये मगर उत्तर नहीं दिये जा सके। उन दोनों मित्रों ने भूत लाने वाले ढोंगियों का भण्डाफोड़ कर दिया।

आप लोग नवकार मंत्र पर विश्वास रखो तो ऐसे चक्र में कभी न फंसो। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में वहम की मात्रा अधिक होती है। वे बच्चों को डराया करती हैं 'वहां

त ना वहां भूत रहता है' कोमल दिमाग के बच्चों में वह बात घर कर जाती है और लना भूत उम्र तक साथ रहता है। इस प्रकार के बहम दिल में से निकाले बिना धर्म । इज्जत रखने में आप समर्थ नहीं हो सकते।

सेठ ने सुभग की रग २ में नवकार मंत्र के महत्त्व को उतार दिया जिससे वह र रहित होकर रहने लगा। आप भी इस प्रकार परमात्मा के नाम पर विश्वास रखकर भय बनो तो कल्याण है।

राजकोट
१७—७—३६ का
व्याख्यान

:—: चैत्य व्याख्या :—:
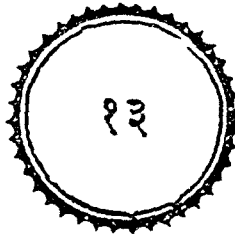
" सुमति ! सुमतिदातार महामहिमानिलो जी········ । "

परमात्मा की प्रार्थना करने के कुछ उदाहरण इस प्रार्थना में बताये गये हैं। वे उदाहरण स्पष्ट हैं फिर भी मैं और स्पष्ट करता हूं। यदि इन उदाहरणों को हृदय में रख कर प्रार्थना की जाय तो प्रार्थना में पूर्ण सफलता मिल सकती है।

भ्रमर की फूल से प्रीति होती है। सूर्य से कमल की और पपिहा की पानी से प्रीति होती है। जैसी इन तीनों–भ्रमर कमल और पपिहा की अपनी इष्ट वस्तुओं के प्रति प्रीति होती है वैसी यदि मनुष्य की प्रीती परमात्मा के साथ हो जाय तो बेड़ा पार है। भ्रमर एक ही दिशा में गमन करता है। अर्थात् जिससे उसने प्रीति करली है उससे विपरीत दिशा में नहीं जाता। उसकी प्रीति पुष्प से हैं। वह पुष्प की सुगन्ध का रसिक है। वह फूलों से सुगन्ध ग्रहण

रता है । यदि उससे कोई कहे कि हे भ्रमर ! तू विष्ठा की सुगन्ध ग्रहण कर तो वह दापि ग्रहण न करेगा । पुष्पों की सुगन्ध छोड़ कर भला वह विष्ठा की दुर्गन्ध क्यों ग्रहण रने लगा । ऐसी कल्पना करने में भी उसे घृणा होगी ।

परमात्मा की भक्ति पुष्प की सुगन्ध के समान है और विषयों की इच्छा विष्ठा की र्गन्ध के समान है । जिन लोगों की आदत प्रभु भक्ति करके भक्ति रस का पान करने की वे विषय वासना जन्य निकृष्ट सुख की कभी भावना नहीं कर सकते । यह नहीं हो सकता कि कोई परमात्मा की भक्तिं करके फिर विषय वासना की ओर दौड़े । यदि भक्ति करने के क भी मन विषय वासना की ओर दौड़ता होतो समझना चाहिए कि अभी भक्ति मे कसर । पुष्प की सुगन्ध के बाद विष्ठा की दुर्गन्ध लेने की इच्छा होना असंभव है । जिसने भक्ति स का आस्वादन कर लिया है वह काम भोग जन्य सुख की वांछा नहीं कर सकता । यह ात ठीक है कि इस आत्मा को अनादि काल से विषय सुख की आदत पडी हुई है अतः क्ति जन्य आनन्द की तरफ खिंचाव होने पर भी संस्कार वशात् विषयों की ओर मन दौड़ ाता है । मगर प्रयत्न यह होना चाहिए कि मन विषयों की तरफ जाय ही नहीं । जितना ितना प्रभु भक्ति का रंग गहरा चढ़ता जायगा उतना उतना विषयों पर का रंग फीका पडता ायगा । प्रभु भक्ति और विषय भक्ति में परस्पर विरोध है ।

अभी युवक परिषद् के मंत्री ने आप लोगों को युवक परिषद् में सम्मिलित होने े लिए आमंत्रण दिया है । युवक लोग परिषद् भर रहे है । युवकों से मुझे यह कहना है कि वे पहले अपना खुद का सुधार करलें बाद में अपने विचार दूसरों के सामने रखने चाहिए । अपने ही चरित्र का प्रभाव दूसरों पर पड़ता है ।

प्रार्थना भी करते जाना और दुराचरण भी सेवन करते जाना, ठीक नहीं है तो क्या हम सब लोग साधु बन जायँ ? मैं सब को साधु बनने के लिए नहीं कहता। सब लोग साधु बन जायं तो रोटियाँ कहां से मिलेगी। साधु होना तो अपनी अपनी अंतःकरण की भावना और शक्ति पर निर्भर है। किन्तु जो व्यक्ति जिस स्टेज-दर्जे पर है उसे उसके अनुसार सच्चरित्र बनना ही चाहिये। आप गृहस्थ हैं अतः गृहस्थ के योग्य सच्चरित्रतो बनना ही चाहिए। गृहस्थों की सच्चरित्रता के हालात आप लोग उपासक दशांग सूत्र से सुन ही रहे हो। बिना साधु हुए यदि धर्माचरण न किया जा सकता होता तो भगवान महावीर स्वामी यह न कहते कि—

दुविहे धम्मे पएणत्ते, तं जहा आगार धम्मे अणगार धम्मे।

धर्म दो प्रकार का है। एक साधु के लिए और दूसरा गृहस्थों के लिए। गृहस्थ अपने धर्म का पालन करे और साधु साधु धर्म का। यदि गृहस्थ अपने धर्म का सम्यक् प्रकार से पालन करने लगें तो साधु भी अपना साधुपन अच्छी तरह निभा सकें। साधु धर्म और गृहस्थ धर्म एक दूसरे पर आधार रखते हैं। गृहस्थों को भी अपने पद के अनुसार प्रार्थना में वर्णित उदाहरणों के अनुसार भगवान् की भक्ति करनी चाहिए।

अब मै शास्त्र की बात कहता हूँ। अनाथी मुनि की कथा सम्बन्धी गाथा की एक चर्चा रह गई है जिसे स्पष्ट करना उचित है।

विहारजत्तं निज्जाओ मंडिकुच्छिसि चेइये।

श्रेणिक राजा मंडिकुक्ष नामक चैत्य में बिहार यात्रा के लिए गया। यहां मंडिकुक्ष-उद्यान का प्रयोग न करके मंडिकुक्ष चैत्य शब्द का प्रयोग किया गया है। चैत्य शब्द का अर्थ समझ लेना चाहिए। इस उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार 'चैत्य इति उद्याने' अर्थात् 'चैत्य शब्द का अर्थ उद्यान है,' ऐसा लिखते है। श्रेणिक राजा उद्यान में गया।

चैत्य शब्द **'चिय चयने, चिति-संज्ञाने'** धातु से बना है। जहां प्रकृति का बहुत उपचय हो, बहुत सुन्दरता हो उस स्थान को चैत्य कहते हैं। अथवा आत्मा के ज्ञान को भी चैत्य कहते है। मनः प्रसन्नता के कारण को भी चैत्य कहते हैं। यह बात मै मनगढ़न्त नहीं कह रहा हूं मगर पूर्वाचार्यों के कथनानुसार कह रहा हूं। रायप्पसेणी सूत्र में वर्णन

कि सूर्याभदेव ने भगवान को '**देवयं चेइयं**' कहकर वन्दना की है। मलयागिरि टीका में इस बात का खुलासा किया गया है कि भगवान् को चेइयं क्यों कहा गया। टीकाकार ने लिखा है '**सुप्रसन्न मनहेतु त्वादिति चैत्यं**' अर्थात् मनः प्रसन्नता का कारण होने से भगवान चैत्य हैं। किसी के लिए संसार व्यवहार मनः प्रसन्नता का कारण होता है और किसी के लिए भगवान् मनः प्रसन्नता के कारण होते हैं। सुर्याभदेव को देवलोक के सुख मनः प्रसन्नता के कारण न जान पड़े किन्तु भगवान् मनः प्रसन्नता के कारण मालूम हुए। इसी कारण से भगवान को चेइयं शब्द से सम्बोधित करके वन्दना की है।

चैत्य शब्द रूढ़ नहीं है किन्तु व्युत्पन्न प्रातिपादक है। इसके अनेक अर्थ हैं—बाग ज्ञान, मनः प्रसन्नता का कारण आदि। मगर चैत्य शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति से मूर्ति नहीं होता। जैनागमों में जहां कहीं प्रतिमा का वर्णन आया है वहां स्पष्ट शब्दों में '**जिणपडिमाणं या जक्ख पडिमाणं**' कहा है। मूर्ति के लिए कहीं भी चैत्य शब्दका प्रयोग नहीं है। मूर्ति के लिए पडिमा शब्द का प्रयोग किया गया है। पडिमा और चेइय शब्द भी अलग अलग हैं और इन का अर्थ भी जुदा जुदा है। चैत्य शब्द का जहां कहीं प्रयोग हुआ है वहां बाग, ज्ञान या साधु के अर्थ में हुआ है। शान्ति आचार्य कृत पाई टीका में भी चैत्य शब्द का अर्थ बाग किया गया है। यहां प्रकरण से भी यही मालूम होता है कि राजा श्रेणिक बाग में विहार यात्रा के लिए गया है। यह बाग नाना वृक्षों और लतादि से संयुक्त था। उसमें नाना प्रकार के पक्षी और पुष्प थे।

बाग का वर्णन और मुनि का दर्शन करके आगे क्या हुआ सो शास्त्रकार कहते हैं—

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥
तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए।
अच्चन्त परमो आसी, अउलो रूव विम्हिओ ॥ ५ ॥
अहो वण्णो अहो रूवं, अहो अज्जस्स सोमया।
अहो खंति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥

गाथा में कहा है पहले राजाने साधु को देखा है। अतः हम भी पहले साधु का अर्थ समझलें।

साधयति स्व पर कार्याणीति साधुः

जो अपना और दूसरों का काम साधता है वह साधु है। जिस प्रकार नदियां समुद्र की ओर जाती है मगर जाती हुई अपने आप पास के क्षेत्रों का सिंचन करती जाती है। उनका मुख्य उद्देश्य अपने आपको समुद्र में मिला देना है। मगर उनकी चेष्टाएं और क्रियाएं ऐसी है कि अपना काम साधते हुए दूसरों का भला हो जाता है। उनके पास पड़ने वाले प्रदेश हरे भरे और फल फूलों से संयुक्त हो जाते है। ठीक यही बात साधुओं के विषय में लागू पड़ती है। साधुओं का लक्ष्य अपना आत्म कल्याण करना है। अर्थात् अपने आप को परमात्मा रूप समुद्र में मिलाना है। मगर समुद्र मिलन रूप मुख्य कार्य के साथ, उनके आचरण से उनके आसपास रहने वाले और उनकी सोबत में आने वालों का बड़ा भला हो जाता है। साधु अपना मुख्य ध्येय त्याग कर दूसरों की भलाई करने में नहीं पड़ते किन्तु अपने साध्य की सिद्धि के साथ २ दुसरों का भी उपकार करते है। जिस प्रकार वृक्ष अपनी प्रकृति से ही फलते फूलते हैं दूसरों पर उपकार करने के लिए नहीं फलते फूलते। यह बात दूसरी है कि दूसरे उन का लाभ लेते हैं। उसी प्रकार साधु भी अपना काम साधते हुए दूसरों के उपकारी बन जाते है। उनके मन में यह भावना नहीं होती कि हम दूसरों की भलाई के लिए अमुक काम कर रहे है। उनकी स्वाभाविक क्रियाएं ही दूसरों के उपकार करने में निमित्त भूत बन जाती है। पत्थर या कुल्हाड़ी मारने वाले के लिए भी जैसे वृक्ष फल प्रदान करने में परहेज नहीं करता वैसे सन्त जन भी गाली देने वाले या बुराई करने वाले का उपकार करने में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रखते। ऐसा कभी नहीं कहते कि अमुक आदमी ने हमारी बुराई की है अतः उसे हमारे व्याख्यान सुनने का अधिकार नहीं है। ‘ आत्मवत् सर्व भूतेषु ’ अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों के साथ वर्ताव करते है।

अब प्रश्न यह है कि जब गाथा में साधु शब्द आ गया है तब संयति शब्द के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी। टीकाकार इस बात का खुलासा करते है कि स्वपर कल्याण साधन रूप साधुता गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थ में भी हो सकती है। वह अल्पारंभ और अल्प परिग्रही रहता हुआ अपना और दूसरों का भला कर सकता है। साहित्य में, जो अपना स्वार्थ साधते हुए परमार्थ को नही भूलता उसके लिए भी साधु शब्द का प्रयोग पाया जाता है। गृहस्थ अपने बालबच्चों और स्त्री का पालन पोषण करता हुआ दीन हीन गरीब

ों का भी भरण पोषण कर सकता है। आप लोग केवल अपने कुटुम्बी जनों को अपनी
या मत प्राप्त प्रदान करो मगर दुःखी जनों के लिये भी अपनी पांखे फैलाये रहो। यदि
पने किसी दुःखी मनुष्य को दुतकार दिया तो आपको क्या समझना चाहिये। तब आप
स्थ साधु न रह जांयगें। मेघ कुमार ने हाथी के भव में पशु होते हुए भी गरीब ससले
आश्रय दिया था। क्या आप तिर्यञ्च पशु से भी गये बीते बनेगें। उस हाथी ने कितने
स्त्र और पोथियां पढ़ी थीं जिनके कारण उसमें इतनी उदारता आई थी। हाथी में बिना
थ वाचन के भी उदारता आ गई और आपमें ग्रन्थ वाचन के होते हुए भी जरूरत मन्दों
ी जरूरत पूरी करने की उदारता नहीं आई यह आश्चर्य की बात है। आपमें बहुत से
ई बी. ए., एम. ए. आदि डिग्रियों और रायसाहिब, रायबहादुर आदि उपाधियों के धारक
ते हुए भी पर दुःख भंजन करने की उदारता नहीं दिखाई देती।

मतलब कि गृहस्थोंमें भी चन्द लोग साधु हो सकते हैं। क्या श्रेणिक राजा ने उद्यान
ऐसे गृहस्थ साधु को देखा है ? नहीं। इसी बात का खुलासा करने के लिये आगे संयति
द का प्रयोग किया गया। वे संयति थे। संयम के धारक थे। पूरी तरह से आत्मा का
ल्याण साधने वाले थे। निरारंभी और निष्परिग्रही थे।

तीसरा सुसमाधिवन्त पद इस लिये दिया गया है कि बाह्य क्रियाओं का यथावत्
ालन करके ढोंगी लोग भी संयति कहे जा सकते हैं। अथवा जिनका ऊपरी दिखावा सारा
ाधु के जैसा ही हो किन्तु अन्तःकरण में केवली प्ररूपित धर्म के प्रति सन्देह हो जैसे
ोशालक और जामाली, वे सुसमाधिवन्त नहीं कहे जा सकते। वे उल्टे तत्त्व श्रद्धते थे।
नके मन में भ्रान्ति थी। अतः ऐसे साधुओं का व्यवच्छेद करने के लिए सुसमाधिवन्त
द दिया गया है। इन मुनि के मन में किसी प्रकार की भ्रान्ति न थी। इन की आत्मा
माधि में तल्लीन थी।

गाथा में कहा है पहले राजाने साधु को देखा है। अतः हम भी पहले साधु का अर्थ समझलें।

साधयति स्व पर कार्याणीति साधुः

जो अपना और दूसरों का काम साधता है वह साधु है। जिस प्रकार नदियां समुद्र की ओर जाती है मगर जाती हुई अपने आप पास के क्षेत्रों का सिञ्चन करती जाती है। उनका मुख्य उद्देश्य अपने आपको समुद्र में मिला देना है। मगर उनकी चेष्टाएं और क्रियाएं ऐसी है कि अपना काम साधते हुए दूसरों का भला हो जाता है। उनके पास पड़ने वाले प्रदेश हरे भरे और फल फूलों से संयुक्त हो जाते है। ठीक यही बात साधुओं के विषय में लागू पड़ती है। साधुओं का लक्ष्य अपना आत्म कल्याण करना है। अर्थात् अपने आप को परमात्मा रूप समुद्र में मिलाना है। मगर समुद्र मिलन रूप मुख्य कार्य के साथ, उनके आचरण से उनके आपपास रहने वाले और उनकी सोबत में आने वालों का बड़ा भला हो जाता है। साधु अपना मुख्य ध्येय त्याग कर दूसरों की भलाई करने में नहीं पड़ते किन्तु अपने साध्य की सिद्धि के साथ २ दुसरों का भी उपकार करते है। जिस प्रकार वृक्ष अपनी प्रकृति से ही फलते फूलते हैं दूसरों पर उपकार करने के लिए नहीं फलते फूलते। यह बात दूसरी है कि दूसरे उन का लाभ लेते है। उसी प्रकार साधु भी अपना काम साधते हुए दूसरों के उपकारी बन जाते है। उनके मन में यह भावना नहीं होती कि हम दूसरों की भलाई के लिए अमुक काम कर रहे हैं। उनकी स्वाभाविक क्रियाएं ही दूसरों के उपकार करने में निमित्त भूत बन जाती है। पत्थर या कुल्हाड़ी मारने वाले के लिए भी जैसे वृक्ष फल प्रदान करने में परहेज नहीं करता वैसे सन्त जन भी गाली देने वाले या बुराई करने वाले का उपकार करने में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रखते। ऐसा कभी नहीं कहते कि अमुक आदमी ने हमारी बुराई की है अतः उसे हमारे व्याख्यान सुनने का अधिकार नहीं है। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' अपनी आत्मा के समान सब प्राणियों के साथ वर्ताव करते है।

अब प्रश्न यह है कि जब गाथा में साधु शब्द आ गया है तब संयति शब्द के प्रयोग की क्या आवश्यकता थी। टीकाकार इस बात का खुलासा करते है कि स्वपर कल्याण साधन रूप साधुता गृहस्थावास में रहते हुए गृहस्थ मे भी हो सकती है। वह अल्पारंभ और अल्प परिग्रही रहता हुआ अपना और दूसरों का भला कर सकता है। साहित्य में, जो अपना स्वार्थ साधते हुए परमार्थ को नहीं भूलता उसके लिए भी साधु शब्द का प्रयोग पाया जाता है। गृहस्थ अपने बालबच्चों और स्त्री का पालन पोषण करता हुआ दीन हीन गरीब

जनों का भी भरण पोषण कर सकता है। आप लोग केवल अपने कुटुम्बी जनों को अपनी या मत प्राप्त प्रदान करो मगर दुःखी जनों के लिये भी अपनी पांखे फैलाये रहो। यदि आपने किसी दुःखी मनुष्य को दुतकार दिया तो आपको क्या समझना चाहिये। तब आप गृहस्थ साधु न रह जांयगें। मेघ कुमार ने हाथी के भव में पशु होते हुए भी गरीब ससले को आश्रय दिया था। क्या आप तिर्यञ्च पशु से भी गये बीते बनेगें। उस हाथी ने कितने शास्त्र और पोथियां पढ़ी थीं जिनके कारण उसमें इतनी उदारता आई थी। हाथी में बिना ग्रन्थ वाचन के भी उदारता आ गई और आपमें ग्रन्थ वाचन के होते हुए भी जरूरत मन्दों की जरूरत पूरी करने की उदारता नहीं आई यह आश्चर्य की बात है। आपमें बहुत से भाई बी. ए., एम. ए. आदि डिग्रियों और रायसाहिब, रायबहादुर आदि उपाधियों के धारक होते हुए भी पर दुःख भंजन करने की उदारता नहीं दिखाई देती।

मतलब कि गृहस्थोंमें भी चन्द लोग साधु हो सकते हैं। क्या श्रेणिक राजा ने उद्यान में ऐसे गृहस्थ साधु को देखा है? नहीं। इसी बात का खुलासा करने के लिये आगे संयति शब्द का प्रयोग किया गया। वे संयति थे। संयम के धारक थे। पूरी तरह से आत्मा का कल्याण साधने वाले थे। निरारंभी और निष्परिग्रही थे।

तीसरा सुसमाधिवन्त पद इस लिये दिया गया है कि बाह्य क्रियाओं का यथावत् पालन करके ढोंगी लोग भी संयति कहे जा सकते हैं। अथवा जिनका ऊपरी दिखावा सारा साधु के जैसा ही हो किन्तु अन्तःकरण में केवली प्ररूपित धर्म के प्रति सन्देह हो जैसे गोशालक और जामाली, वे सुसमाधिवन्त नहीं कहे जा सकते। वे उल्टे तत्त्व श्रद्धते थे। उनके मन में भ्रान्ति थी। अतः ऐसे साधुओं का व्यवच्छेद करने के लिए सुसमाधिवन्त पद दिया गया है। इन मुनि के मन में किसी प्रकार की भ्रान्ति न थी। इन की आत्मा समाधि में तल्लीन थी।

वे मुनि सुकुमार थे। सुकुमार का अर्थ है जो कामदेव को अच्छी तरह जीत ले। उनका शरीर कामदेव को भी जीतने वाला था। इसके साथ ही एक विशेषण 'सुहोइअं' और है। वे मुनि सुखो चित थे। उनका शरीर सुख में पला था। उन्होंने कभी दुःख या कष्ट नहीं पाया था। किसीआदमी ने तकलीफें झेली हुईहों तो उनकी छाया उसके शरीर पर थोड़े बहुत अंशों में रह जाती है। किन्तु पहले कष्ट सहा हुआ होने पर भी उनके शरीर

पर इस बात का कोई चिह्न नहीं था। मुनि चित का यह भी अ
सुख के योग्य था। वे सुख भोगने के योग्य रूपवान् थे।

आजकल गुणों की अपेक्षा रूप की कद्र ज्यादा क
बाल रखाते हैं और तेल साबुन का उपयोग करते हैं। रूपवा
अपना महत्त्व बढ़ाना चाहते हैं। हिन्दुओं के सिर पर
बाल रखाने के रूप में आगे आगई है स्त्रियों में भी लेडी
लेडी बनेंगी तो उनके पतियों को भी साहब बनना होगा।
मान रखा है। इसी अस्त्र के द्वारा वे पुरुष को अनेक प्रति
विक रूप कैसा होता है इसका उन्हें पता नहीं होता। व
नहीं है मगर हृदय से है। जिसका हृदय कलुषित हो उ
हो चेहरा विकृत ही होगा। चेहरे पर मनोभावों का अ

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर आश्चर्य
यदि बाल सँवारने मात्र से ही रूप होता तो उन मुनि
अच्छे कपड़े ही थे। श्रेणिक जैसा व्यक्ति जो कि
पारंगत था रूप और वर्ण की प्रशंसा कर रहा है इ
वर्ण और रूप असाधारण थे। मुनि के शरीर पर
फिर भी श्रेणिक ने इतनी प्रशंसा क्यों की इस बा
अधिक न कह कर केवल इतना ही कहना चाह
दिखावे पर अवलम्बित है जब कि पुरातन
प्रमाण से सुरूपता कुरूपता मानते थे। मनोग
है। ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की आंखों क
हुआ और पुष्ट होगा। व्यभिचारी का सुन्दर
का विशेष स्पष्टी करण सुदर्शन–चरित्र से

सुदर्शन चारित्र

सिखा मंत्र नवकार वा
उठत बैठत सोवत जा

सेठ ने सुभग को नवकार मंत्र लिखा कर उसका महत्व बताया और कहा कि यदि करोड़ों की सम्पत्ति मिल जाय और नवकार न हो तो सब वृथा है। और गरीबी अवस्था हो किन्तु नवकार मंत्र पास हो तो सब कुछ सार्थक है।

आज कल बच्चों में अच्छे संस्कार डालने का बहुत थोडा प्रयत्न किया जाता है। बच्चों को बचपन में मिली हुई सुशिक्षा जीवन पर्यन्त काम देती है। यदि बचपन में उल्टे संस्कार पड़ गये तो जीवन तक उसका असर भोगना पड़ता है। मेरी माता मुझे छोड़ कर चलबसी थी और पिताजी पांच साल का छोड़ कर। मेरा पालन पोषण मेरे मामा के घर हुआ है उसके पास थोड़ी दूर पर एक मकान है जो स्वाभाविक ही कुछ नीचा था। नीचा होने के कारण उसमें अंधेरा रहा करता था। स्त्रियाँ कहा करती थी कि उस मकान में भूत है। मैं यह बातें सुना करता था अतः रातको दूकान से घर आते समय उस भूत वाले मकान की तरफ होकर न आता था मगर चक्कर काट कर दूसरी ओर से घर आता था। मुझ में भूत के भय का जो संस्कार दाखिल हो गया वह दीक्षा अंगीकार करने बाद तक कायम रहा। मैं जिनकी नेश्राय में चेला बना वे गुरु डेढ मास बाद ही काल धर्म को प्राप्त हो गये। उस समय मैं पाँच मास तक पागल सा रहा। भय के पड़े हुए संस्कारों के कारण मुझे ऐसा मालूम होता था कि कोई प्रत्यक्ष ही मुझ पर जादू टोना कर रहा है लेकिन जब मैं अच्छा हुआ तब ज्ञात हुआ कि वह सब भ्रम था और कुछ न था।

पहले जमाने में भूत के भ्रम का बोल बाला था, अतः साहित्य में भी उसकी छाया नजर आती है। कदाचित् शास्त्र के विषय में कहो कि उस में भी भूतों का जिक्र है। शास्त्र में जो वर्णन है वह दूसरी तरह का है। इस प्रकार भय घुसेड़ने वाला वर्णन नहीं है।

सेठने सुभग में सुसंस्कार डाले। मानो सुभग के बहाने अपने पुत्र में ही सुसंस्कार डाले हो। अपनी कल्पना में घड़े हुए पुत्र के लिए जैसे संस्कार डालने चाहिए वैसे संस्कार सुभग में डाले। किसी हाथ में हथौड़ा हो लेकिन बुद्धि न हो तो वह हथौड़ा उसका पैर तोड़ सकता है और बुद्धि हो तो सुन्दर दागिना बनाया जा सकता है। हथौड़ा बड़ा नहीं है मगर बुद्धि बड़ी है। सेठने मगज की शक्ति रूप हथौड़े से मनः कल्पित पुत्र रूप दागिना बनाया है। सेठ ने सुभग में अच्छे संस्कार डाले अतः आगे जाकर उसके लिए यह कहा जाता है—

धन सेठ सुदर्शन शील पाली ने तारी आत्मा।

पर इस बात का कोई चिह्न नहीं था। सुखो चित का यह भी अर्थ होता है कि उनका
सुख के योग्य था। वे सुख भोगने के योग्य रूपवान् थे।

आजकल गुणों की अपेक्षा रूप की कद्र ज्यादा की जाती है। इसीलिए
बाल रखाते है और तेल साबुन का उपयोग करते है। रूपवान होने का दिखावा
अपना महत्त्व बढाना चाहते हैं। हिन्दुओं के सिर पर रहने वाली चोटी—
बाल रखाने के रूप में आगे आगई है स्त्रियों में भी लेडी फेशन घुस गई है। जब
लेडी बनेगी तो उनके पतियों को भी साहब बनना होगा। स्त्रियों ने रूप को अपना
मान रखा है। इसी अस्त्र के द्वारा वे पुरुष को अनेक प्रति मुग्ध करना चाहती है।
विक रूप कैसा होता है इसका उन्हें पता नही होता। वस्तव में रूप का सम्बन्ध
नहीं है मगर हृदय से है। जिसका हृदय कलुषित हो उसका शरीर सौन्दर्य कैसा भी
हो चेहरा विकृत ही होगा। चेहरे पर मनोभावों का असर रहता है।

राजा श्रेणिक ने मुनि को देखकर आश्चर्य से कहा, अहो वर्ण और अहो रूप।
यदि बाल सँवारने मात्र से ही रूप होता तो उन मुनि के न तो बाल सँवारे हुए थे और
अच्छे कपड़े ही थे। श्रेणिक जैसा व्यक्ति जो कि अनेक रत्नों का स्वामी और शृंगार शास्त्र
पारंगत था रूप और वर्ण की प्रशंसा कर रहा है इस से मालूम होता है कि उन मुनि के
वर्ण और रूप असाधारण थे। मुनि के शरीर पर किसी प्रकार की शृंगार सामग्री न थी
फिर भी श्रेणिक ने इतनी प्रशंसा क्यों की इस बात पर विचार करिये। इस विषय में
अधिक न कह कर केवल इतना ही कहना चाहता हूं। आधुनिकसभ्यता और ऊपरी टापटीप
दिखावे पर अवलम्बित है जब कि पुरातन भारतीय लोग हृदय की शुद्धी अशुद्धी
प्रमाण से सुरूपता कुरूपता मानते थे। मनोगत भावों का सुन्दरता पर गहरा असर पड़ता
है। ब्रह्मचर्य पालन करने वाले की आंखों की तरफ देखिये। उसका चेहरा कैसा खिला
हुआ और पुष्ट होगा। व्यभिचारी का सुन्दर रूप भी कुरूप मालूम पड़ता है। इस वि
का विशेष स्पष्टी करण सुदर्शन—चरित्र से होगा। अतः आप लोग ध्यान लगा कर सुनि

सुदर्शन चारित्र

सिखा मंत्र नवकार बाल, मन में करता ध्यान।
उठत बैठत सोवत जागत, बस्ती और उद्यान॥

सेठ ने सुभग को नवकार मंत्र लिखा कर उसका महत्व बताया और कहा कि यदि करोड़ों की सम्पत्ति मिल जाय और नवकार न हो तो सब वृथा है। और गरीबी अवस्था हो किन्तु नवकार मंत्र पास हो तो सब कुछ सार्थक है।

आज कल बच्चों में अच्छे संस्कार डालने का बहुत थोडा प्रयत्न किया जाता है। बच्चों को बचपन में मिली हुई सुशिक्षा जीवन पर्यन्त काम देती है। यदि बचपन में उल्टे संस्कार पड़ गये तो जीवन तक उसका असर भोगना पड़ता है। मेरी माता मुझे छोड़ कर चलबसी थी और पिताजी पांच साल का छोड़ कर। मेरा पालन पोषण मेरे मामा के घर हुआ है उसके पास थोड़ी दूर पर एक मकान है जो स्वाभाविक ही कुछ नीचा था। नीचा होने के कारण उसमें अंधेरा रहा करता था। स्त्रियाँ कहा करती थी कि उस मकान में भूत है। मैं यह बातें सुना करता था अतः रातको दूकान से घर आते समय उस भूत वाले मकान की तरफ होकर न आता था मगर चक्कर काट कर दूसरी ओर से घर आता था। मुझ में भूत के भय का जो संस्कार दाखिल हो गया वह दीक्षा अंगीकार करने बाद तक कायम रहा। मैं जिनकी नेश्राय में चेला बना वे गुरु डेढ मास बाद ही काल धर्म को प्राप्त हो गये। उस समय मैं पाँच मास तक पागल सा रहा। भय के पड़े हुए संस्कारों के कारण मुझे ऐसा मालूम होता था कि कोई प्रत्यक्ष ही मुझ पर जादू टोना कर रहा है लेकिन जब मैं अच्छा हुआ तब ज्ञात हुआ कि वह सब भ्रम था और कुछ न था।

पहले जमाने में भूत के भ्रम का बोल बाला था, अतः साहित्य में भी उसकी छाया नजर आती है। कदाचित् शास्त्र के विषय में कहो कि उसमें भी भूतों का जिक्र है। शास्त्र में जो वर्णन है वह दूसरी तरह का है। इस प्रकार भय घुसेड़ने वाला वर्णन नहीं है।

सेठने सुभग में सुसंस्कार डाले। मानो सुभग के बहाने अपने पुत्र में ही सुसंस्कार डाले हो। अपनी कल्पना में घड़े हुए पुत्र के लिए जैसे संस्कार डालने चाहिए वैसे संस्कार सुभग में डाले। किसी हाथ में हथौड़ा हो लेकिन बुद्धि न हो तो वह हथौड़ा उसका पैर तोड़ सकता है और बुद्धि हो तो सुन्दर दागिना बनाया जा सकता है। हथौड़ा बड़ा नहीं है मगर बुद्धि बड़ी है। सेठने मगज की शक्ति रूप हथौड़े से मनः कल्पित पुत्र रूप दागिना बनाया है। सेठ ने सुभग में अच्छे संस्कार डाले अतः आगे जाकर उसके लिए यह कहा जाता है—

धन सेठ सुदर्शन शील पाली ने तारी आत्मा।

सुदर्शन को जो धन्यवाद मिल रहा है उसमें पूर्व जन्म के संस्कार भी कारण है। कोई काम एक जन्म में ही पूरा नहीं हो जाता मगर कभी कभी अनेक जन्म भी लग जाते हैं। गीता में कहा है—

अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परांगतिम्।

अनेक जन्मों के सुसंस्कारों के बाद आत्मा परागति—मोक्ष को पहुँचता है। जिस प्रकार कुंभकार के द्वारा मिट्टी और सुनार द्वारा सोने का सुधार होता है। उसी प्रकार आपका और हमारा समागम हुआ है उससे अच्छा सुधार होना चाहिए। मगर सुधार में यह शर्त रहनी चाहिए कि पहले खुद का सुधार हो। यदि सेठ खुद सुधरा हुआ न होता तो नाटकीय पात्रों की माफक उसके कथन का सुभग पर कोई असर न हो पाता। सेठ सुधरा हुआ था अतः उसने अपना कलेजा निकाल कर उस में रख दिया। कवियों के लिए कहा जाता है कि मानों कविता में हृदय निकाल कर रख दिया है। अन्तःकरण से निकली हुई कविता के लिए ही ऐसा कहा जाता है। जिस व्यक्ति में सुसंस्कार पड़ गये हो वही दूसरों पर असर डाल सकता है।

आजकल व्याख्यान बड़े लम्बे लम्बे दिये जाते हैं मगर व्याख्यता स्वयं उन पर अमल नहीं करते। ऐसे व्याख्याताओं के व्याख्यान का क्या असर हो सकता है एक व्याख्याता के सम्बन्ध में सुना कि उनका व्याख्यान बहुत अच्छा था मगर व्याख्यान से आते ही लाओ २ की रट लगादी। कहने लगे अभी तक जलेबी नहीं आई दूध नहीं आया आदि ऐसी लेक्चर बाजी केवल नाटक का रूप धारण करती है। उसका असर कुछ नहीं होता।

सेठने सुभग को स्वांतः करण से आत्मीय जन की माफक शिक्षा दी थी। खुद भी नवकार मत्र पर पूर्ण श्रद्धा रखते थे। आजकल लोग नवकारमन्त्र का अभ्यास भूल गये हैं। आपका पैसा चला जाता है उसकी बड़ी चिन्ता करते हो मगर अमूल्य समय की कुछ भी परवाह नहीं करते हो। अंग्रेज जाति के लोगों को रुपयों की अपेक्षा भी समय की चिन्ता ज्यादा रहती है। भगवान् महावीर ने तो क्षण २ की चिन्ता करने का फरमाया है।

समयं गोयम ! मा पमाइये।

हे गौतम ! समय मात्र के लिए भी प्रमाद मत कर। भगवान् की इस शिक्षा को ध्यान में रखकर अपने मन को भगवन्नाम रूपी तार में पिरो दो। तार से अलग रहा हुआ मोती गिर जाता है। मन रूपी मोती को अलग रखोगे तो विमार्ग में चला जायगा।

स्त्रीयों को मैंने गाते सुना है कि जिस मुख पर राम का रंग नहीं है वह मुख नहीं देखना चाहिए। राम का रंग क्या है यह बात समझने की है। जो चोरी जारी आदि बुरे काम नहीं करता उसके मुख पर जो तेज है वह राम का रंग है। सदाचरण राम का रंग है। 'गई सो गई अब राख रही को' कहावत के अनुसार भूत कालीन बातों को भुलाकर वर्तमान को सुधारिये जिससे भविष्य उज्ज्वल बने। भगवद् भक्ति बिना एक सांस भी खाली मत जाने दो। एक भक्त कहता है—

दम पर दम हरि भज नहीं भरोसा दम का,
एक दम में निकल जायगा दम आदम का।
दम आवे न आवे इसकी आश मत कर तू,
एक नाम साईं का जप हिरदे में धर तू॥
नर इसी नाम से तरजा भवसागर तू,
एक नाम साईं का जप हिरदे में धर तू।
छल करता थोड़े जीने की खातिर तू,
वह साहिब है जल्लाद जरा तो डर तू।
वहाँ अदल पड़ा इन्साफ इसी दम दमका॥

आदम का अर्थ मनुष्य है। मनुष्य में दम आ इस अर्थ में आदम कहा जाता है। जब तक दम आता रहता है तब तक आदम है। दम आता रहता है इस बात की क्या सबूत है। इसके लिए कवि कहता है '**दम पर दम हरिभज**'। हर श्वास उच्छ्वास में हरि का भजन कर। '**हरति दुःखान् इति हरिः**' जो दुःखों का हरण करता है वह हरि है। भगवान् का चाहे कोई नाम हो मगर हर श्वासोच्छ्वास के साथ उसे जोड़ देना चाहिए। एक क्षण भी खाली मत जाने दो। ऐसा होने पर स्वप्न में भी प्रभु नाम हर श्वास में कायम रहेगा। एक कवि कहता है—

तो सुमिरन बिन या कलिजुग में अवर नहीं आधारो।
मैं वारी जाउं तो सुमिरन पर दिन दिन प्रीति वधारो॥

आप लोग दिन ब दिन परमात्मा का नाम भूलते जा रहे हो सो कहीं इस कारण से तो नहीं भूल रहे हो कि परमात्मा का नाम लेने पर झूठ कपट का सेवन नहीं किया जा सकेगा और इस प्रकार हमारा धंधा रोजगार बन्द होगया। अगर इसी विचार से नाम भुला रहे हो तो इसमें आपकी भूल है। जो परमात्मा का स्मरण भजन करेगा वह झूठा केस हाथ में न लेगा फिर भी भूखों न मरेगा। यदि नाम लेने वाले भूखों मरते हों तो आपको प्रभु नाम लेने के लिए कभी नहीं कहा जाता। यह बात जूदी है कि कभी आपकी कसौटी हो। मगर भूखों नहीं मर सकते।

सुभग को नवकार मंत्र पर पूरी आस्था बैठ गई अतः वह उसीका जाप करता। अब उसकी कसौटी का समय आता है। एक दिन सुभग जंगल में गाये लेकर गया। वह जंगल में ही था कि बहुत जोरों की वर्षा शुरु होगई। वर्षा साधारण न थी म घनघोर थी। बालक मन में विचार कर रहाथा कि इस प्रकार गरजना बरसना मेरी परी के लिए है। भक्त लोग कहते हैं—

गरजि तरजि पाषाण बरसि पवि प्रीति परखि जिय जाने।
अधिक अधिक अनुराग उमंग उर पर पर परमिति पहिचाने॥

ये बादल गरजते हैं, पानी बरसता है, बिजली चमकती है, कभी गिरती भी और ओले पड़ते हैं, यह सब परीक्षा के लिए है। हमने भजन किया है या नहीं भजन पर विश्वास है अथवा नहीं इस बात की जांच भी तो होनी चाहिए। पपीहा र का ही पानी पीता है दूसरा नहीं। जब बादल गरजते हैं और बिजली चमकती है तब वड़ा प्रसन्न होता है कि इस परीक्षा के बाद मुझे पानी मिलेगा। इसी प्रकार भक्त लोग ऐसे अवसरों पर घबड़ाते नहीं मगर डटकर सामना करते हैं।

सुभग यही सोच रहा है कि आज मेरी परीक्षा है। वह चाहता तो मन में सन्देह कर सकता था कि रोज रोज नवकार मंत्र का जाप करते रहने पर भी आज यह

आफत आगई। किन्तु नहीं। सच्चे भक्त इस प्रकार की औंधी कल्पनाएँ नहीं किया करते। वे सीधा सोचते और करते है। आपको जोर की प्यास लगी हो और कोई आदमी गाली सुनाता हुआ आपको पानी पिलाये, उस वक्त आप उसकी गाली की तरफ ध्यान दोगे या पानी पियोगे। कोई छात्र परीक्षा देने के लिए परीक्षा हॉल में आये और उस समय यदि कोई उसको गाली गलौच दे तो वह गाली देने वाले से लड़ने बैठेगा या अपना प्रयोजन सिद्ध करेगा। बुद्धिमान् गाली गलौच का खयाल न करके अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। आप लोग भी बुराइयों पर ध्यान न देकर इस संसार की परीक्षा में उत्तीर्ण होइये।

सुभग इस अवसर को अपने लिए कसौटी का समय मानकर गायें लेकर घर की ओर चल दिया। मार्ग नदी बहुत पूर से बह रही थी। नदी के दोनों किनारों से सटकर पानी बह रहा था। गायें तैर कर परली पार पहुंच गई मगर सुभग न जा सका। वह उस पार खड़ा खड़ा सोचने लगा कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए। अन्त में निश्चय किया कि जब मै नवकार मंत्र जानता हूं तब डर किस बात का। नदी का पूर कैसा भी हो मेरा साहस उससे कम नहीं है। वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया। इस विषय में अनेक तर्क वितर्क किये जा सकते हैं और उनका निवारण करने के लिए सामग्री भी है मगर कहने का समय नहीं है। अभी तो इतना ही ध्यान में रखिये कि वह नदी में कूदने के लिए वृक्ष पर चढ़ गया है। अब क्या होता है इसका बयान यथावसर किया जायगा।

राजकोट
१९—७—३६ का
व्याख्यान

साधुता का आदर्श
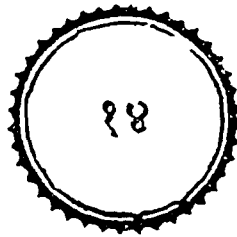
" पदम प्रभु पावन नाम तिहारो............... ।"
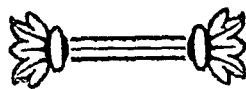
प्रार्थना अनेक तरीकों से की जा सकती है । इस प्रार्थना में वह तरीका अख्तियार किया गया है जो विद्वान और मूर्ख, बलवान् और निर्बल, धनवान् और गरीब, राजा और प्रजा, पुरुष और स्त्री, साधु और गृहस्थ सब के लिए समान रूप से उपयोगी है । इस में कहा गया है, परमात्मा का नाम स्मरण करना सब के लिए सुलभ है ।

संसार में जितने भी आस्तिक दर्शन हैं उनमें अन्य बातों के विषय में मत भेद हो सकता है मगर परमात्मा के नाम स्मरण की उपयोगिता के विषय में कोई मत भेद नहीं हो सकता है । हर एक दर्शन ने किसी न किसी रूप में परमात्मा के नाम स्मरण का महत्त्व स्वीकार किया है । जो निष्काम होकर प्रभुनाम का स्मरण करते हैं उनके शरीर में बहुत अलौकिक

गुण प्रकट हो जाते हैं। जो नाम स्मरण की बात सुन लेता है और सुनकर हँसी उड़ाता है उसके लिए नाम काम का नहीं है। नाम के साथ श्रद्धा होना बहुत जरूरी है।

नाम स्मरण में एक बात पर खास तौर से ध्यान रखना चाहिए। वह है नाम और नामी में अभिन्नता साधना। परमात्मा का नाम क्या लेना उसमें तल्लीन हो जाना चाहिए नाम और परमात्मा में भेद न रहने पाये।

शास्त्र-चर्चा—

मुझे शास्त्र में भी परमात्मा की प्रार्थना ही जान पड़ती है। राजा श्रेणिक साधु की भेंट करने के उद्देश्य से घर से नहीं निकाला था। आत्म कल्याण का साधन कब किस को मिल जाता है इसका कोई निश्चय नहीं है। इधर श्रेणिकका हवा खाने के लिए बगीचे में आगमन हुआ और उधर घूमते फिरते कहीं से अनाथी मुनि भी पधार गये। यह कैसा सुयोग मिला। मानना पड़ेगा कि इसके पिछे कोई अदृश्य शक्ति काम कर रही थी। आप प्रत्यक्ष प्रमाण से इस बात को न मानो मगर अनुमान से आपको मानना ही पड़ेगा। आपके शरीर पर पहने हुए कपड़े किसने बनाये। किसने रूई पैदा की और किसने उसे कातकर सूत बनाया। फिर कपड़ा बुना गया। किसी दूकानदार से आपने खरीदा। आपके कपड़ों के लिए अनेक लोगों ने अनेक प्रयत्न किये इस में आपकी कोई गुप्त शक्ति काम कर रही थी। जिसे भाग्य नसीब या अदृष्ट कह लीजिये। हमारे लिए बिलायत में सामग्री तैय्यार होती है इस में भी हमारा अदृष्ट शामिल है। इस संसार में स्थूल कारणों के पीछे प्रत्येक काम में गुप्त शक्तियां भी काम करती है। इन शक्तियों को धर्म शास्त्र में अदृष्ट भाग्य, नसीब आदि नामों से पुकारा गया है।

जब फल सामने आ जाता है तब जमीन में डटा हुआ बीज मालूम नहीं देता फिर भी अनुमान से मानना ही पड़ता है कि बीज जरूर रहा होगा। अन्यथा फल कहां से होता। राजा श्रेणिक और अनाथी का संमिलन हुआ है अतः मानना पड़ेगा कि इसमें कोई अदृष्ट कारण है।

राजा श्रेणिक मुनि को देखकर उनकी ओर इस प्रकार आकर्षित हुआ जिस प्रकार लोहा चुम्बक की ओर होता है।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तंमि संजये।
अच्चन्त परमो आसी, अउलो रूव विम्हिओ ॥५॥

अहो वरणो ! अहो रूवं ! अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंति ! अहो मुत्ति ! अहो भोगे असंगया ॥६॥

श्रेणिक राजा बाग में राजसी ठाट से गया था और मुनि बड़ी सादगी से वृक्ष नीचे बैठे है । वे मुनि संयति, सुसमाधिवन्त, सुकुमार और सुखोचित थे । 'सुहोइयं' अर्थ शुभोचित भी होता है । सब शुभ गुणों से युक्त उन मुनि का शरीर था ।

नाम की महिमा बहुत बताई गई है मगर नाम के साथ रूप का भी सम्बन्ध वैसे नाम के द्वारा किसी की पहिचान कराई जाती है किन्तु कभी रूप से भी नाम जाना जात और परिचय हो जाता है । राजा ने उन मुनि का रूप देखकर ही नक्की कर लिया था कि मुनि संयति और सुसमाधिवन्त हैं ।

ठाणांग सूत्र में चार प्रकार का सत्य बताया गया है । १ नाम सत्य २ स्था सत्य ३ द्रव्य सत्य ४ भाव सत्य । नाम से सत्य होता है मगर इसमें समझने की जरूरत किसी ने अपना नाम झूठा बता दिया । रूप सत्य भी होता है मगर किसीने झूठा रूप दिया । अतः नाम या रूप सत्य है या नहीं इसकी पहचान करने की जरूरत है । लोग से भी काम लेते है अतः सावधानी की आवश्यकता है । एक आदमी ने अपना नाम और था और बता कुछ और दिया । यह नाम सत्य कहां रहा । साधु नहीं है फि अपने को साधु बतायें । यह झूठ है या नहीं ? द्रव्य से है तो पीतल मगर उसे स बताये । कल्चर मोती को असली बताये । यह सब झूठ है । इसी प्रकार भाव में भी होता है । शास्त्र में कहा है—

तवतेणे वयतेणे रूवतेणेय जे नरा ।
आयारभाव तेणेय हवइ देवकिव्विसं ॥

तप, रूप, वय, आचार विचार आदि में झूठ चलाना अथवा इनकी चोरी क भाव चोरी है । जो भाव–विचार या खयालात अपने नहीं है फिर भी उनके सम्बन्ध में देना कि ये हमारे भाव हैं, यह भाव चोरी है । दूसरों के विचार अपने नाम से जाहिर क भी भाव चोरी है । नाम स्थापना द्रव्य और भाव चारों सत्य भी होते हैं और असत्य भ अतः इन में विवेक रखने की जरूरत है ।

वे मुनि तथा रूप थे उनका रूप सत्य था। जैसा उनका रूप था वैसा उनमें गुण भी था। रूप देखने से यह भी पता चल जाता है कि यह रूप असली है अथवा नकली-बनावटी है। बनावटी रूप छिपा नहीं रह सकता। उन मुनि का रूप देख कर राजा आश्चर्य में डूब गया। ऐसा रूप मैंने किसी में नहीं देखा।

राजा स्वयं बहुत सुन्दर था और उसने अपने जीवन में अनेक सुन्दर पुरुषों को देखे है। उसकी सुन्दरता का शास्त्र के वर्णन है। एक बार वह वस्त्र भूषण पहिन कर अपनी रानी चेलना के साथ भगवान महावीर के दर्शनार्थ समवसरण में गया था। यद्यपि भगवान के समवसरण में वीतराग भाव रहता है फिर भी उसके रूप का इतना आकर्षण पैदा हुआ कि वहां रही हुई कुछ साध्वियों ने यह निदान (नियाणा) कर लिया कि यदि हमे अगले भव में पति मिले तो श्रेणिक जैसा रूपवान मिले। इसी प्रकार चेलना का रूप देख कर कुछ साधुओं ने भी अपने तप संयम के फल स्वरूप उसके जैसी रूपवती स्त्री के लिये निदान किया था। मतलब कि श्रेणिक खुद भी बहुत रूपवान था।

यहां एक प्रश्न पैदा होता है कि रूप स्त्रियों में अधिक होता है या पुरुषों में। साहित्य में देखा जाय तो कवियों ने स्त्री रूप का वर्णन बड़े विचित्र ढंग से किया है। उन्होंने स्त्रियों के सामने सब पदार्थ तुच्छ बताये है। लेकिन भर्तृहरि ने कहा है कि यह सब कामान्धता का परिणाम है। उन्होंने स्त्री के रूप का दस प्रकार से वर्णन किया है।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनक कलशा वित्युपमितौ,
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम्।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवर कर स्पर्धि जघनम्,
अहो! निन्द्यं रूपं कविजन विशेषै गुरुकृतम्॥

किसी को किसी की तरफ राग भाव होता है और वह उसकी प्रशंसा करता है, यह स्वाभाविक है। किन्तु भर्तृहरि वैरागी थे। वे कहते हैं जो रूप अनेक प्रकार से निंद्य है, स्त्रियों के उस रूप को कविलोग व्यर्थ महत्त्व देते हैं। स्त्रियों के स्तन मांसग्रन्थी के सिवा और क्या हैं फिर भी कवियों ने उनको कनक कलश की उपमा देकर महत्त्व प्रदान किया है। यह इन की मोहान्धता है।

मोहान्ध पुरुष खराब वस्तु को भी अच्छी बनाता है यह स्वभाविक है। युरोपियन

कवि भी कहते हैं कि जब मनुष्य कामान्ध बन जाता है तब खराब वस्तु को भी अच्छ
कहता है और मानता है। भर्तृहरि आगे कहते है कि स्त्रियों का मुख कफपित्त थूक लार के
घर के सिवाय अन्य क्या है ? फिरभी कवियों ने उसको चन्द्रमा की उपमा दी है। इतनाह
नहीं किन्तु स्त्री के वदन के सामने चन्द्रमा को भी तुच्छ माना है। कवियों ने स्त्री के
हंसगामिनी और गजगामिनी रूप से वर्णित किया है। इस प्रकार स्त्री के अंग प्रत्यंगो क
वर्णन करके कवियों ने स्त्री रूप को बहुत महत्त्व दिया है। इस पर से यह प्रश्न उठता
कि क्या स्त्रियों में ही रूप होता है, पुरुषों में नहीं। इस विषय में कवि कहते हैं कि अ
बातो में पुरुष स्त्री की अपेक्षा ऊंचा हो सकता है मगर रूप के विषयमें उसका दर्जा नी
ही है। स्त्रियों के रूप के सामने पुरुष अपने जीवन को पतंग के समान समर्पित कर दे
है। स्त्रियों के रूप की मोहनी पुरुषों को अपने काबु में कर लेती हैं। रावण का सर्व न
स्त्री के रूप ने ही किया है। तुकोजीराव होल्कर को राज्य छोड़ने के लिए स्त्री की मोहि
ने ही विवश किया था। दामोदरलालजी महन्त एक वेश्या के पीछे ही खराब हुए हैं।
के गुलाम बनने और स्त्रियों में अधिक रूप है यह धारणा बांध लेने से वेश्याओं की
हुइ है और कुलांगनाओं को कष्ट भोगना पड़ता है।

क्या सचमुच स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सुन्दर होती हैं। यदि अ
सुन्दर होती तो उन्हें रूप वृद्धि के लिए कृत्रिम साधनो को इस्तेमाल करने की आवश्य
होती। जिसके मूल दांत अच्छे है वह बनावटी दाँत क्यों बिठायेगा। जिसकी आखोंमें रो
है वह चश्मा क्यों लगायेगा। जिसके पांव अच्छे है वह रबर या लकड़ी के पैर क्यों ल
येगा। कृत्रिम साधनों का उपयोग तब किया जाता है जब असलियत में खामी हो।
में रूप की पूर्णता होती तो वे सौन्दर्य वृद्धि के लिए नकली साधनों का उपयोग
करती। वे बनावटी साधनों से अपने को सजाती हैं इसी से मालूम होता है कि उनमें
की कमी है। स्त्रियों को श्रृंगार सामग्री बहुत प्रिय होती है अतः इसकी पूर्ति करके
उन्हे अपने काबू में करते हैं। दूसरी बात, प्राकृतिक रचना पर विचार करने से भी म
होता है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियॉ सुन्दर नही होती। पुरुष अधिक सुन्दर होते
मोहान्धता के कारण स्त्रियों को अधिक सुन्दर माना जाता है। मयूर और मयूरनी को
जगह खड़ा रखकर देखा जाय तो यह बात स्पष्ट मालूम होगी कि मयूर अधिक सुन्दर
है। मयूर की गर्दन और पूंछ मयूरनी से अधिक अच्छे होते हैं। मुर्गे और मुर्गी
देखिये। जैसी लाल चोंच मुर्गे की होती है वैसी मुर्गी की नहीं। गाय और सांड में

ी अधिक सुन्दर होता है। सिंह के गर्दन पर जैसे बाल होते हैं वैसे सिंहनी की गर्दन पर नहीं होते। हरिण जैसे सिंग हरिणी के नहीं होते। हाथी के समान सुन्दर दांत हथिनी के नहीं होते। पशुपक्षियों में भी मादा की अपेक्षा नर ही अधिक सुन्दर है। मनुष्य, सारी सृष्टि में उत्कृष्ट प्राणी है वह स्त्रियों की अपेक्षा कम सुन्दर कैसे हो सकता है। मोह के कारण अधिक सुन्दरता का आरोप किया गया है।

जो महापुरुष पहले स्त्रियों में अधिक सौन्दर्य मानते थे वे भी स्त्रियों के जाल से छुट निकलने के बाद यही कहते है कि स्त्रियों में क्या सौन्दर्य है जिस प्रकार मछली जाल से और सांड बंधन से अवसर मिलते ही भाग निकलते हैं इसी प्रकार ज्ञानी जन स्त्री की जाल में से निकल भागते है। भर्तृहरि भी पहले पिंगला को सर्वस्व मानते थे और उसके रूप को अच्छा समझते थे किन्तु बाद में उन्हे असालियत का पता लगा। तब वे उसे छोड़ कर चल दिए। कहा जाता है कि मजनू ने जिस लैला के पीछे अपने प्राण दिए थे वह देखने में भद्दी थी। वस्तुतः स्त्रियों में उतनी सुन्दरता नहीं है जितनी मानी जाती है।

मोहान्धता के कारण भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार की स्त्री को सुन्दर माना जाता है। यूरोप में बिल्ली की तरह आंखे वाली और भूरे बाल वाली स्त्री सुन्दर मानी जाती है। चीन में चपटी नाकवाली और सोमाली लेण्ड में जाड़े होठ वाली। यदि भारत में कोई स्त्री बिल्ली जैसी आंखों वाली, भूरे बाल वाली, चपटी नाक और जाड़े होठ वाली होतो लोग घृणा करने लगेंगे।

वास्तव में स्त्री शरीर में मल मूत्र कफ मांस और रक्त के सिवा अन्य क्या है। लेकिन काम वासना के वशीभूत होकर उसकी वास्तविकता को छिपाकर उसको चन्द्र, सूर्य हंस और गज आदि की उपमा दी जाती है इसी मोहान्धता के कारण साधु और साध्वियों ने चेलना और श्रेणिक का रूप निहार कर नियाणा किया था। जो कि भगवान् ने उनकी भावना जानकर निदान के भेद समझा कर प्रायश्चित्त देकर वापस उनको शुद्ध कर लिया था। मगर मोहान्धता ने एकबार साधुओं को भी नहीं छोड़ा।

श्रेणिक स्वयं रूपवान् था फिर भी मुनि का रूप देख कर अति आश्चर्य प्रकट करता है जिससे मालूम होता है कि वे मुनि महान् रूप सम्पन्न थे . वस्त्राभूषण आदि न होने पर भी उन मुनि में किस का रूप था। रूप, केवल चमड़े में ही नहीं होता। रूप का सम्बन्ध हृदय शुद्धि के साथ है। हृदय में जो रूप होता है। वह चेहरे पर निकलता है। मुनि के

शरीर पर मुकुट कुण्डल आदि न थे। वस्त्र भी थे या नहीं इसका पता नहीं है। बैठे भी वृक्ष के नीचे थे। फिर भी रूपवान् थे। अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि रूप हृदय में है।

श्रेणिक जैसे को भी रूपने आश्चर्य चकित कर दिया। उन मुनि का ऐसा कैसा रूप था। रूप की परीक्षा उसका विशेषज्ञ ही कर सकता है। हीरे की परीक्षा जौहरी ही कर सकता है। कहा जाता है कि कोहिनूर हीरा कृष्णा नदी के किनारे पर किसी किसान को मिला था। मिला किसान को मगर उसकी कीमत जौहरियों ने ही आँकी थी। राजा श्रेणिक हृदय का परीक्षक था अतः मुनि के रूप की सच्ची परीक्षा कर सकता था। उसने उनके हृदय को चेहरे और आँखों में देख लिया। यह बात आप भी जानते हैं कि दयालु और सदाचारी की आँखें कैसी होती है और व्यभिचारी की कैसी। आँखें देख कर ही आदमी के गुणावगुण का पता लग सकता है। पशु भी आँखें देख कर मनुष्य को समझ लेता है। देवता भी दयालु और सदाचारी के रूप पर मुग्ध हो जाते है। आप भी ऐसा रूप प्राप्त करने का यत्न करिये। कम से कम ऐसे रूपवान् की प्रशंसा तो अवश्य करियेगा। ऐसा करोगे तो भी कल्याण है।

सुदर्शन चरित्र

एक दिन जंगल से घर आता, नदिया आई पूर।
पेली तीर जाने को बालक, हुआ अति आतुर॥ धन. ११॥
धर के ध्यान नवकार मंत्र का, कूद पड़ा जल धार।
खैर खूंट घुस गया उदर में, पीड़ा हुई अपार॥ धन. १२॥
छोड़ा नहीं नवकार ध्यान को, तत्क्षण कर गया काल।
जिनदास घर नारी कूंखे, जन्मा सुन्दरलाल॥ धन. १३॥

वृक्ष पर चढ़कर सुभग उछलती हुई नदी की तरंगे देखने लगा। देखकर मन विचार किया कि वे मुनि नवकार मंत्र बोलकर आकाश में उड़ सके थे तो क्या मैं इस के द्वारा नदी भी न लांघ सकूंगा? मुझे भी मंत्र याद है। सेठजी ने मंत्र का प्रभाव ब[illegible] हुए कहा भी था कि यह मन्त्र नौका के समान है। मैं इसकी सहायता से नदी पार क[illegible] देर करना ठीक नहीं। सेठजी घर पर मेरी प्रतीक्षा करते होंगे।

इस प्रकार सोचकर सुभग नवकार मंत्र गिनता हुआ नदी में कूद पड़ा। नदी

एक खेर का खूंटा था। वह उसके पेट में घुस गया जिससे बेहद पीडा होने लगी। वह एकाग्रता से नवकार का ध्यान करने लगा। वेदना वृद्धि के साथ साथ उसके परिणाम भी उज्जवल होते जाते थे। भाइयों! मैंने स्वयं पीडा भोगी है अतः मुझे अनुभव है कि वेदना के समय कैसे भाव-परिणाम होते हैं। वेदना के समय मेरे परिणाम जैसे ऊंचे थे वैसे वेदना अच्छी होने पर नहीं हुए। मैंने उस समय के अपने परिणाम नोट कर दिए थे मगर एक साधु ने नोट के कागजों को रद्दी समझ कर फाड़ दिये। कपासन चातुर्मास में भी फोड़े के कारण मुझे वेदना हुई थी उस समय भी मेरे परिणाम बहुत उत्तम रहे थे। उस एक घटना के विषय में मैंने एक ग्रन्थ तय्यार करवा दिया था। अब यदि ऐसा ग्रन्थ लिखना चाहूं तो शायद न लिखा सकूं। मुझे जब दाह की पीड़ा हुई थी तब युवाचार्य श्री गणेशीलालजी मेरे पास मौजूद थे। उस समय मैंने नाथ अनाथ का जैसा स्वरूप समझा वैसा कभी न समझा इससे मालुम होता है कि वेदना के समय परिणाम कितने उज्वल हो सकते है।

जो व्यक्ति परमात्मा का ध्यान करता है और कष्ट आने पर भी उसे नहीं छोड़ता वह महा पुरुष है। सुभग का ध्यान वृद्धिगत होने लगा। अन्त में खूटे की पीड़ा से वह काल कर गया।

इस घटना के सम्बन्ध में यह प्रश्न होता है कि नवकारमंत्र के प्रभाव से जब शुली का सिंहासन तक हो जाता है फिर यहां नवकार मंत्र ने सुभग की रक्षा क्यों नहीं की। नवकार मंत्र की वह शक्ति कहा चली गई? इस प्रश्न का समाधान किये बिना लोगों को शान्ति नही मिल सकती। अतः समाधान करने के लिये चन्द शब्द कहता हूं।

गज सुकुमार मुनि के सिर पर अग्नि के खीरे रखे गये थे। उन्होने कौनसा अपराध किया था इससे उनके सिर पर खीरे रखे गये। वे भगवान अरिष्टनेमी के शिष्य थे उन्होने राजसी सुख छोड़ कर सयम धारण किया था। क्या सयम लेने से उनके सिर पर अग्नि रखी गई? क्या यह दोष संयम पर मढा जाय! कदापि नहीं। खीरों के होने से उन्होने यह सोचा कि मेरा कर्ज उतर रहा है। दो मनुष्यों को जो कि कर्जदार थे कुछ धन मिल गया। एक ने अपनी स्त्री के जेवर बनाने की बात सोची और दूसरे ने कर्ज अदा करने की। दोनों में से कौन आदमी अच्छा और प्रामाणिक गिना जायगा? कर्ज उतारने वाला ही प्रामाणिक गिना जायगा। गजसुकुमार ने भी यह समय कर्ज उतारने के लिए

उपयुक्त समझा। उन्होंने मस्तक पर रखे गये खीरों में बुराई अनुभव नहीं की। हम बीच में कौन होते हैं जो खीरे रखने की बात को बुरा कहने लगें।

बीमार को शक्कर कड़वी लगे और किसी को नीम मीठा लगे इस से शक्कर कड़वी और नीम मीठा नहीं हो जाता। विकृति के कारण ऐसा होजाता है। इस भौतिक दृष्टान्त से आध्यात्मिक बात को समझने की कोशिश करिये। ये खीरे नहीं है मगर मेरी अनादि कालीन बिमारी को मिटाने के लिए दवा है। कोई भाई इस वर्णन से यह अर्थ न निकाल ले कि मरते हुए जीव को बचाने की आवश्यकता नही क्योंकि वह अपना कर्ज उतार रहा है। जो स्वेच्छा पूर्वक कष्ट सहन करें उनमें और जो निरूपाय होकर जबरदस्ती कष्ट सहन करें उनमें बड़ा अन्तर है। पहली अवस्था में शुभ ध्यान रहता है दूसरी में आर्तरौद्र ध्यान।

सूभग को सेठ के यहां जन्म लेना था। बिना पूर्व शरीर का परित्याग किये नवीन शरीर धारण नहीं किया जा सकता। नवकार मंत्र के प्रभाव से ही वह शुभ योगवाले कुटुम्ब में जन्म धारण करता है। अतः मंत्र के प्रभाव के विषय में शंका लाने की जरूरत नहीं है। कभी तत्काल फल मिलता है और कभी देरी से। फल के साथ संयोगों का भी सम्बन्ध रहता है।

यदि सुभग का आयुबल शेष होता तो उसके बचाव के लिए किसी देव द्वारा जहाज लेकर उपस्थित होना कोई बड़ी बात न थी। उसका आयु पूरा होचुका था अतः खीरी पलटने में नदी निमित्त कारण बन गई। इस विषय में कोई एक ही बात पकड़ बैठना ठीक नहीं है। अनाथी मुनि ने तो यह निश्चय किया था कि रोग मिट जाय तो संयम ले लूं और सनत्कुमार मुनि ने रोग मिटाने के लिए उद्यत देव से कह दिया था कि रोग मत मिटाओ यह मित्र के समान कर्म नाश करने में मेरा सहायक है। इस विषय में क्या कहा जाय? जहां जैसा प्रसंग होता है वहां वैसा करना पड़ता है।

आजकल बुद्धिवाद का जमाना है अतः लोग अजीब अजीब शंकाएं करते हैं। कहते हैं राम ने बिना अपराध सीता को बन में छोड़ दिया, युधिष्ठिर ने द्रौपदी को दांव पर रख दिया और अपने सामने वस्त्र हरण करने दिए तथा नल ने दमयन्ती को भीषण वन में छोड़ दिया। ये हैं महापुरुषों के चरित्र।

भाइयों ! इन शंका करने वालों से मैं पूछता हूँ कि इस विषय में आपके विचार पर ान दिया जाय या जिनपर गुजरी है उन सीता द्रौपदी और दमयन्ती के विचारों को देखा ाय। वे जब अपने अपने पतियों को दोष नहीं देतीं वैसी हालत में आप वकालत करने वाले ान होते हैं। वे अपने पतियों को किस दृष्टि से देखती थी। इस बात पर खयाल करके अपने ़माग को ठीक कर लीजिये।

सुभग के विषय में भी शंका ठीक नहीं है। यद्यपि वह मर गया मगर मरने पर उसे ा मिला यह देखिये। आस्तिक लोग एक जन्म नहीं देखते। वे पुनर्जन्म पर विश्वास करते हैं। तः उनके दिमाग में ऐसी शंका नहीं उठती।

सुभग मर कर अर्हद्दासी की कूख में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। आगे क्या होता है यह त यथासर कही जायगी। विपत्ति पड़ने पर परमात्मा का स्मरण, संपत्ति है और विस्मरण विपत्ति । यह बात याद रखेंगे तो कल्याण है।

राजकोट
२०—७—३६ का
व्याख्यान

वर्ण और रूप

१५
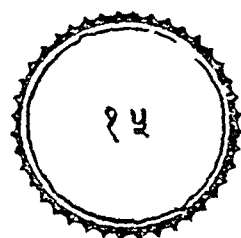
श्री जिनराज सुपार्श्व पूरो आश हमारी ॥ प्रा० ॥
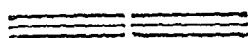
भक्त लोग प्रार्थना में सारे संसार का निर्वाह होने की संभावना देखते हैं। अतः वे सब जीवों का एक ध्येय मानते हैं। इस पर से प्रश्न होता है कि संसार के लोगों की मनोदशा अलग अलग है। सब जीव त्यागी नहीं है। '**मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना**' के अनुसार हर प्राणी की रुचि और बुद्धि भिन्न भिन्न है कोई धनका इच्छुक है कोई धर्मका कोई काम का इच्छुक है और कोई मोक्ष का। ऐसी अवस्था में एक ही प्रार्थना में सब का निर्वाह कैसे हो सकता है। सब की इच्छायें कैसे फली भूत होसकती है। ज्ञानी इसका उत्तर देते है कि परमात्मा की प्रार्थना से किसी भी वस्तु की कमी नहीं रह सकती। जब कल्प वृक्ष ही मिलजाय तब कौनसी इच्छा अपूर्ण रहजाय। चिन्ता मणि के मिलने पर क्या

खामी रहे। काम धेनु के मिल जाने पर भेड़ या गधी के दूध की क्या कमी रहेगी। परमात्मा की प्रार्थना से सब कामनाएं पूर्ण हो जाती है विविध प्रकार की इच्छाएं मिटकर एक इच्छा रह जाती है। प्रार्थना करने का मकसद ही यह है कि आकाश के समान अनन्त इच्छाएं मिटकर एक ही इच्छा बाकी रह जाय वह इच्छा है अपने आपको परमात्मा में मिलादेने की भावना जो सच्चे दिलसे भगवान की प्रार्थना करते हैं उन की सब मनो कामनाएं पूर्ण हो जाती है अर्थात् कामनाएं कामना ही नहीं रह जाती।

प्रार्थना पूर्ण है और मैं अपूर्ण हूं अतः उसका समग्र विवेचन शक्य नहीं है। जिस प्रार्थना को चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्ष की उपमा दी जाती है उसका मै कैसे वर्णन कर सकता हूं। पूर्ण का वर्णन मनुष्यों द्वारा नहीं हो सकता। भक्ति शास्त्र में मैने पढ़ा है कि—

सा तास्मिन परम प्रेम रूपा

अर्थात् मनुष्य में जो भक्ति है वह परम प्रेम रूप है। परम प्रेम में तल्लीन होजाना हृदय की सब कामनाओं को मिटा देना भक्ति है। प्रेम तल्लीन होजाने का अर्थ है आत्मा के प्रेम में तल्लीन होजाना। आत्मा सो परमात्मा। आत्मा के अतिरिक्त भौतिक वस्तुओंसे दिल को खींच लेना और परमात्मा में अपने आपको जोड़ देना वास्तविक भक्ति है। वस्तु हमारे पास है मगर विवेक की जरुरत है। विवेक पूर्वक भक्ति की जाय कोई कमी न रहने पाये।

शास्त्र चर्चा–

भक्तियुक्त हृदय में कैसे विचार होते हैं, यह बात शास्त्र द्वारा बताता हूं। राजा श्रेणिक बुद्धिमान था। अपने सौ भाईयों में वह सबसे बुद्धिमान था। विद्वान् तथा रूपवान् भी था। फिर भी वह उन मुनि के विषय में क्या कहता है 'अहो! इनका वर्ण। अहो! इनका रूप। इनके हृदय की सौम्यता क्षमा, मुक्ति और भोगों में अनासक्ति, अवर्णनीय है'।

इन दो गाथाओं में श्रेणिक के हार्दिक भावों का चित्र खिंचा हुआ है। इन गाथाओं पर विशेष विचार किया जाय तब मालूम हो कि श्रेणिक क्या है? उन मुनि का रूप अतुल था। किसी के साथ उनके रूप की तुलना नहीं की जा सकती।

किसी प्यासे के सामने दो वस्तु उपस्थित की जाय। एक सुन्दर शीशी में इत्र और दूसरे मिट्टी के पात्र में ठंडा पानी। वह प्यासा मनुष्य किस वस्तु को लेना पसंद करेगा?

निश्चय ही वह पानी के बरतन को लेना पसंद करेगा जब प्यास न हो तब इत्र को पसन्द करे यह दूसरी बात है। और पैसे होतो खरीदा भी जा सकता है। मगर पियास के समय पानीही पसंद किया जायगा। इत्र नहीं। किसी भूखे के सामने एक तरफ बाजरे की रोटी और दाल आये तथा दूसरी तरफ मिट्टी के बने केले आदि पदार्थ आये तो वह क्या लेना पसन्द करेगा। भूखा भोजन ही चाहेगा। उसी प्रकार श्रेणिक राजा उन मुनि के रूप के सामने दुनिया की सब वस्तुओं को तुच्छ मान रहा है। वह मान रहा है, इत्र और खिलौनों के समान अन्य सब तुच्छ है। अन्य रूप मेरी भूख प्यास नहीं मिटा सकते मगर मुनि का रूप मेरी मनोकामनाओं को पूरी करने वाला है। यह सोचकर ही वह कह रहा है अहो ! वर्ण और अहो ! रूप।

वर्ण और रूप में क्या अन्तर है ? शरीर के सुन्दर आकार के अनुसार जिसका रंग सुन्दर होता है उसे सुवर्ण कहा जाता है। उदाहरण के लिए सोने को समझिये। सोने को सुवर्ण कहा जाता है। यदि केवल अच्छे वर्ण अर्थात् रंग के कारण ही सोने को सुवर्ण कहा जाय तो अच्छा वर्ण पीतल का भी है। उसे सुवर्ण क्यों नहीं कहा जाता सोने में वर्ण के साथ दूसरी विशेषता भी है। सोने के परमाणुओं में यह विशेषता है कि यदि सोने को हजारों वर्षों तक जमीन में गाड़ कर रखा जाय और फिर बाहर निकाल कर तोला जाय तो उसका वजन पूरा उतरेगा। उसका वजन कम न होगा तथा उस पर जंग वा कीट न चढेगा। यह विशेषता पीतल में नहीं है। पीतल पांच दस वर्षों में ही बिगड़ जाता है. उस पर कीट चढ जाता है। सोने में एसी चिकास है कि वह सड़ता नहीं है। दूसरे वह तोल में भी बहुत भारी होता है। तीसरे उसके बारीक से बारीक तार निकाले जा सकते हैं।

राजा श्रेणिक अन्य लोगों के वर्ण की इनके साथ तुलना करके फिर कहता है अहो ! इनका वर्ण अतुल्य है। दूसरों के वर्ण में जल्दि या देरी से कीट लग सकता है मगर इन मुनि के वर्ण में धब्बा लगने की कोई संभावना नहीं है। मुनि के वर्ण में और अन्य के वर्ण में वही भेद है जो पीतल और सोने के वर्ण में है। मुनि सोने के समान थे। क्या मुनि को भी गाड़ रखने पर जंग न लगेगा ? क्या उनको काल न लगेगा ? इसका उत्तर यह है कि जो नाथ है उन्हें कौन पृथ्वी में गाड़ सकता है। सोना जड़ है अतः गाड़ा जाता है और तपाने पर गल भी जाता है। उनको न आग तपा सकती है और न पवन हिला सकता है। उनका रूप देवों से भी श्रेष्ठ था क्योंकि देवों का रूप बिगड़ सकता है मगर उनका रूप सदा शाश्वत था।

अन्य लोग रूप के दास होते हैं मगर वे मुनि रूप के नाथ थे । राजा श्रेणिक भी यह विचार कर रहा था कि हम लोग रूप के गुलाम हैं मगर ये रूप के नाथ है । इनकी आंखों में न अंजन है और न शरीर पर कोई आभूषण ही है फिरभी मेरा रूप इनके सामने तुच्छ है ।

आपके सामने कोई आदमी सोने की अंगूठी पहन कर आये तब आपको कोई आश्चर्य न होगा यदि आपके हाथ में हीरे की अंगूठी हो । किन्तु यदि आपके हाथ में चांदी की अंगूठी हो तब आपको सोने की अंगूठी देखकर अपनी चांदी की अंगूठी तुच्छ मालूम देगी । इसी प्रकार राजा के जिस रूप को देखकर निर्ग्रन्थ साध्वियां भी ललचा गई वह रूप मुनि के सामने तुच्छ मालूम दे रहा है । राजा में जो द्रव्य भाव रूप है वह विकारी है । किन्तु मुनि में जो द्रव्य-भाव रूप है वह निर्विकारी है ।

आजकल लोग द्रव्य रूप के पीछे भाव रूप को भूल रहे हैं । अन्त में भाव रूप का ही शरण लेना पड़ेगा मगर अभी भूल हो रही है । भाव रूप के सामने द्रव्य रूप तुच्छ है । द्रव्य रूप हो और भाव रूप न हो तो उस द्रव्य रूप अर्थात् सौन्दर्य की कोई कद्र नहीं होती है । आज नदी के किनारे जंगल जाते हुए मैंने देखा कि एक ब्राह्मण मिट्टी के शंकर की मूर्ति, नाग गणेश आदि बड़ी कलापूर्ण रीति से बनाता है । लोग उससे खरीद कर दूसरे ही दिन उनको नदी की गोद में रख देते है । इसी प्रकार गनगौर को भी लोग खूब सजाते हैं और वस्त्राभूषण भी पहिनाते हैं मगर खेल हो जाने पर उसे पानी में फेंक दिया जाता है । राजरानियां भी गनगौर को पूजती हैं । गनगौर के पास खड़ी किसी जीवित स्त्री को राजा रानी नहीं पूजती । क्या इस से गनगौर की अपेक्षा जीवित स्त्री का मूल्य कम हो जाता है ? कदापि नहीं । गनगौर को पानी में फेंकदिया जाता है । जीवित स्त्री को नहीं । गनगौर में द्रव्य रूप ही है भाव रूप नहीं है अतः नदी में डाल दी जाती है । मगर स्त्री में द्रव्यरूप कुरूप भी हो तब भी भावरूप होने के कारण नदी में नहीं फेंकी जाती । यदि कोई स्त्री को नदी में डाल देतो वह अपराधी माना जायगा । अपनी स्त्री को भी कोई नदी में नहीं डाल सकता । द्रव्यरूप पौद्गलिक है अतः नाशवान् है किन्तु भावरूप चेतनमय है अतः सदा शाश्वत है ।

वर्ण और रूप में क्या अन्तर है यह मूल प्रश्न अभी बाकी ही है । सोने में और उस की आकृति में जो अन्तर है वही वर्ण और रूप में है । सोना वही है किन्तु कुशल कारीगर सुंदर गहने बनायेगा और अकुशल भद्दे बनायेगा । द्रव्य समान होने पर भी कारीगरी के कारण

में अन्तर हो जाता है। रंग अच्छा हो किन्तु यदि कान नाक आंख आदि अंग सुन्दर न होतो उस दशा में रंग अच्छा मालूम न होगा। रंग के साथ आकृति अच्छी हो तभी शोभा है। मुनि का रंग भी अच्छा था और आकृति भी सुन्दर।

एक आदमी की आंखें बड़ी और एक की छोटी होती है। नाप पर यह अन्तर नहीं मालूम होता। फिरभी बड़ी दिव्य प्याले जैसी आंखों वाले में और छोटी आंखो वाले में बड़ा अन्तर होता है। सीता के स्वयम्वर में बड़े बड़े राजा लोग बैठे हुए थे। किन्तु सीता ने राम ही को पसन्द किया। उसे राम की आंखो में कोई विशेषता नजर आई थी। वह विशेषता थी उनकी अनुत्सुकता जब कि अन्य राजाओं की आंखे सीता के लिए बड़ी उत्सुक हो रही थीं रामचन्द्र उदासीन-अनासक्त भाव से बैठे थे जब किसी राजा ने धनुष न उठाया और जनक ने यह कह दिया कि— 'वीर विहीन मही मैं जानी' तब लक्ष्मण ने राम से कहा कि आपकी उपस्थिति में पृथ्वी वीर विहीन कैसे कही जा रही है? आपकी आज्ञा हो तो धनुष क्या चीज़ है ब्रह्माण्ड भी उठा लूं। लक्ष्मण के ऐसा कहने पर भी धीर गंभीर राम शान्ति पूर्वक बैठे रहे। और कहा किसी राजा को यह धनुष उठाना हो वह उठा सकताहै। बादमें कोई यह न कहदे कि मेरी मुराद रह गई। जब किसी ने न उठाया तो राम ने धनुष्य उठाया और सीताका वरण किया रामकी आंखों में बेपरवाही थी। उनमें कामुकता या विषय विकार का लालच न था। यही तो सच्चा रूप है यही सौन्दर्य है।

यदि आप लोग भी ऐसे बनो तो इन्द्र भी आपका गुलाम हो जायगा। आप स्त्री रूप के गुलाम मत बनिये। स्वतंत्र बनने की कोशिश करिये। आपको स्वतंत्र बनाने के लिये ही व्याख्यान सुनाये जाते है अतः स्वतंत्र बनिये।

मैने एक पुस्तक में पढ़ा है कि 'राजा प्रजा आदि के अनेक जुल्म हैं। मगर सबसे बड़ा जुल्म स्नेहराग है। स्नेहराग रूप जुल्म के विरुद्ध विद्रोह करने वाला सुशास्त्र है। राजा की भी शक्ति नहीं है कि वह स्नेहराग का विद्रोह कर सके'।

वीतराग प्रणीत शास्त्र स्नेह राग का सामना कर सकते है शास्त्र किस प्रकार स्नेह राग का सामना करते हैं यह बात बहुत लम्बी है अतः अभी उसका जिक्र न करके यह कहता हूं कि राजा का स्नेह राग मुनि को देख कर बदल गया अहो? रूप तो इन्हीं का है। आगे के पदों का अर्थ यथावसर किया जायगा।

सुदर्शन—चरित्र

छोड़ा नहीं नवकार ध्यान को, तत्क्षण कर गया काल ।
जिनदास घर नारी कूंखे, जन्मा सुन्दर बाल । रे धन० ॥ ३ ॥

बालकों में जैसा विश्वास और दृढ़ता होती है वैसा विश्वास और दृढ़ता बड़ों में नहीं देखी जाती । किसी बालक से उसके माता पिता यदि यह कह दें कि छत पर से कूद पड़ तो वह कूदने के लिये तय्यार हो जाय मगर बड़ा आदमी शायद ही तय्यार हो । किसी बड़े आदमी को वृक्ष से नदी में कुदने के विषय में अनेक तरह के संदेह हो सकते है, मगर सुभग को कोई सन्देह नहीं हुआ । वह तो यही सोच रहा था कि मैं परीक्षा दे रहा हूं । वह नदी में कूद पड़ा । नदी में कूदते वक्त भी उसकी वही उमंग थी जो पहले थी ।

कई लोगों की हानि न हो तब तक दूसरी उमंग होती है और हानि की संभावना देखते ही उनकी उमंग भी बदल जाती है । ज्ञानी लोग अपनी दशा बालकों जैसी बना लेते हैं । किसी छ मास के बालक को कोई गाली दे या अपमान करे वह समझ न होने के कारण दुःख नहीं मानता । ज्ञानीजन समझ होने पर भी गाली और अपमान अनुभव करके दुःख नहीं मानते । वे बालक के समान निर्विकारी और राग द्वेष से रहित होते है । सुभग पूरा विश्वासी था अतः नवकार मंत्र बोलता हुआ नदी में कूद पड़ा ।

आपके कान में दस बीस हजार की कीमत के मोती हों अथवा गले में कण्ठा हो उस समय कोई बैल आपके पेट में सींग मार दे अथवा कोई छुरा मार दे तो क्या आप वेदना अनुभव करते हुए भी मोती या कंठे की कीमत कम मानेंगे ? बुखार आजाने पर क्या बुखार मिटादेने के लिए कण्ठा दे सकते है ? आप कहेंगे बुखार और कण्ठे का क्या सम्बन्ध है । सुभग ने वेदना का सम्बन्ध नवकार के साथ नहीं जोड़ा । उसे नवकार मंत्र पर किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ ।

कई लोग धर्म से कृत्रिक प्रेम करते हैं । वे धन, माल, स्त्री, पुत्र आदि पर जितना प्रेम करते है उतना धर्म से नहीं करते । आपत्ति आजाने पर मोती आदि की कीमत कम नहीं मानने लगते मगर धर्म करते जरासी आपत्ति आगई तो सारा दोष धर्म को देने लग जाते है । ऐसी अवस्था में धर्म पर विश्वास कहाँ रहा ? कष्ट के समय भी दृढ़ता रहे तब समझना चाहिए कि विश्वास है ।

आपका शरीर अस्वस्थ हो, हीरा लेकर आप जौहरी के पास जाओ तब भी वह पूरी कीमत देगा। शरीर की अस्वस्थता का प्रभाव हीरे की कीमत पर नहीं पड़ता। उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार धर्म और संसार व्यवहार का कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म आत्मा के लिए है। लेकिन लोगों को धर्म पर विश्वास नहीं होता। ज्ञानियों को कितना भी कष्ट हो वे अपने सिद्धान्त से नहीं गिरते। प्रह्लाद यदि राम का नाम लेना त्याग देता तो उसे अपने पिता का राज्य मिलता। राम नाम न त्यागने से उसे अनेक कष्ट भोगने पड़े। क्या उसने कभी राम नाम को दोष दिया? उसने यही सोचा कि मैं राम नाम अपनी आत्मा के लिए जपता हूं। शरीर का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

सुभग ने नवकार मंत्र का ध्यान नहीं छोड़ा और जाप करता हुआ काल कर गया। आप कहेंगे, क्या काल कर जाना धर्म का फल है इसका उत्तर है, हाँ, काल कर जाना भी धर्म का फल है। आप लोग केवल कार्य को देखते हैं हम कारण सुधारने का उपदेश देते हैं। आप लोग जिस इलक्ट्री से प्रकाश ग्रहण करते हैं उसका पावर हाऊस यदि बन्द होजाय तो क्या प्रकाश मिल सकता है? क्या तब लगे हुए ग्लोब में लाइट आ सकती है। कदापि नहीं तब ग्लोब (लट्टू) बड़ा रहा या पावर हाऊस (बिजलीघर)? पावरहाऊस में गन्दगी होती है और भड़ भड़ आवाज होती है किन्तु ग्लोब सुन्दर सजे हुए कमरों में लगा रहता है। मगर ग्लोब को प्रकाशदान पावरहाऊस ही करता है। आप जिस सोने को बहुत पसन्द करते हैं, उस की खानों में कितनी भीड़ और धमाल रहती हैं। भीड़ और धमाल में से ही सोना मिलता है आप लोग आराम से बैठ कर भोजन करते हैं किन्तु भोजन तय्यार होने में कितनी दिक्कतें और कष्ट सहे गये यह बात आपकी अपेक्षा बहिने अधिक जानती हैं। आप लोग केवल बना बनाया कार्य देखते हैं, कारण नहीं देखते। ज्ञानी कारण का खयाल करते हैं। सुदर्शन बनने का जो कार्य है, उसका कारण नवकार मंत्र का ध्यान न त्यागना है। सुदर्शन बनने वह खूंटा कारण था जिसकी वजह से सुभग ने नवकार मंत्र को गाढा पकड़ रखा। एक भक्त ने कहा है—

> हरिनो मारग छे शूरा नो, नहि कायर नु काम जोने।
> परथम पहेलुं मस्तक मूकी, वलती लेवुं नाम जोने ॥

भगवान् का नाम लेना वीरों का काम है। कायर नाम नहीं ले सकते। पहिले सिर को अलग रखने की सामर्थ्य होनी चाहिए फिर परमात्मा का नाम लेना चाहिए। कहने

ावार्थ यह है कि जिसका शरीर पर से मोह उतर गया हो वह परमात्मा का नाम लेने ोग्य है। शूर से मतलब यहाँ उस योद्धा से नहीं है जो रण संग्राम में अस्त्र शस्त्रों द्वारा त्रु सेना का विनाश करता है। यहां शूर का अर्थ है, जो काम क्रोध लोभ मोह आदि न्तरंग शत्रुओं पर विजय करता हो। आध्यात्मिक मार्ग में बुद्धिवाद से काम नहीं चल कता। श्रद्धा प्रधान है बुद्धि मनुष्य को भ्रम जाल में फंसा देती है। श्रद्धा में ैर्य है आनन्द है।

बालक नवकार मंत्र जपतारहा। यह सेठ का दिया हुआ प्रसाद था। भाव शुद्धि के लिए दिया गया यह दान कुछ कम महत्व का न था। आपलोग धन खूट जाने के डर से ान नहीं देते हैं। इस ओर कम रुचि रखते हैं। हमारी साधु मार्गी समाज में जैसी कृपणता ै वैसी शायद ही किसी समाज में हो। अन्य समाज वाले अनेक तरीकों से दान ेते हैं मगर हमारा समाज तो दान को भूल ही गया है। दान देने से धन खूट जाने का भय निर्मूल है सेठ ने नवकार मंत्र का दान देकर अपने यहां पुत्र की कमी को पूरा किया।

रात को सेठानी सो रही थी। उसने स्वप्न में कल्पवृक्ष देखा। देखते ही वह जग उठी और विचार करने लगी कि आज ही सुभग खो गया और आज ही यह स्वप्न क्यों आया। आज मुझे उसका गहरा रंज है। फिर भी ऐसा उत्तम स्वप्न आया है, इस से प्रकृति का कोई विशेष संकेत मालूम पड़ता है। सेठानी उठकर धीरे २ अपने पति के कमरे में गई।

आजकल राग भाव की वृद्धि होने से नमालूम कितने खराब रिवाज चालू है। लेकिन प्राचीन साहित्य देखने से मालूम होता है पति पत्नि जुदा २ कमरों में सोते थे। एक कमरे में न सोते थे। अलग अलग कमरों में सोने की बात तो दूर रही अलग अलग शय्याओं में सोना भी दुःस्वार हो गया है। इसी कारण से अनेक खराबियाँ समाज में पैदा हो गई है आग के पास घी रहने से वह पिघले बिना नहीं रह सकता।

सेठानी के आने से सेठने आगमन का कारण पूछा। आज सुभग मर गया है अतः आप को उसकी चिन्ता होगी मगर आप के चेहरे पर खुशी की रेखा नजर आ-ती है। क्या विशेष बात है, कहिये। सेठानी ने उत्तर दिया कि मैंने स्वप्न में कल्प वृक्ष

देखा है। सेठने कहा, आज ही सुभग मरा है और आज ही यह शुभ स्वप्न आया है अतः तुम्हारी पुत्र विषयक मनोकामना पूरी होती हुई मालूम पड़ती है। सुभग कल्प वृक्ष ही था। जब मैंने नदी में से निकाल कर उसका शव जलाया तब मालूम हुआ कि वह सचमुच एक तेजस्वी बालक था। उसके मुख पर ग्लानि का कोई चिह्न न था। उसका चेहरा प्रसन्न था। जैसा वह सदा रहता था वैसा मृत्यु अवस्था में भी था। मेरा अनुमान है कि वही आप के गर्भ में अवतरा है।

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार सेठानी को दोहद भी अच्छे अच्छे उत्पन्न हुए। सेठजी ने अपना खजाना दान के लिए खोल दिया। **'जब कल्प वृक्ष ही घर में आया है तब संग्रह क्यों कर रक्खूं'** सेठजी ने निश्चय किया। साधारण लोग पुत्र होने पर दुगुने जोश से धन संचय किया करते हैं। सेठजी ने इसके विपरीत आचरण किया। आगे के भाव यथावसर कहे जायंगे।

राजकोट
२०—७—३६ का
व्याख्यान

आर्यत्व का वर्णन
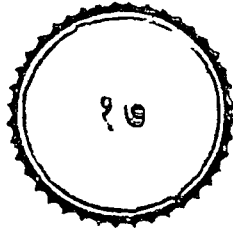
चन्द्रप्रभो जग जीवन अन्तर्यामी ॥ प्रा० ॥

परमात्मा ध्यान में लेने के लिए भक्त लोग अनेक विध प्रार्थना करते है। कहते हैं—

जय जय जगत् शिरोमणि

हे जगत् शिरोमणि ! तेरा जय जय कार हो। भक्तों द्वारा भगवान् को जगत् शिरोमणि कहा जाना बहुत गंभीर अर्थ रखता है। यदि इस कथन पर पूरी तरह विचार किया जाए तो बड़े बड़े शास्त्र भी इसमें गतार्थ हो जायगे। आप लोगों ने ॐकार शब्द लिखा देखा होगा। इस शब्द में ऊपर अर्द्ध चन्द्र रहता है और उस पर बिन्दी। इस शब्द में बहुत महत्त्व व रहस्य है। ज्ञानी जनों ने इस शब्द पर अनेक ग्रन्थ लिख डाले हैं। हिन्दु और जैन सब इसका महत्त्व स्वीकार करते है। ऊँकार में पञ्चपरमेष्ठि देव भी समा जाते हैं।

इच्छित वस्तु मिल जाती है अतः लोग उनके पीछे पड़े हैं । कामिनी के संसर्ग से भी दूर रहते है । कामिनी के मोह में फंस जाने से भी भयंकर हानियाँ होती हैं । कामिनी के लिए भी जगत् में बड़ी मारामारी होती है । लोग पैसे देकर भी कामिनी को खरीदते हैं । साधु के लिए कनक और कामिनी सर्वथा वर्जनीय है ।

आज कल लोग साधु का नाम धराकर भी ज्ञान खातों के नाम से श्रावकों के पास रुपये रखवाते हैं और कहते है कि ज्ञान के प्रचार के लिए दलाली करने में क्या हर्ज है । वे श्रावकों से अपने मन मुताबिक खर्च करवाते हैं पैसे पर ममत्व भाव रखते हैं। श्रावक गोया उनके खजान्ची हुए । जब उनका आर्डर होता है कि अमुक पंडित या व्यक्ति को इतनी तनख्वाह दे दो, दे दी जाती है । पैसे किसी के पास रहें, पैसे के उपयोग के लिए आज्ञा देने वाले परिग्रह धारी गिने जायंगे । वे धर्म आर्य नहीं कहे जासकते ।

राजा श्रेणिक के मनोभाव बताने में गणधरों ने कमाल किया है श्रेणिक राजा कहता है अहो ! इन मुनि में कितनी सौम्यता है सौम्यताका अर्थ समझिये । चन्द्रमा के सामने नजर करके चाहे कितनी देर तक देखा जाय आंखों को नुक्सान न होगा बल्की लाभ होगा । उसमें गर्मी के पुद्गल है ही नहीं । उसे रस सागर भी कहते है । समस्त फलों में रस प्रदान करने वाला चन्द्र ही है । औषधीश भी इसका नाम है । सूर्य का नाम आताप है और चन्द्र का उद्योत । चन्द्रवत् वे मुनि भी सौम्य थे । उन्हे कोई देखता ही रहे उसकी आंखे अघाती न थी ।

आधुनिक वैज्ञानिक और खगोल शास्त्रियो का मत है कि चन्द्रमा स्वयं प्रकाशित नहीं होता है । सूर्य के प्रकाश से वह प्रकाशित होता है । किन्तु जैन शास्त्रों में सूर्य और चन्द्रमा दोनों को स्वप्रकाशी बताया गया है । सूर्य का नाम आताप और चन्द्र का उद्योत है। चन्द्र में शीतलता है और सूर्य में गर्मी । दोनों का सम्बन्ध नहीं है । यदि चन्द्र में सूर्य के कारण प्रकाश देने की शक्ति है तो दिन में चन्द्रमा प्रकाशित क्यों नहीं होता । जब कि निकट से सूर्य किरणे उस पर पड़ती है । एकादशी आदि तिथियों में जब चन्द्र सूर्य आमने सामने पड़ते है तब चन्द्रमा फीका क्यों रहता है । हीरे पर जब सूर्य की कीरणे पड़ती है तब वह विशेप प्रकाशित होता है उसी प्रकार दिन में चन्द्र पर सूर्य की कीरणे पड़ने पर उसे विशेप प्रकाशित होना चाहिए । अतः स्पष्ट है कि चन्द्र में सूर्य से प्रकाश नहीं आता । वह स्वयं प्रकाशित है ।

वे मुनि चन्द्र के समान सौम्य थे । आर्य और सौम्य शब्दों का परस्पर सम्बन्ध है । जो आर्य होगा वह सौम्य भी होगा और जो आर्य न होगा वह सौम्य भी नहीं हो सकता । जो अनार्य कार्यों से अपने को दूर रखता है वही सौम्य हो सकता है । जिस प्रकार वृक्ष के फल फूल और पत्ते देख कर उसकी जड़ का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार उन मुनि की सौम्यता देख कर राजा श्रेणिक ने उनको आर्य माना है । उनकी क्षमा शीलता, निर्लोभता और विषय विरहितता स्पष्ट मालूम हो रही थी ।

आजकल विज्ञान ने बड़ी उन्नति की है । प्रकृति के अनेक रहस्यों का इसके द्वारा उद्घाटन हुआ है । नजानी बातें भी आज जानने में आई है । इसकी सहायता से शास्त्र की बाते समझने की कोशिश की जाय तो कितना लाभ हो । शास्त्र पर का अविश्वास भी कम हो जाय । कम से कम आप लोग अनुमान प्रमाण को अवश्य समझ लिजिये । इसके द्वारा आपके बहुत से संशय छिन्न हो जायंगे । पुनर्भव की ही बात लीजिये । अनेक लोगों को मरकर वापस जन्म लेने के विषय में संदेह है । आप अनुमान प्रमाण से पुनर्जन्म पर विश्वास कर सकते हैं । किसी व्यक्ति को देखते ही उसके प्रति स्नेह भाव जागृत हो जाता है और किसी को देखते ही वैरभाव या घृणा भाव पैदा होता है । इसका क्या कारण है । मानना होगा कि इसमें पूर्व जन्म के संस्कार कारणी भूत है । पहले भव में जिस व्यक्ति के साथ हमारा सुसम्बन्ध रहा उसको उसको वर्तमान में देखकर प्रेमभाव जागृत होता है और जिसके साथ पूर्वभव में अनिच्छित सम्बन्ध रहा था उसे अभी देख कर वैर या घृणा पैदा होती है । लैला और मजनू का पूर्वभव का स्नेह सम्बन्ध रहा होगा तभी विशेष रूप सौन्दर्य न होने पर भी दोनों में एक दूसरे के प्रति गहरा आकर्षण था । श्री सूय गडांग सूत्र में पुनर्जन्म मानने के लिए कई प्रमाण दिये गये है उनमें एक, बालक द्वारा जन्मते ही बिना किसी के सिखाये स्तनपान करने लगजाना भी प्रबल प्रमाण है । बालक का सर्व प्रथम स्तनपान करने लगना पूर्व जन्म का अभ्यास साबित करता है ।

आप कह सकते है कि पूर्व जन्म मानने से हमें क्या लाभ है और न मानने से क्या हानि है । इसका उत्तर यह है कि पूर्वजन्म मानने से अनेक लाभ है । जबतक आत्मा को यह विश्वास न हो जाय कि मै अमर हूं तब तक पुरुषार्थ करने के लिए उसमें उत्साह नहीं आसकता । वह कर्त्तव्य का ज्ञान भी तभी ठीक तरह करसकता है । उत्साह लाने या कर्तव्य का ज्ञान करने के लिए ही आत्मा को अमर मानना ठीक नहीं है मगर वह अमर है

अतः उसे अमर मनना चाहिए। आत्मा कभी यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं न रहूंगा यदि न रहने का विचार भी करता है तो केवल शरीर के न रहने का करता है। उस वक्त भी विचार करने वाला आत्मा साक्षी भूत रहता ही है।

आत्मा अमर है। जैसे वस्त्र बदले जाते हैं वैसे शरीर भी बदले जाते है। आप पोशाक और शरीर को न देखिये मगर उनमें रहे हुए आत्मा का खयाल करिये। आत्मा के सुधार में सब सुधार समाजाता है। आज शरीर के सामने आत्मा को भुलाया जा रहा है। दारु मांस का सेवन और वर कन्या विक्रय इसी बात से बढ़े हैं। जिसका वर्तमान सुधर जाता है उसका भविष्य सुधरा हुआ ही है। अर्थात् जिसका यह लोक सुधर गया उसका परलोक भी सुधर गया समझना चाहिए।

इस विषय में पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज एक बात कहा करते थे। एक बुढ़िया का घर स्मशान के मार्ग पर था। उसके घर के सामने होकर ही मुर्दे ले जाये जाते थे। वह बुढिया धार्मिक खयालात की थी। अतः धर्म वार्ता सुनने के लिए कोई न कोई उसके पास बैठा ही रहता था। जब कोई मुर्दा ले जाया जाता देखती तब यह कहती, यह जीव स्वर्ग को गया है। कभी कहती यह नरक में गया है। उसके पास वाले पूछते, माता! तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि अमुक स्वर्ग को गया है या नरक में। बुढिया उत्तर देती, भाई! मैंने देखा तो नहीं किन्तु अनुमान करती हूं कि वह स्वर्ग अथवा नरक में गया है। मुर्दे को ले जाने वाले लोगों की आपसी बातें सुनकर मैं अनुमान लगाती हूं। जब लोग यह कहते जाते है कि अहो! यह कितना पर उपकारी और भलाआदमी था, मैं उसके स्वर्ग जाने की कल्पना करती हूं। ऐसा उपकारी आदमी स्वर्ग न जायगा तो कौन जायगा।

लोग जिस बात की निन्दा किया करते हैं वह न करना और जिसकी प्रशंसा किया करते हैं, वह करना यही तो स्वर्ग का मार्ग है। रामदास ने कहा—

" जनी निन्दति सर्व सोडून दयावा,
जनी वन्दति सर्व भावे करावा "।

अर्थात् लोग जिस काम की निन्दा करें वह छोड देना और जिसकी प्रशंसा करें वह सर्व भाव से करना चाहिए। यही स्वर्ग का मार्ग है।

जिस व्यक्ति के लिए यह कहा जाता हो कि अच्छा हुआ सो मरगया। इसके कारण अनेक लोग त्रास पाते थे। यह क्या मरा है आज बुराई मरगई है। ऐसा आदमी नरक में जाता है।

अब एक बात और इस विषय में जाननी रह गई है। दुनिया में निन्दा और स्तुती भी स्वार्थवश की जा सकती है। जिसका जिससे मतलब सिद्ध होता है वह उसकी प्रशंसा करता है और दूसरा उसकी निन्दा। किसकी निन्दा स्तुति पर खयाल करके स्वर्ग नरक की कल्पना की जाय? श्रेष्ठ और समझदार लोग जिस काम की निन्दा करें वह त्याज्य है और जिसकी प्रशंसा करें वह कर्त्तव्य रूप है। यदि सच्चा आर्य बनना है तो अच्छे काम करियेगा। संवत्सरी नजदीक आ रही है अतः क्षमा मांगने और क्षमा देने योग्य अपनी आत्मा को तय्यार करिये। ऐसा न हो कि जिसके साथ आपका वैर भाव है उसको छोड़ कर सारे जगत् के जीवों को खमालो। ऐसी क्षमा मांगने का कुछ अर्थ नहीं है। परमात्मा जगत् शिरोमणि है अतः उसके नीचे के प्राणियों के साथ प्रेम भाव रखिये। इसके बिना परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकता। यह काम वही कर सकता है जो अनुमान प्रमाण से अथवा स्वात्मप्रमाण से आत्मा को अजर अमर मानता है।

सुदर्शन चरित्र—

जिनदास सेठ ने अनुमान प्रमाण से ही यह बात जानी थी कि मेरी स्त्री की कोख में सुभग आया है। उसने आते हुए साक्षात् न देखा था मगर सुभग के गर्भ पर प्रसन्नता के चिह्न देखकर अनुमान से जाना था। आज प्राचीन तत्त्वों पर विचार नहीं किया जाता बल्कि उनकी अवहेलना की जाती है। यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि शास्त्रों में कैसी महत्त्वपूर्ण बातें भरी पड़ी है।

जब स्त्री गर्भवती होती है तब उसके दो हृदय होते हैं। एक खुद का और दूसरा बालक का। दो हृदय होने के कारण उसकी इच्छा को दोहद कहा जाता है। उसकी इच्छा गर्भ की इच्छा मानी जाती है। जैसा जीव गर्भ में होता है वैसा ही दोहद भी होता है। दोहद के अच्छे बुरे होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है। श्रेणिक को कष्ट देने वाला उस का पुत्र कोणिक जब गर्भ में था तब उसकी माता को अपने पति श्रेणिक के कलेजे का मांस खाने की इच्छा उत्पन्न हुई थी। दुर्योधन जब गर्भ में था, उसकी माता को [illegible] देश के लोगों के कलेजे खाने की इच्छा हुई थी। गर्भ में जैसा बालक होता है

वैसा दोहद होता है। दोहद पर से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि गर्भस्थ बालक कैसा होगा। बालक के भूत और भविष्य का पता, दोहद से लग सकता है। आज कल सांसारिक प्रपञ्चों का बोझा मगजपर अधिक होता है अतः स्वप्न याद नहीं रहा करते रात्री में नदी के बहाव का शब्द जोर से सुनाई देता है इसका अर्थ यह नहीं होता कि रात में नदी जोर का शब्द करती है। वह सदा समान रूप से बहती है। किन्तु उस वक्त वातावरण में शान्ति होने से शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। स्वप्न के विषय में भी यह बात है। शास्त्र में सब बातें है। यदि उनको ठीक तरह से समझने की कोशिश की जाय तो ज्ञात होगा कि उनमें भूत भविष्य का ज्ञान करने का भी तरीका छिपा हुआ है।

शास्त्र में केवल तात्त्विक बातें ही नहीं है किन्तु व्यवहारोपयोगी साम भी पड़ी है। मेघकुमार के अध्ययन में गर्भवती स्त्री के कर्तव्य बताये गये हैं बालक को उत्पन्न करना यह हिंसा है मगर उत्पन्न करने के बाद उसका पा पोषण करना दया का काम है।

आज कल संतान वृद्धि के कारण लोग संतति नियमन करना चाहते है। अच्छी बात है। किन्तु दुःख है कि संतति नियमन का वास्तविक मार्ग ब्रह का पालन करना है उसे छोड़ कर लोग कृत्रिम उपायों को काम में लाते है। विषय भोग को तो छोड़ना नहीं चाहते मगर संतति निरोध चाहते हैं। यह प्रशस्त नहीं है। इसमें दया भाव भी नहीं है। संतान उत्पन्न होने की क्रिया ही न निरोध का ठकि रास्ता है।

सन्तानोत्पत्ति कब न करना चाहिये और कब विषय भोग से दूर रहना चाहिये इसका भी ध्यान रखना चाहिये। जब घर में खाने के लिये न हो अथवा उत्पन्न होने वाले बाल बच्चों की ठीक प्रकार से परवरिश करने की सामर्थ्य न हो तब सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करना पाप है। बहुतसे लोग आगे पीछे का ख़याल लिये बिना संतान वृद्धि करते जाते है। वे अपने बच्चों के शरीर की नींव जमाने के लिये न उन्हे दूध पिला सकते हैं और न कोई पौष्टिक खुराक ही दे सकते हैं बच्चों को साफ सुथरा रखना अच्छे स्वच्छ वस्त्र पहिनाना, उनके लिये पठन पाठन का समुचित प्रबन्ध करना आदि बातें वे सोच ही नहीं सकते। ऐसे लोग अपने कर्त्तव्य से च्युत होते है।

गर्भ रहजाने के बाद उसकी संभाल न करना निष्करुणा है । धारिणी राणी को जब गर्भ था वह अधिक ठंडे अधिक गर्म अधिक तीखे कडुए कसायले खट्टे मीठे पदार्थों का भोजन न करती ऐसी चीजों पर उसका मन भीं दौड़ जाता, फिर भी गर्भ की रक्षा के लिए वह अपनी जबान पर काबू रखती थी । वह न अधिक जागती न सोती । न अधिक चलती और न पड़ी रहती ।

ब्रह्मचर्य का पालन न करने से गर्भ रह जाय तब यह उत्तर दे देना कि बालक के भाग्य में जैसा होगा वैसा देखा जायगा, नंगाई पूर्ण उत्तर है । इस उत्तर में कर्तव्य का खयाल नहीं है । किसी को पांच रुपये देने हैं । वह लेने वाले से कह दे कि तेरे भाग्य में होगा तो मिल जायंगे नहीं तो नहीं मिलेंगे । यह उत्तर व्यवहार में नंगाई का उत्तर गिना जाता है । इसी प्रकार पहले अपने ऊपर काबू न रखना और बाद में कह देना कि जैसा नसीब में होगा देखा जायगा, मूर्खता सूचित करता है केवल मूर्खता ही नहीं किन्तु निर्दयता भी साबित होती है ।

मैं तपस्या करने का पक्षपाती हूं । मगर गर्भवती माता के लिए उपवासादि करना मैं अनुचित समझता हूं । शास्त्र में कहा है गर्भवती का आहार ही बालक का आहार है । माता के द्वारा आहार छोड़ देने से बच्चे का आहार भी छुट जाता है । आप अपने साथ दूसरों को उनकी मरजी के बिना भूखे नहीं रख सकते । भूखे रखना धर्म भी नहीं है । आप उपवास कर सकते हो मगर अपने आश्रित पशु-पक्षियों का घास दाना बन्द नहीं कर सकते । बन्द करना पाप है । किसी के भात पानी का विछेद करना अतिचार है । जिसका बच्चा मां का दूध ही पीता हो उसे भी तपस्या से बचना चाहिए ।

अर्हद्दासी जब से गर्भवती हुई तब से हर बात में बहुत सावधान रहने लगी । वह अनुभव करने लगी कि अब मैं स्वतंत्र नहीं हूं । मुझे गर्भ की इच्छा और रक्षा का ध्यान रखना होगा ।

कदाचित् किसी भाई को मन मे यह शंका हो कि धर्म के कार्य में रोक करने की बात कहना ठीक नहीं है । तपस्या करना धर्म कार्य है और आप गर्भवती को इस कार्य से दूर रहने का उपदेश करते हो यह कहां तक उचित है । मैं ऐसे भाई से पूछता हूं कि दीक्षा ग्रहण करना सब से अधिक धर्म कार्य है । यदि कोई गर्भवती स्त्री दीक्षा लेनी चहे तो क्या दीक्षा दी जा सकती है । जब तक उसको बच्चा न हो जाय और उसके लालन पालन के दिन पूरे न हो जाय तब तक दीक्षा नहीं दी जा सकती । तब तक धर्म कार्य में ढील होगी । क्योंकि तब तक वह बाई द्रव्य धर्म क्रिया का पालन न कर सकेगी और यदि उसके परिणाम

बहुत निर्मल होगें तो वह भाव धर्म कर सकेगी गर्भवती के लिए भी यही बात लागू होती है। अनशन रूप तपस्या के सिवा अन्य धर्म करणी करने के लिए उसे छूट है। कहने का मतलब यह है कि गर्भ या बच्चे पर दया करना पहला धर्म है। दया ही के लिए तो सब धर्म करणी है। मूल का विच्छेद करके पत्तों को नहीं सींचा जाता।

एक पंथ ऐसा भी है जो अनुकम्पा करने में पाप मानता है। उस पंथ की अनुयायिनी एक स्त्री ने अपने समक्ष अपने नादान बच्चे को अफीम खाने से न रोका और कहने लगी कि मैं सामायिक में बैठी हूं, मेरे गुरु का मुझे उपदेश है कि सामायिक में अनुकम्पा करना वर्जित है। वह बालक मर गया। मरने के बाद वह रोने लगी। 'जब **चिड़ियन खेती चुग डारी, फिर पछताये का होवत है'**। भगवान महावीर का यह मत नहीं है कि किसी पर अनुकम्पा करना पाप है। भगवान् का तो यह फरमाना है कि यदि ब्रह्मचर्य का पालन न कर सको तो तुम्हारी भूल के कारण जो जिम्मेवारी आपड़े उसे निभाओ। अर्थात संतान पर करुणा करो। छोटे वृक्ष को जिस प्रकार सुधारा जा सकता है उस प्रकार बड़े को नहीं सुधारा जा सकता। भगवान् फरमाते हैं कि गर्भस्थ बालक में माता जैसा चाहे वैसा सस्कार डाल सकती है। अपने आचरण द्वारा डाल सकती है यह बात मैं निमित्त कारण की कह रहा हूं। उपादान कारण की बात अलग है। उपादान के साथ निमित्त आवश्यक है। सूयगडांग सूत्र में उपादान के साथ सहकारी कारणों को आवश्यक बताया है। मिट्टी में घड़ा है मगर कुंभकार बनाये तब वह बनता है। सुवर्ण में जेवर है मगर सोनी बनाये तब है। बच्चे में सब कुछ बनने की शक्ति है मगर माता माता गुरु आदि का योग मिले तब वह शक्ति प्रादुर्भुत होती है।

गर्भ के समय की स्थिति बड़ी नाजुक होती है। मा और बच्चे का पूरा पुण्य होता है तब सुख पूर्वक डीलीवरी (बालक का जन्म) होता है। आजकल मेटरनिर्टीहोम (प्रसूति गृह) चले हैं मगर पहले माता पिता प्रसूति सम्बन्धी सब बातों से परिचित होते थे। जो पिता प्रसूति समय में सहायक नहीं हो सकता वह पिता होने योग्य नहीं है।

अर्हद्दासी की कोख में सुख पूर्वक बालक बढ़ रहा है अब आगे क्या होता है यह बात यथावसर कही जायगी।

राजकोट
२३—७—३६ का
व्याख्यान

सच्ची क्षमा
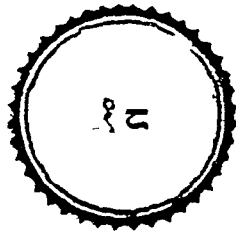
"श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये रे .... ।"
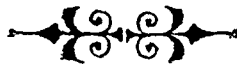
आत्मा परमात्मा की प्रार्थना करता है अतः ज्ञात होता है कि आत्मा और परमा-त्मा का कोई सम्बन्ध है । आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध जानकर प्रार्थना करने से बहुत लाभ होता है और प्रार्थना करने का मकसद सिद्ध होता है परमात्मा का महत्त्व जानने का उपाय इस प्रार्थना में बताया है । इस में कहा है, हे प्रभो ! मेरा तेरे साथ जैसा सम्बन्ध है वैसा अन्य किसी के साथ नहीं है । यद्यपि इस विषय में यह भ्रान्ति होती है कि मैं जड़ बुद्धि, पापी और पामर प्राणी हूं और तू मैल रहित पवित्र है, अतः दोनों का क्या सम्बन्ध ? किन्तु ज्ञानी कहते है कि इस तरह की भ्रान्ति मन में लाना भूल है । परमात्मा से तेरा गाढ़ सम्बन्ध है । यदि तू वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ को ध्यान में रखकर प्रार्थना करे तो तेरा बेड़ा पार हो जाय । दो दृष्टान्तों से वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का अर्थ बता देता हूं ।

मान लीजिये एक सानार के हाथ में सोने का डला है। यहां सोना वाच्यार्थ है। लेकिन सोनार कहता है कि मैं इस सोने के डले के जेवर बनाऊंगा। सुनार का यह कहना लक्ष्यार्थ है। सोने में जेवर रूप बनने की योग्यता है। सोनार द्वारा जेवर बनाने की बात सोचना लक्ष्यार्थ है। कुंभार और स्त्री मिट्टी का ढेला तथा आटे का पिंड लेकर बैठे हैं। मिट्टी का ढेला और आटे का पिंड वाच्यार्थ हैं। किन्तु कुंभार ने घड़े बनाने और स्त्री ने फुलके बनाने का मन में संकल्प कर रखा है यह संकल्प लक्ष्यार्थ है।

आत्मा अभी वाच्यार्थ में है जब वह परमात्मा बन जायगा तब लक्ष्यार्थ हो जायगा। सोने के आभूषण, मिट्टी के बर्तन आटे के फुलके बन जाना लक्ष्यार्थ सिद्ध हो जाना है। इसी प्रकार आत्मा से परमात्मा बन जाना लक्ष्यार्थ सिद्ध है। हम अभी वाच्यार्थ में परमात्मा है लक्ष्यार्थ में नहीं। आत्मा में परमात्मा बनने की योग्यता व शक्ति है यह बात ज्ञानीजन अपने अनुभव से कहते हैं। अतः आत्मा को अपना लक्ष्यार्थ न भूलना चाहिए। यदी स्त्री आटे का पिंड लेकर बैठी ही रहे तो लोग उसे मूर्ख बतायेंगे। किन्तु बुद्धिमान होने का दावा करने वाले मनुष्य अनादि काल से आत्मा को लिए बैठे हैं, परमात्मा बनने की क्रिया नहीं करते, यह कितने आश्चर्य की बात है।

व्यवहार के कामों में आप लोग वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ को नहीं भूले हैं। परमार्थ के काम में ही भूल हो रही है। अतः इस बात पर गौर करना चाहिए। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध वही है जो मिट्टी और घड़े का, सोने और उसके बने आभूषणों का, आटे के पिंड और उसकी बनीं रोटियों का है। आत्मा और परमात्मा के बीच में जो आड़ी टाटी है उसे दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। वह टाटी है, आत्मा की परमात्मा से विमुख दृष्टि। आत्माकी दृष्टि परमात्मा की ओर नहीं है किन्तु विषय वासना की ओर है। आवरणों को दूर करने से आत्मा और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

यह बात अब शास्त्र द्वारा समझाता हूँ। राजा श्रेणिक वाच्यार्थ के अनुसार ही लक्ष्यार्थ का दर्शन कर रहा है। वह देख रहा है कि ये मुनि जैसे हैं इनका लक्ष्यार्थ भी वैसा ही है। यह देखकर वह मुनि के लक्ष्यार्थ का ध्यान कर रहा है। श्री अनुयोग द्वार सूत्र में कहा है कि जो जिसका ध्यान करता है वह ध्यान करने वाला भी वैसा ही हो जाता है। गीता में भी कहा है कि '**यो यच्छ्रद्धः स एव सः**' जो जिस पर श्रद्धा करता है वह वैसा ही बन जाता है। अनुयोग द्वार में शब्दादि तीन नयों के अनुसार अनाज नापने के

लकड़ी आदि से बनी पाहिली को पाहिली नहीं कहा किन्तु पाहिली बनाने वाले के उपयोग को पाहिली कहा है। श्रेणिक मुनि के लक्ष्यार्थ का ध्यान करके स्वयं वैसा बन रहा है। मुनि को देखकर वह कहता है—

अहो ! वण्णो अहो ! रूवं, अहो अज्जस्स सोमया ।
अहो खंति अहो मुत्ति, अहो भोगे असंगया ॥ ६ ॥
तस्स पाये उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं ।
नाइदूर मणासन्ने, पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥

अर्थ- -अहा ! इनका वर्ण, अहा ! इनका रूप, अहा ! इन आर्य की सौम्यता, अहो इनकी क्षमा, अहो इनकी मुक्ति, अहो इनकी भोगों में असंगतता। अहो शब्द परम आश्चर्य का द्योतक है। इन मुनि के वर्ण-रूप आदि को देखकर राजा बड़ा हैरान था। ६। उन मुनि के पैरों में वन्दन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके, न अति दूर न अति संनिकट बैठ कर हाथ जोड़ कर प्रश्न पूछता है।

बहुत से व्यक्ति मोह या भ्रमवश वर्णन करने में मर्यादा का अतिरेक कर जाते हैं। अतिशयोक्ति से काम लेते हैं। कवि लोगों ने स्त्री के रूप सौन्दर्य का वर्णन करने में अतिशयोक्ति का बहुत उपयोग किया है। यहां तक कह डाला है कि कलङ्क युक्त बेचारा चन्द्रमा स्त्री के मुख की क्या समता कर सकता है। अपना मुख छिपाने के लिए ही वह दिन को कहीं छिपा रहता है और रात होने पर प्रकट होता है, मोहान्धता के वशीभूत होकर वस्तुओं को देखने से उनका वास्तविक दर्शन नहीं हो सकता।

राजा श्रेणिक बिना किसी प्रकार की लाग लपेट के सच्चे दिलसे उन मुनि के रूप सौन्दर्य और क्षमादि गुणो का वर्णन कर रहा है। अतिशयोक्ति का लवलेश भी नहीं है। वह सोच रहा है चन्द्र की किरणे अपनी सौम्यता से कमलिनी को विकसित कर सकती है तथा वनस्पति को रस दे सकती है मगर आत्मा को विकसित नहीं कर सकती। इन मुनि की सौम्यता आत्मा को विकसित करने वाली हैं। कैसा भी क्रोधी लोभी और अत्याचारी व्यक्ति इनके सामने आजाय, इनकी आत्मिक शान्ति की किरणों से उसका कषाय शान्त हो जायगा। [illegible] के हृदय का त्रिपात इनके देखते देखते ही मिट गया है। अतः मैं इनकी सौम्यता [illegible] करता हूं।

सौम्यता के समान क्षमा का भी राजा श्रेणिक ने बहुत बखान किया। मुनि के चेहरे की शान्त मुद्रा देख कर राजा ने उनको अति क्षमाशील कहा है। आज कल लोग क्षमा का अर्थ डरपोक पन करते है। यह उनकी भूल है। 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' क्षमा बहादुर का भूषण है। कायर की क्षमा दीनता गिनी जायगी। एक उदाहरण से यह बात समझाना चाहता हूं।

तीन आदमी साथ साथ बाजार जा रहे थे। बाजार में एक बदमाश ने उन तीनों से कहा अरे दुष्टों! बेवकूफों कहां जा रहे हो? तीनों में से एक ने मन में यह सोचकर चुप्पी साधली कि यह आदमी बड़ा तगड़ा है इससे मै मुकाबला न कर सकूंगा। दूसरे ने उसका सामना किया और डबल गालियां-दे कर उसे दबा दिया। तीसरे ने सोचा ऐसे ना समझ अदमी की बातों का उत्तर देना ठीक नहीं है। इसने मुझे दुष्ट और बेवकूफ कहा है सो कहीं ये दोनो दुर्गुण मेरे में तो नहीं है'। वह बदला लेने की कल्पना भी नहीं करता। वह तो अपने हृदय को टठोलता है।

पहिले आदमी द्वारा गालीदेने वाले से बदला न लेना कायरता है। क्योंकि उसके मन में गाली देने की और बदला लेने की भावना विद्यमान है मगर सामने वाले से डर कर अपनी कमजोरी के कारण गाली नहीं देता है। ऐसे आदमी कभी २ यों भी कह देते है होगाजी, दुष्टों के साथ कौन दुष्टता करे। कीचड़ में पत्थर डालने से अपने ही छींटे उड़ेगे। दर असल ऐसे आदमियों की क्षमा के पीछे कायरता निवास करती है अतः यह क्षमा क्षमा नहीं किन्तु कायरता गिनी जायगी। मुकाबला करने की शक्ति न होने से मुकाबला नहीं किया गया है। शक्ति होती तो अवश्य बदला लिया जाता।

दूसरे आदमी ने व्यावहारिक दृष्टि से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है। मगर इस प्रकार कर्त्तव्य पालन में कभी कभी बड़ा अनर्थ पैदा हो सकता है। गाली देने वाले को प्रति गाली देने से हाथा पाई की नौबत पहुँच जाती है। हाथा पाई से दण्डा दण्डी और शस्त्रा शस्त्री तक बात चली जाती है फिर मुकद्दमा बाजी होती है और वर्षों तक वैर भाव बढ़ता जाता है।

तीसरे आदमी की क्षमा सचमुच क्षमा है। गाली देने वाले ने अपना शस्त्र फेंका जिसको इस व्यक्ति ने सहर्ष झेल लिया और शस्त्र फेंकने वाले के सम्बन्ध में किञ्चित् भी खयाल किए बिना अपना हृदय टटोललता हुआ चला गया कि मुझ में दुष्टता और बेवकूफी

नहीं है। ऐसा व्यक्ति यदि खुद में दुर्गुण होगा तो निकाल कर बाहर फेंकेगा और दुर्गुण र होगा तो अपने रास्ते चला जायगा। इसका नाम क्षमा है। बदला लेने की सामर्थ हो या न हो सामने वाले के प्रति द्वेष भाव या वैर भाव धारण न करना सच्ची क्षमा है।

श्रेणिक राजाने मुनि को देख कर जान लिया कि ये सच्चे क्षमाशील है। शाक बेचने वाला कूंजड़ा जवाहिर का मूल्य नहीं आंक सकता। जौहरी ही जवाहिर का मूल्य बता सकता है। श्रेणिक गुणों का परीक्षक था। उसका अन्दाजा बिल्कुल ठीक था। वे मुनि ऊंचे दर्जे के क्षमा शील व्यक्ति थे। बदला लेने की उनके मन में कल्पना भी नहीं थी। वे अपने निजानंद में मस्त थे।

बहुत से लोग रुपये को बजाकर खरे खोटे की जांच करते हैं। किन्तु कई आदमी ऐसे भी है जो नज़र से देखते ही परीक्षा कर लेते हैं कि यह रुपया खरा या खोटा। मै खुद इस बात की गवाही देता हूँ मैं जब साधु न बन गया था तब कपड़े की दूकान पर बैठा करता था। घोर अंधेरी रात में यदि ग्राहक आ जाता तो मै कपड़े को स्पर्श करके ही यह बता देता था कि यह छींट इस भाव की है। राजा श्रेणिक भी विशेषज्ञ था अतः मुनि को देखते ही उनके गुणों की जांच करली और प्रशंसा करने लगा। वह कहने लगा यद्यपि इनका यौवन और रूप भोग भोगने के अनुरूप हैं फिरभी इनके शरीर पर योग के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं

जब खन्ती और मुत्ती ये दो विशेषण दिये जा चुके हैं और इनसे भोगों मे अनासक्ति का गुण भी व्यक्त हो जाता है तब '**भोगे असंगया**' विशेषण क्यों दिया गया है? क्षमा और मुक्ति आंशिक रूप से गृहस्थ श्रावकों में भी पाई जाती है अतः भोगे असंगता विशेषण दिया गया है। ये साधु हैं और इनको संसार के किसी भोग विलास के प्रति किञ्चित भी आसक्ति नहीं है।

राजा श्रेणिक को भोग त्याग में आश्चर्य मालूम हुआ? इस लिए कि वह भोग विलास छोड़ने में अपनी असामर्थ्य अनुभव कर रहा था। किसी व्यक्ति को करोड़ों रुपयों की ममता छोड़ते हुए देखकर आपको भी आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। राजा श्रेणिक भी विषय वासना और सुख साधन की सामग्री छोड़ने में कठिनाई महसूस कर रहा था। अतः उसे आश्चर्य हुआ है। स्वार्थ पूर्ण क्षमा और निर्लोभता राजा में भी रही होगी किन्तु मुनि में बिना स्वार्थ के ये गुण थे।

राजा श्रेणिक ने मुनि के साथ जिस प्रकार अपना सम्बन्ध जोड़ लिया था उसी प्रकार आप लोग भी साधु संतों से अपना सम्बन्ध जोड़िये । आप रेल का निर्माण नहीं कर सकते मगर उसमें बैठते जरूर हो । आप स्वयं क्षमाशील और निर्लोभी नहीं बन सकते तो कम से कम इन गुणों के धारक साधुओं से सम्बन्ध तो अवश्य जोड़िये। पावर केवल एंजिन में होता है मगर अन्य डिब्बों के आंकड़े एंजिन से जुड़े रहते हैं अतः वे भी उसके पीछे पीछे खिंचे चले जाते हैं। और निर्दिष्ट स्टेशन तक पहुँच जाते हैं। आपभी महात्मा लोगों के आंकड़े से अपना आंकड़ा जोड़ दोगे तो कल्याण हो जायगा । अनाथी मुनि के साथ सम्बन्ध करने के कारण श्रेणिक ने तीर्थंकर गोत्र बांध लिया था।

राजा श्रेणिक क्षत्रिय था। वह प्रसन्न होकर कोरी वाहवाही करने वाला न था। जब उसने मुनि के गुण जान लिए तब वह उन्हें नमन करने के लिए उद्यत हो गया। वास्तव में गुण जाने बिना नमन करने का कोई अर्थ नहीं है। केवल हाड़ ही न देखने चाहिए गुण भी देखने चाहिए जिन में गुण न हो उनको नमन करना अनुचित है। राजा ने पहले गुण जाने। जानकर गुणों की कद्र करने के लिए नमन करने का विचार किया किसी बात को जान लेना मात्र ही कर्त्तव्य की इति श्री नहीं हो जाती । भारत की राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के लिए कहा जाता है कि पहले उसमें केवल लेक्चर बाजी ही होती थी । जब यह अनुभव किया गया कि केवल भाषण देदेना कोई वकत नहीं रखता, रचनात्मक कार्य प्रारंभ किए बिना केवल भाषण देना गुनगुनाना है।

गुनगुनाना दो प्रकार का होता है। एक साधारण मक्खी गुनगुनाती है, दूसरी शहद की मक्खी। साधारण मक्खी गुनगुनाकर इधर उधर से गन्दगी लाकर भोजन पर फैलाती है और रोग उत्पन्न करती है। मगर शहद की मक्खी का गुनगुनाना इससे भिन्न है वह फूलों पर जाकर गुनगुनाती है उन से रस ग्रहण करती है। एक गुनगुन रोग फैलाता है दूसरा शहद पैदा करता है। वैज्ञानिकों का मत है कि शहद के बराबर कोई मिठाई नहीं है वैद्यों का भी यही मत है। गुनगुनाना भी तो ऐसा गुनगुनाना कि जिससे कुछ निर्माण हो

भाषण आदि देकर दूसरों के दोष प्रदर्शन भी किए जा सकते हैं और गुण प्रदर्शन भी। पहिली मक्खी के समान रोग फैलाने वाले मत बनो किन्तु शहद की मक्खी के समान गुण प्रचारक बनो। केवल निन्दक या आलोचक ही रहोगे तो कहीं के न रहोगे।

न खुदा ही मिला न विशाले सनम, न इधर के रहे न उधर के सनम।

कोरा निन्दक या आलोचक, न अपना भला कर सकता, न दुनिया का । उस के लिए यह कहावत लागू होती है—'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' ऐसे मनुष्य घर की मक्खी के समान लोगों की निन्दा करते हुए व्यर्थ गुनगुनाहट किया करते हैं और चारों ओर निन्दा की बीमारी फैलाते हैं । अतः बकवास करना छोड़ देना चाहिए। और यदि बकवास न छोड़ सकते हो तो शहद की मक्खी के समान गुनगुनाहट के साथ कुछ जनोपयोगी कार्य करो ।

सुदर्शन चरित्र—

> **कर महोत्सव दिया नाम सुदर्शन, वर्त्या मंगलाचार ।**
> **घर घर हर्ष बधावना सरे, पुर में जय जयकार ॥ १४ ॥**

चरित्र सुनाने का उद्देश्य धर्मकथा के साथ ज्ञान प्रदान करना है । लौकिक लोकोत्तर विचार सुधारने के लिए चरित्र सुनाया जाता है । कल गर्भ रक्षा की बात कही गई थी । इस विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है मगर समयाभाव से इतना ही कहता हूं कि इस विषय में बड़ी भूलें हो रही है । ऐसे भी नर पिशाच है जो गर्भवती स्त्री के साथ विषय सेवन करते हैं । उनको जरा भी लाज शर्म नहीं आती । गर्भ के चिह्न मालूम हो जाने पर भी जो माता पिता विषय सेवन को छोड़ नही सकते वे माता पिता कहलाने के योग्य ही नहीं है । ऐसे स्त्री पुरुष हराम खोर कहे जायंगे ।

प्रसूतिगृह में स्त्री को सौम्य देने मात्र से जिम्मेवरी पूरी नहीं हो जाती । वहां भी सुना जाता है पैसे वालों का काम ठीक होता है । दूसरी गरीब स्त्रीयों की तरफ बेगार भावना वर्ती जाती हैं । अमीर लोगों ने झंझटों से बचने के लिए अनेक तरीके निकाले है । कोई झगडा आपड़ा तो वकीलों को सौम्पादिया, अधिक खालिया अथवा कोई बीमारी आगई तो डाक्टरों के सिपुर्द कर दिया और स्त्री गर्भवती होकर पूरे दिन जा रहे हैं । तो प्रसूतिगृह में मेम साहिबा को सौम्प कर निश्चिंत हो जाते है । स्त्रियां भी बेफिक्र हो जाती है और उन [illegible] को भूलती जाती हैं ।

शास्त्र में गर्भ की अनुकम्पा—रक्षा के लिए बहुत [illegible] । [illegible] के [illegible] में कहा है ।

'तस्स गब्भस्स अणुकम्पट्ठयाए'

अर्थात् धारिणी रानी ने उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए ऐसा किया, वैसा किया इत्यादि। शास्त्र का ऐसा वचन होते हुए भी यह कहना कि जापेवाली बाई को पानी पिलाने मे भी तेले का दण्ड आता है महज अज्ञानता सूचित करता है।

धनवान् लोगों ने अपने वर्ताव से गरीबों के लिए अनेक अड़चने उत्पन्न करदी हैं। विवाह शादी में हजारों रुपये खर्च करके धनवान् लोग लक्ष्मी का मजा लेते हैं। उनकी देखा-देखी गरीब लोग भी अपने घर बार बेंचकर ऐसा करते हैं। जब धनवानों ने अपनी बीबियों को प्रसूति ग्रह में भेजना शुरु किया है तो गरीब उनकी नकल क्यों न करेंगे प्रसूतिगृह में भक्ष्या भक्ष्य का खयाल नहीं रखा जाता। शराब तक पिया जाता है। हमा शास्त्रों में प्रसव सम्बन्धी सब बातें बताई हुई हैं। उन को सीखकर आचरण में लाना एक माता पिता का कर्त्तव्य है। यदि कोई पुरुष इन बातों को नहीं जानता है उसे तब तक शादी करने और संतानोत्पत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है।

शास्त्र में बालक के जन्म समय के लिए ऐसा पाठ आया है—

आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया

अर्थात्—स्वस्थ माता ने स्वस्थ बालक को जन्म दिया। बालक भी आ पूर्वक जन्मा और माता भी कुशल रही। ऐसा तब हो सकता है जब माता पिता सम्बन्धी सब बातों का ज्ञान रखते हो।

सेठ जिनदास के घर भी आनन्द पूर्वक पुत्र का जन्म हुआ। सेठ ने पुत्र की खुशी में बहुत उत्सव किया। आजकल के उत्सवों में और सेठ द्वारा मनाये गये में बड़ा अन्तर है। आजकल उत्सव इस प्रकार मनावे जाते है जिससे गरीबो को क पैदा हो जाती है। उत्सवों में गरीबों को सहायता पहुँचने के बजाय उनपर बहुत बुरा पड़ाता है। अपने गरीब भाईयो को सहायता पहुँचाना सच्चा सहधर्मी वात्सल्य है आध बार लड्डु जीमा देने में कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। सह धर्मी वात्सल्य के अनेक हैं। विवेक की जरुरत है। कपड़ा तथा अन्य वस्तुए खरीद कर भी दी जासकती है, वा धन्धे में लगाकर सहायता की जा सकती है। कन्या देने लेने में भी सह धर्मी व हो सकता है।

पुत्र जन्म की खुशी में कैदी छोड़े जाते थे। छोटे पद वालों को बड़े पद पर [illegible]या जाता था। पुत्र जन्म की प्रथम खबर देने वाली दासी का राजाने अपने हाथों से [illegible]धोया और उसे दासत्व से मुक्त कर दिया। जो सेठ होते वे दान देकर खुशीयां मनाते [illegible]। गरीबो की सहायता करते। आज की तरह व्यर्थ धूम धाम और वाहियात तरीको से [illegible] न उड़ाते थे।

जिनदास नगर सेठ था। राजा बाद में माना जाता है पहले नगर सेठ की पूछ [illegible]है सब लोग घर घर उत्सव करने लगे। सुना है। उदयपुर के राणा नगर सेठ की [illegible]ति के बिना कुछ न कर सकते थे। नगर सेठ राजा और प्रजा का बीच का आदमी [illegible]है। राजा प्रजा में मेंल साधने वाला होता है। राजा द्वारा प्रजा को कष्ट न हो तथा [illegible] भी राजानियमों का उल्लंघन न करे इस बात का भार नगर सेठ पर रहा करता था। [illegible]वान् वह है जिसके कारण अधिक से अधिक लोगों को सुख मिले और जिसकी सब [illegible]सा करें। लकड़ी की गाड़ी भरी हो किन्तु उसमें यदि एक चन्दन का टुकड़ा हो तो [illegible]का महत्त्व गिना जाता है। चाहे कोई धनवान् हो किन्तु जनता उसकी प्रशंसा न करती [illegible]वह पुण्यवान् नहीं है। और कोई व्यक्ति गरीब है किन्तु आम जनता उसकी प्रशंसा [illegible]ती है तो वह पुण्यवान् है।

जिनदास के घर पुत्र जन्म होने की खबर शहर में बिजली की तरह फैल गई। [illegible] ओर से बधाइयां आने लगी। राजा भी खबर सुन कर बहुत प्रसंन हुआ। कैदी छोडे [illegible] और सेठ के घर बधाई भेजी गई। सेठ के यहां पुत्र होने से कुछ टेक्स भी माफ किये [illegible]। कानूनों में सुधार किया गया। मतलब कि पुण्यवान् के जन्म धारण करने से सर्वत्र [illegible]यो मनाई जाने लगी।

उत्सव पूरा होने पर सेठ ने पुत्र का नाम करण करने के लिए लोगों से राय [illegible]। सबने कहा, इसका जन्म होते ही सब प्रकार का आनन्द हुआ है और यह देखने में [illegible]आनन्दकारी है अत इस का नाम सुदर्शन रखा जाय। सब की सम्मति से सेठ ने उसका [illegible] सुदर्शन रखा।

जिनदास सेठ था। नगर सेठ था। उसका लड़का सब को प्रिय लगा। आप [illegible] ऐसे काम करिये जिससे सब के प्रिय पात्र बन जाओ। जो काम परमात्मा को न [illegible] मत करिये। परमात्मा को वही काम अच्छा लगता है जिससे दीन दुःखी और

'तस्स गब्भस्स अणुकम्पट्ठयाए'

अर्थात् धारिणी रानी ने उस गर्भ की अनुकम्पा के लिए ऐसा किया, वैसा किया इत्यादि। शास्त्र का ऐसा वचन होते हुए भी यह कहना कि जापेवाली बाई को पानी पिलाने से भी तेले का दण्ड आता है महज अज्ञानता सूचित करता है।

धनवान् लोगों ने अपने बर्ताव से गरीबों के लिए अनेक अड़चने उत्पन्न करदी हैं। विवाह शादी में हजारों रुपये खर्च करके धनवान् लोग लक्ष्मी का मजा लेते हैं। उनकी देखा-देखी गरीब लोग भी अपने घर बार बेंचकर ऐसा करते हैं। जब धनवानों ने अपनी बीबियों को प्रसूति ग्रह में भेजना शुरु किया है तो गरीब उनकी नकल क्यों न करेंगे। प्रसूतिगृह में भक्ष्या भक्ष्य का खयाल नहीं रखा जाता। शराब तक पिया जाता है। हमारे शास्त्रों में प्रसव सम्बन्धी सब बातें बताई हुई है। उन को सीखकर आचरण में लाना हर एक माता पिता का कर्त्तव्य है। यदि कोई पुरुप इन बातों को नहीं जानता हैं तो उसे तब तक शादी करने और संतानोत्पत्ति करने का कोई अधिकार नहीं है।

शास्त्र में बालक के जन्म समय के लिए ऐसा पाठ आया है—

आरोग्गा आरोग्गं दारयं पयाया

अर्थात्—स्वस्थ माता ने स्वस्थ बालक को जन्म दिया। बालक भी आनन्द पूर्वक जन्मा और माता भी कुशल रही। ऐसा तब हो सकता है जब माता पिता प्रसव सम्बन्धी सब बातों का ज्ञान रखते हो।

सेठ जिनदास के घर भी आनन्द पूर्वक पुत्र का जन्म हुआ। सेठ ने पुत्र जन्म की खुशी में बहुत उत्सव किया। आजकल के उत्सवों में और सेठ द्वारा मनाये गये उत्सव में बड़ा अन्तर है। आजकल उत्सव इस प्रकार मनावे जाते है जिससे गरीबो को कठिनाई पैदा हो जाती है। उत्सवों में गरीबों को सहायता पहुँचने के बजाय उनपर बहुत बुरा असर पड़ाता है। अपने गरीब भाईयो को सहायता पहुँचाना सच्चा सहधर्मी वात्सल्य है। एक आध बार लड्डु जीमा देने में कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। सह धर्मी वात्सल्य के अनेक तरीके हैं। विवेक की जरुरत है। कपड़ा तथा अन्य वस्तुए खरीद कर भी दी जासकती है, नौकरी वा धन्धे में लगाकर सहायता की जा सकती है। कन्या देने लेने में भी सह धर्मी वात्सल्य हो सकता है।

पुत्र जन्म की खुशी में कैदी छोड़े जाते थे। छोटे पद वालों को बड़े पद पर पहुँचाया जाता था। पुत्र जन्म की प्रथम खबर देने वाली दासी का राजाने अपने हाथों से सिर धोया और उसे दासत्व से मुक्त कर दिया। जो सेठ होते वे दान देकर खुशीयां मनाते थे। गरीबों की सहायता करते। आज की तरह व्यर्थ धूम धाम और वाहियात तरीकों से पैसा न उड़ाते थे।

जिनदास नगर सेठ था। राजा बाद में माना जाता है पहले नगर सेठ की पूछ होती है सब लोग घर घर उत्सव करने लगे। सुना है। उदयपुर के राणा नगर सेठ की स्वीकृति के बिना कुछ न कर सकते थे। नगर सेठ राजा और प्रजा का बीच का आदमी होता है। राजा प्रजा में मेल साधने वाला होता है। राजा द्वारा प्रजा को कष्ट न हो तथा प्रजा भी राजानियमों का उलंघन न करे इस बात का भार नगर सेठ पर रहा करता था। पुण्यवान् वह है जिसके कारण अधिक से अधिक लोगों को सुख मिले और जिसकी सब प्रशंसा करें। लकड़ी की गाड़ी भरी हो किन्तु उसमें यदि एक चन्दन का टुकड़ा हो तो उसका महत्त्व गिना जाता है। चाहे कोई धनवान् हो किन्तु जनता उसकी प्रशंसा न करती हो तो वह पुण्यवान् नहीं है। और कोई व्यक्ति गरीब है किन्तु आम जनता उसकी प्रशंसा करती है तो वह पुण्यवान् है।

जिनदास के घर पुत्र जन्म होने की खबर शहर में बिजली की तरह फैल गई। चारों ओर से बधाइयां आने लगी। राजा भी खबर सुन कर बहुत प्रसंन हुआ। कैदी छोड़े गये और सेठ के घर बधाई भेजी गई। सेठ के यहां पुत्र होने से कुछ टेक्स भी माफ किये गये। कानूनों में सुधार किया गया। मतलब कि पुण्यवान् के जन्म धारण करने से सर्वत्र खुशियां मनाई जाने लगी।

उत्सव पूरा होने पर सेठ ने पुत्र का नाम करण करने के लिए लोगों से राय ली। सबने कहा, इसका जन्म होते ही सब प्रकार का आनन्द हुआ है और यह देखने में सुन्दरकारी है अत इस का नाम सुदर्शन रखा जाय। सब की सम्मति से सेठ ने उसका नाम सुदर्शन रखा।

जिनदास सेठ था। नगर सेठ था। उसका लड़का सब को प्रिय लगा। आप भी ऐसे काम करिये जिससे सब के प्रिय पात्र बन जाओ। जो काम परमात्मा को पसन्द हो वही करिये। परमात्मा को वही काम अच्छा लगता है जिससे लोग ...

गरीब मनुष्य और प्राणियों को सुख पहुँचे। जो अपने सुख का ही खयाल रखता है वह परमात्मा को प्रिय नहीं होता किन्तु जो अपने सुख दुःखों की परवाह किये बिना दूसरों के सुख के लिए हरदम तय्यार रहता है वह पुण्यवान् है और वही प्रभु का प्यारा भी है। धनवत्ता पुण्यवान् का चिह्न नहीं है। धन तो वैश्या और बेइमानों के पास भी होता है।

जिनदास सबको सुख पहुँचाता था अतः सब का प्रिय पात्र था। आज पुत्र जन्म के कारण उसके वहां आनन्द छा रहा है। आगे का भाव आगे देखा जायगा।

राजकोट
२३—७—३६ का
व्याख्यान

सच्ची जय

" जय जय जिन त्रिभुवन धनी ········ प्रा० "

सामान्य समझवाले लोग समझते है कि प्रार्थना कहीं बाहर से लाकर की जाती अथवा बाहर के शब्द कड़ियों में जोड़े जाते हैं। किन्तु समझदार लोग कहते हैं कि [illegible] बात नहीं है यों तो दुनिया में असली और नकली दोनों प्रकार की चीजें होती हैं। [illegible] आजकल काल प्रभाव से असली वस्तुओं का महत्व हमारी बुद्धि में घटता जा रहा है [illegible] नकली का बढ़ता जा रहा है। फिर भी जो विशेषता असली में होती है वह नकली नहीं हो सकती आजकल सोना, चांदी, हीरा, मोती आदि नकली चल निकले हैं। [illegible] असली ही रहेगा और नकली नकली ही।

प्रार्थना भी दो प्रकार की होती है। एक असली दूसरी नकली। जो प्रार्थना [illegible] की जाए वह असली और जो केवल दांत और होठों से की जाय, जिसके [illegible]

गरीब मनुष्य और प्राणियों को सुख पहुँचे। जो अपने सुख का ही खयाल रखता है वह परमात्मा को प्रिय नहीं होता किन्तु जो अपने सुख दुःखों की परवाह किये बिना दूसरों के सुख के लिए हरदम तय्यार रहता है वह पुण्यवान् है और वही प्रभु का प्यारा भी है। धनवत्ता पुण्यवान् का चिह्न नहीं है। धन तो वैश्या और बेइमानों के पास भी होता है।

जिनदास सबको सुख पहुँचाता था अतः सब का प्रिय पात्र था। आज पुत्र जन्म के कारण उसके वहां आनन्द छा रहा है। आगे का भाव आगे देखा जायगा।

राजकोट
२३—७—३६ का
व्याख्यान

सच्ची जय

"जय जय जिन त्रिभुवन धनी........प्रा०"

सामान्य समझवाले लोग समझते है कि प्रार्थना कहीं बाहर से लाकर की जाती अथवा बाहर के शब्द कड़ियों में जोड़े जाते हैं। किन्तु समझदार लोग कहते हैं कि ऐसी बात नहीं है यों तो दुनिया में असली और नकली दोनों प्रकार की चीजें होती हैं। और आजकल काल प्रभाव से असली वस्तुओं का महत्व हमारी बुद्धि में घटता जा रहा है और नकली का बढ़ता जा रहा है। फिर भी जो विशेषता असली में होती है वह नकली नहीं हो सकती आजकल सोना, चांदी, हीरा, मोती आदि नकली चल निकले हैं। असली असली ही रहेगा और नकली नकली ही।

गरीब मनुष्य और प्राणियों को सुख पहुँचे। जो अपने सुख का ही खयाल रखता है वह परमात्मा को प्रिय नहीं होता किन्तु जो अपने सुख दुःखों की परवाह किये बिना दूसरों के सुख के लिए हरदम तय्यार रहता है वह पुण्यवान् है और वही प्रभु का प्यारा भी है। धनवत्ता पुण्यवान् का चिह्न नहीं है। धन तो वैश्या और बेइमानों के पास भी होता है।

जिनदास सबको सुख पहुँचाता था अतः सब का प्रिय पात्र था। आज पुत्र जन्म के कारण उसके वहां आनन्द छा रहा है। आगे का भाव आगे देखा जायगा।

राजकोट
२३—७—३६ का
व्याख्यान
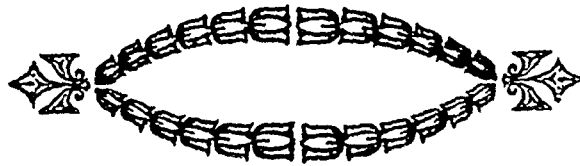
सच्ची जय
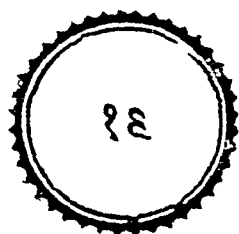
" जय जय जिन त्रिभुवन धनी.........प्रा० "

सामान्य समझवाले लोग समझते है कि प्रार्थना कहीं वाहर से लाकर की जाती है अथवा वाहर के शव्द कड़ियों में जोड़े जाते हैं। किन्तु समझदार लोग कहते हैं कि ऐसी बात नही है यों तो दुनिया में असली और नकली दोनों प्रकार की चीजें होती हैं। और आजकल काल प्रभाव से असली वस्तुओं का महत्व हमारी बुद्धि में घटता जा रहा है और नकली का बढ़ता जा रहा है। फिर भी जो विशेषता असली में होती है वह नकली में नहीं हो सकती आजकल सोना, चांदी, हीरा, मोती आदि नकली चल निकले हैं। असली असली ही रहेगा और नकली नकली ही।

प्रार्थना भी दो प्रकार की होती है। एक असली दूसरी नकली। जो प्रार्थना हृदय से की जाय वह असली और जो केवल दांत और होठों से की जाय, जिसमें हृदय

दिल न हो, वह नकली है। कई लोग इमिटेशन के दागिने पहिनकर अपनी बड़ाई बताना चाहते हैं मगर उनका दिल स्वयं इस बात की गवाही देता है कि यह पोपलिला कब तक चल सकेगी। कई लोग, लोगों की दृष्टि में ऊँचा उठने के लिए परमात्मा की प्रार्थना करने का ढोंग किया करते हैं। ऐसी प्रार्थना से लोक रंजन और भक्तों में गिनती भले हो जाय मगर परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकते। परमात्मा तब प्रसन्न हों जब संसार के झगड़ों को हृदय से निकाल कर दिल से यह कहा जाय कि—

जय जय जिन त्रिभुवन धनी, करूणा निधि करतार।
सेव्या सुरतरू जेहवो, वांछित फल दातार ॥ जय० ॥

हे प्रभो! तेरा जय जय कार हो। यदि हृदय से परमात्मा की जयमनाली फिर अपनी जय की वांछा छोड़नी होगी। परमात्मा समष्टि का रूप है और हम व्यष्टि रूप है। समष्टि की जय में व्यष्टि की जय समा जाती है किन्तु व्यष्टि की जय में समष्टि की जय नहीं समाती। वृक्ष कहने से उसमें आम का वृक्ष भी आ जाता है किन्तु आम का वृक्ष कहने से उसके सिवा अन्य सब वृक्ष छूट जाते हैं। आत्मा अनन्त काल से केवल अपनी ही जय चाहता है और अपनी जय मनवाने के लिए काम क्रोध, लोभ, भय प्रदर्शन आदि दुष्ट औजारों का सहारा लेता है। किन्तु इस प्रयत्न से आत्मा की जय होने के बजाय पतन अवश्य हुआ है। यदि सच्ची जय मानी होतो अपनी व्यक्तिगत सुख सुविधा का खयाल करो। अर्थात् परमात्मा की जय मनाओ। आत्मा से मतलब व्यक्ति का है और परमात्मा से सब चराचर प्राणि का। आत्मा की जय चाहने में क्रोधाधिका सहारा लेना पड़ता है और परमात्मा की जय चाहने में क्षमा, शांति, निर्लोभ आदि का। हे प्रभो! अब से मैं जहां कहीं क्षमा शांति निर्लोभ आदि गुण देखूं वहां यह समझकर प्रसन्न होऊँ कि वहां परमात्मा की जय हो रही है। सद्गुणों से ईर्षा करना परमात्मा से ईर्षा करना और सद्गुणों से प्रेम करना परमात्मा से प्रेम करना है।

घर में रखा दीपक घर ही में प्रकाश देता है किन्तु सूर्य सर्वत्र प्रकाश देता है। दीपक और सूर्य में जितना अन्तर है उतना आत्मा और परमात्मा में है। दीपक के बुझ जाने पर एक घर मे अंधेरा छा जाता है। मगर सूर्य के अस्त हो जाने पर सर्वत्र अंधेरा छा जाता है। दीपक के टिम-टिमाते प्रकाश भी वांछा करने की अपेक्षा जाज्वल्यमान सूर्य की ही प्रार्थना क्यों न की जाय जिससे अपना और पराया सब घर प्रकाश से प्रकाशित हो जायं।

राजा श्रेणिक अनाथी मुनि की जयजयकार में मिल गया है। वह मुनि की क्षमा, निर्लोभता और शान्ति देखकर अपने आपको भूल गया। अपना अहंत्व याद न रहा। आप लोग भी मैं मैं को छोड़कर यह मानने लग जाइये कि मैं कुछ नहीं हूं जो कुछ है वह तू ही तू है यह परमात्मा की जय चाहने का काम है।

तस्स पाये उ वन्दित्ता, काऊण य पयाहिणं।
नाइदूर मणासन्ने पंजली पडिपुच्छइ ॥ ७ ॥

अभीतक गणधरों नें राजा के मनोभावों का वर्णन किया था अब इस गाथा में उसकी शारीरिक चेष्टा का वर्णन करते है। राजा क्षत्रिय था। क्षत्रिय का हृदय सचाई जान लेने के बाद तदनुसार आचरण करने में नहीं चूकता। वैसे क्षत्रिय सिर चला जाने पर भी किसी को सिर नहीं झुकाता लेकिन गुण जान लेने के बाद सिर झुकाने में संकोच भी नहीं करता। राणा प्रताप ने अकबर बादशाह को सिर नहीं झुकाया सो नहीं ही झुकाया। सुना है अकबर ने राणा को यहां तक प्रलोभन दिया कि यदि तुम मेरी आधिनता स्वीकार करलो तो मै तुम्हे अपने राज्य का छटा हिस्सा ददूंगा। राणा ने यह स्वीकार नहीं किया किन्तु जंगल में रहना मंजूर किया। इसके विपरित जिनमें गुण देखे उनको राणा ने झुकाया है। जिसके फोटो उदयपुर में मौजुद है।

राजा श्रेणिक भी मुनि में गुण देखकर वाहन पर से उतर पड़ा और वह मस्तक जो कष्ट सहन कर ने पर भी कभी न झुका था, मुनि के चरणों में झुकगया। इतना ही नहीं किन्तु मुनि की प्रदक्षिणा करके उनके गुणों का वरण भी कर लिया।

आजकल प्रदक्षिणा का दूसरा अर्थ लिया जाता है। मैं दूसरा अर्थ बताता हूं। मेरे अर्थ के विरुद्ध कोई अच्छा अर्थ बतादेगा तो मैं उसे भी मानने को तय्यार हूं। यह बात दूसरी है कि आजकल परम्परा से प्रदक्षिणा का अर्थ लोग दूसरा ही मानते हैं। परम्परा की बात अलग है और शास्त्र की बात अलग है। शास्त्र में जहां कहीं वर्णन आया है वहां पर कहा है—

आलोय पणामं करेइ । भगवती सूत्र ।

जहां से मुनि दृष्टि पथ में पड़े वहीं से पैर वन्दन करना और फिर समीप पहुंचने पर प्रदक्षिणा करना। प्रदक्षिणा का अर्थ आस पास चारों ओर चक्कर लगाना है। किन्तु

जगह से घूमना शुरू किया वहीं आकर पूरा करना चाहिए। आवर्तन और प्रदक्षिणा में अन्तर है। आवर्तन का मतलब हाथ जोड़कर हाथों को एक कान से शुरू करके दूसरे कान तक लेजाना एक आवर्तन है। मुनि वन्दन के पाठ में '**पयाहिणं**' पदका अर्थ प्रदक्षिणा करता है।

लग्न के समय वर-वधू अग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं। पति के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा करने वाली हिन्दु बालिका अपने प्राण देकर भी पति का साथ न छोड़ेगी। उस समय की गई प्रतिज्ञा से भी विमुख न होगी। निष्ठान् पत्नी प्रदक्षिणा के बाद पति के सिवा समस्त पुरुषों को पिता और भाई के समान मानेंगी। निष्ठावान् पुरुष भी इसी प्रकार अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करता है।

यह लौकिक व्यवहार की बात हुई। यहां तो लोकोत्तर मुनि की प्रदक्षिणा की बात चल रही है। राजा ने मुनि की प्रदक्षिणा करके उनके गुणों को अपना लिया है। उनको अपना गुरु मानकर हाथ जोड़कर न अति समीप और न अति दूर बैठ गया। बहुत समीप बैठने से अपने अंग प्रत्यंगों से आसातना होने की संभावना रहती है और बहुत दूर बैठने से उनके द्वारा कही हुई बातें नही सुनाई देतीं। इस प्रकार बैठकर राजा ने मुनि से प्रश्न किया।

आजकल भी प्रश्न पूछने का रिवाज तो विद्यमान है मगर प्रश्न पूछने के साथ जितने विनय की आवश्यकता है उतना नहीं दिखाई देता। विनय रहित प्रश्न पूछना, वैसा है, जैसा पपीहा पानी के लिए पियू पियू की रट लगाता रहे किन्तु पानी बरसने पर अपना मुख बन्द करले। नियम भाव से गुरु का उत्तर शिष्य हृदय में धारण नही कर सकता। विनय पूर्वक बैठकर राजा श्रेणिक ने यह प्रश्न किया—

तरुणो सि अज्जो पव्वइओ, भोग कालम्मि संजया।
उवट्ठिओ सिसामण्णे, एयमट्ठं सुणेमिता॥

राजा स्वयं अनेक कला-कौशल, विज्ञान-दर्शन आदि तत्त्वों का जानकार होने से उनके सम्बन्ध में प्रश्न पूछ सकता था। किन्तु ऐसा न करके एक सादा प्रश्न किया। प्रश्न पूछने के पहले मुनि से इजाजत लेली कि आपकी आज्ञा होतो एक प्रश्न पूछूं। जब मुनि ने कहा कि तुम जो पूछना चाहो, पूछ सकते हो तब राजाने पूछा कि हे मुने? मैं यह जानना

चाहता हूं कि आपने भरयौवन में दीक्षा क्यों अंगीकार की है ? इस यौवनावस्था में तो भोगोप भोग करना अच्छा लगता है, आप संसार से विरक्त होकर चारित्र ग्रहण करके क्यों निकल गये हैं ? यदि आप वृद्ध होते और ऐसा करते तो मैं यह प्रश्न ही न करता । यदि आपके समान सब लोग युवावस्था में संयम धारण करने लग जायं तो गजब होजाय । मैं सब से यह प्रश्न नहीं पूछ सकता मगर जो युवावस्थामें दीक्षित होकर मेरे सामने उपस्थित है उससे कारण पूछना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं । मै सब चोरियों का पता नहीं लगा सकता मगर जो चोरी मेरे सामने होती हो उसे रोकना मेरा परम कर्त्तव्य है । यदि मै अपने कर्त्तव्य का पालन न करूं तो मैं राजा कैसे कहलाऊं । अनुचित और अस्थानीय काम रोकना मेरा फरज है । मैं पहले आप के इस अस्थानीय प्रवृत्ति का कारण जानना चाहता हूं। यदि मेरे प्रश्न करने में किसी प्रकार की भूल हो तो वह बताइये अन्यथा संयम धारण करने का कारण बताइये । यदि आप ने किसी आफत में आ जाने के कारण अथवा किसी के चक्र में आकर संयम ले लिया है तो वह भी निःसंकोच हो कर कहिये जिससे मै आपके दुःख दूर करने में सहायक बन सकूं !

राजा के समान आज का नवयुवक वर्ग भी ऐसी शंका किया करता है । मानो उसकी शंका का समाधान करने के लिए ही गणधरों ने इस अध्ययन की रचना की हो ! अपने मन में किसी प्रकार की शंका हो तो राजा की तरह विनय भाव पूर्वक प्रश्न किया जाय तो शंका का समाधान हो जाय । किन्तु आज तो लोग पाण्डितम्मन्य बनकर हम सब कुछ जानते हैं ऐसा मान बैठते हैं तब शंका का समाधान कैसे हो । यह रवैया खराबी का कारण है ।

आज के युवकों का जो कथन है उसे राजा श्रेणिक मुनि के समक्ष उपस्थित कर रहा है । शास्त्र त्रिकाल दर्शी है अतः आज के युवकों की शंका का समाधान इस अध्ययन में आ गया है ।

संसार में दो प्रकार के लोक हैं। एक तो वस्तु का सदुपयोग करने वाले और दूसरे दुरुपयोग करने वाले। कुछ लोग इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर यह विचार करते है कि दूसरी योनियो में जो सुख सुलभ न था वह इस जन्म में मिला है अतः खूब भोग भोगने चाहिए। पर ज्ञानी कहते है कि भोग भोगने से मनुष्य शरीर का सदुपयोग नहीं होता। भोग भोगने से पाशविक जीवन उन्नत बनाता है। कदाचित् आप पशुओं से ज्यादा भोग भोग सको तो बड़े पशु कहला सकते हो मनुष्यता के लिए भोगों का त्याग आवश्यक है। भोगादि तो मनुष्य और पशुओं में समान है।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्य मेतत्प शुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधि को विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें पशु और मनुष्यों में समान रूप से पाई जातीं हैं। यदि पशु से मनुष्य में कोई विशेषता है तो वह धर्म की है। मनुव्य धर्म कर सकता है अर्थात् आत्मा से परमात्मा बनने का प्रयत्न कर सकता है। पशु नहीं कर सकता। यदि मनुष्य धर्म न करे तो वह पशुतुल्य है। फिर उसके और पशुओ के कामों में कोई फर्क नहीं रह जाता। आप चाहे सौ सौ रुपये का ग्रास खाते हो और जैसा कि सुना है एक हजार पौण्ड का एक कप होता है, पीते हो, किन्तु यह तो पशु भी खा पी सकता है यदि उसे खिलाया पिलाया जाय। न मिलने की अवस्था में तो मनुष्य भी भी नहीं खा पी सकता। आप जरी के महीन कपड़े पहिनो और रंग महलों में निवास करो तो पशु भी ऐसा कर सकते हैं बशर्ते कि उनसे ऐसा करवाया जाय किसी लार्ड ने कुत्ते कुत्ती का विवाह कराया और उसमें लाखों रुपये पूरे कर दिए। क्या इससे कुत्ता कुत्ती मनुष्य बन गये? कदापि नहीं। यदि विचार किया जाय तो आप लोग पशुओं का झूंठा खाते हो हो। शहद खाते हो वह मक्खियों की झूठन है। दूध पीते हो वह बछले का झूठा है। बल्कि उसका हक्क मार कर आप पीते हो। अतः आहार, निद्रा, भय, और मैथुन की विशेषता से आप में पशुओं से विशेपता नही आ सकती।

धर्मो हि तेपामधि को विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निष्पारिग्रहिता आदि ऊंचे दर्जे के गुणों का पालन मनुष्य ही कर सकता है पशु नहीं कर सकता। इतने ऊंचे दर्जे की समझ पशु में नहीं होती कि वह इन उदार गुणों को अपने जीवन में पचा सके। अतः भाइयों! भोगों में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता मत मानो मगर सद्गुण वृद्धि करने में अपने जीवन की

लता मानो। राजा श्रेणिक ने मनुष्य जीवन को भोग भोगने के लिए मानकर ही मुनि के
अ प्रश्न रखा है मुनि क्या उत्तर देते हैं इसका विचार फिर किया जायगा।

दर्शन चरित्र—

पंच धाय हुलरावे लाल को, पाले विविध प्रकार।
चन्द्र कला सम बढ़े कुँवरजी, सुन्दर अति सुकुमार॥धन०॥१५॥

यह पुन्यवान् की कथा है। लोग पुण्यवान् कहलाने में महत्व समझते हैं किन्तु स्तव में कौन पुण्यवान् है और किस प्रकार पुण्यवान् हुआ जाता है यह आप इस चरित्र समझिये।

जिनदास सेठ ने सबकी सम्मति से बालक का नाम सुदर्शन रख लिया। पांच यों की संरक्षकता में बालक बढ़ने लगा। भीतर पांच धायें संभाल रखती थीं और बाहर ठारह दश की दासियां बालक को शिक्षा देती थीं।

यह प्रश्न होता है कि एक बालक को संभालने के लिए इतनी दासियों की क्या मावश्यकता थी? इसका समाधान यह है कि पांच धाईयों के जिम्मे पांच काम थे। एक दूध लाती, दूसरी स्नानादि कराती, तीसरी शरीर मंडन करती, चौथी गोद में लेकर खेलाती और पांचवी खिलौनों से खेलाती तथा अंगूली पकड़ कर चलाती फिराती थी। एक धाय यह सब काम कर सकती है किन्तु सार्वत्रिक विकास के लिए पांच धायों की जरूरत थी। दूध पिलाने के लिए गाय भैंस आदि की अपेक्षा धाय विशेष उपयोगी गिनी गई है क्यों कि दूध में भी बच्चों के संस्कार घड़ने की शक्ति रही हुई है। पशु दूध की अपेक्षा स्त्री का दूध उत्तम है। 'जैसा आहार वैसा उद्गार' के अनुसार दूध पिलाने में भी खास विचार रखना चाहिए।

किसी भाई के मन में यह शंका हो कि दूध भी गाय के अंगों में से निकलता है [illegible] भी उसके अंगों से ही, अतः मांस खाने में क्या हर्ज है, तो उसे नीचे [illegible] [illegible] से लेनी चाहिए।

दूध निकालने में कष्ट नहीं होता किन्तु यदि न निकाला जाय तो कष्ट होता है। [illegible] मांस के लिए पशु या गाय आदि की हत्या करनी पड़ती [illegible]

संसार में दो प्रकार के लोक हैं। एक तो वस्तु का सदुपयोग करने वाले और दूसरे दुरुपयोग करने वाले। कुछ लोग इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर यह विचार करते है कि दूसरी योनियों में जो सुख सुलभ न था वह इस जन्म में मिला है अतः खूब भोग भोगने चाहिए। पर ज्ञानी कहते है कि भोग भोगने से मनुष्य शरीर का सदुपयोग नहीं होता। भोग भोगने से पाशविक जीवन उन्नत बनाता है। कदाचित् आप पशुओं से ज्यादा भोग भोग सको तो बड़े पशु कहला सकते हो मनुष्यता के लिए भोगों का त्याग आवश्यक है। भोगादि तो मनुष्य और पशुओं में समान है।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, सामान्य मेतत्प शुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभि समानाः॥

आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार बातें पशु और मनुष्यों में समान रूप से पाई जातीं हैं। यदि पशु से मनुष्य में कोई विशेषता है तो वह धर्म की है। मनुष्य धर्म कर सकता है अर्थात् आत्मा से परमात्मा बनने का प्रयत्न कर सकता है। पशु नहीं कर सकता। यदि मनुष्य धर्म न करे तो वह पशुतुल्य है। फिर उसके और पशुओं के कामों में कोई फर्क नहीं रह जाता। आप चाहे सौ सौ रुपये का ग्रास खाते हो और जैसा कि सुना है एक हजार पौण्ड का एक कप होता है, पीते हो, किन्तु यह तो पशु भी खा पी सकता है यदि उसे खिलाया पिलाया जाय। न मिलने की अवस्था में तो मनुष्य भी भी नहीं खा पी सकता। आप जरी के महीन कपड़े पहिनो और रंग महलों में निवास करो तो पशु भी ऐसा कर सकते हैं बशर्ते कि उनसे ऐसा करवाया जाय किसी लार्ड ने कुत्ते कुत्ती का विवाह कराया और उसमें लाखों रुपये पूरे कर दिए। क्या इससे कुत्ता कुत्ती मनुष्य बन गये? कदापि नहीं। यदि विचार किया जाय तो आप लोग पशुओं का झूंठा खाते हो हो। शहद खाते हो वह मक्खियों की झूठन है। दूध पीते हो वह बछड़े का झूठा है। बल्कि उसका हक्क मार कर आप पीते हो। अतः आहार, निद्रा, भय, और मैथुन की विशेषता से आप में पशुओं से विशेषता नहीं आ सकती।

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।

अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, निष्परिग्रहिता आदि ऊंचे दर्जे के गुणों का पालन मनुष्य ही कर सकता है पशु नहीं कर सकता। इतने ऊंचे दर्जे की समझ पशु में नहीं होती कि वह इन उदार गुणों को अपने जीवन में पचा सके। अतः भाइयो! भोगों में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता मत मानो मगर सद्गुण वृद्धि करने में अपने जीवन की

लता मानो। राजा श्रेणिक ने मनुष्य जीवन को भोग भोगने के लिए मानकर ही मुनि के
ा प्रश्न रखा है मुनि क्या उत्तर देते हैं इसका विचार फिर किया जायगा।

र्शन चरित्र—

पंच धाय हुलरावे लाल को, पाले विविध प्रकार।
चन्द्र कला सम बढ़े कुँवरजी, सुन्दर अति सुकुमार॥धन०॥१५॥

यह पुन्यवान् की कथा है। लोग पुण्यवान् कहलाने में महत्व समझते हैं किन्तु
तव में कौन पुण्यवान् है और किस प्रकार पुण्यवान् हुआ जाता है यह बात इस चरित्र
समझिये।

जिनदास सेठ ने सबकी सम्मति से बालक का नाम सुदर्शन रख लिया। पांच
ों की संरक्षकता में बालक बढ़ने लगा। भीतर पांच धायें संभाल रखती थी और बाहर
ारह दश की दासियां बालक को शिक्षा देती थीं।

यह प्रश्न होता है कि एक बालक को संभालने के लिए इतनी दासियों की क्या
वश्यकता थी? इसका समाधान यह है कि पांच धाईयों के जिम्मे पांच काम थे। एक दूध
ाती, दूसरी स्नानादि कराती, तीसरी शरीर मंडन करती, चौथी गोद में लेकर खेलाती
र पांचवीं खिलौनों से खेलाती तथा अंगुली पकड़ कर चलाती फिराती थी। एक धाय यह
ा काम कर सकती है किन्तु सार्वत्रिक विकास के लिए पांच धायों की जरूरत थी। दूध
लाने के लिए गाय भैंस आदि की अपेक्षा धाय विशेष उपयोगी गिनी गई है क्यों कि
ा में भी बच्चों के संस्कार घड़ने की शक्ति रही हुई है। पशु दूध की अपेक्षा स्त्री का दूध
तम है। '**जैसा आहार वैसा उद्गार**' के अनुसार दूध पिलाने में भी खास विचार
ना चाहिए।

किसी भाई के मन में यह शंका हो कि दूध भी गाय के अंगो में से निकलता है
ौर मांस भी उसके अंगो से ही, अतः मांस खाने में क्या हर्ज है, तो उसे नीचे लिखी
ात ध्यान से लेनी चाहिए।

दूध निकालने में कष्ट नहीं होता किन्तु यदि न निकाला जाय तो कष्ट होता है।
सके विपरीत मांस के लिए पशु या गाय आदि की हत्या करनी पड़ती है अतः उस घोर

वेदना होती है। दूध प्रेम के आकर्षण से निकलता है जबकि मांस क्रोध के वशीभूत होकर। जब बच्चा स्तनपान करता है तब माता को प्रेम होता है और दूध आने लगता है। यदि कोई बच्चा स्तन काट खाय तो माता को गुस्सा आता है। जो गाय हमें दूध पिलाती है उसी का मांस खाना हरामखोरी है। क्रोध में भरे हुए पशु का मांस खाने से खाने वाले में क्रोध के संस्कार आये बिना नहीं रह सकते। मांस खाने से शैतानियत आती है। दूध उत्तम आहार में गिना जाता है।

गोद में खेलाने वाली धायका भी खयाल करना चाहिए। वृक्ष का पौधा जैसी भूमि में रहता है वह वैसा ही होता है उसी प्रकार बच्चा भी जैसे संस्कार वाली धाय की गोद में खेलेगा उसके गुणावगुण को ग्रहण करेगा। नहलाने धुलाने और शरीर मंडन का भी बालक के विकास में पूरा स्थान है। खिलौनों का भी बालक पर असर पड़ता है। एक जगह देखा गया कि एक बाई रबर का पुतला लेकर खेल रही थी। उसे प्यार कर रही थी। उसका रंग भूरा था। इससे मालूम होता है कि भूरा बालक सबको पसंद पडता है। काले रंग का कम पसंद पड़ता है। आजकल विदेशी खिलौनों ने बहुत नुकसान पहुंचाया है। खिलौने ऐसे हों जिनसे स्पर्श करने से स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचे।

धाय बालक की अंगूली पकड़ कर उसे चलना सिखाती है। वह बच्चे की चाल अपनी चाल मिलाती है। इस प्रकार धीरे धीरे चला कर उसके शरीर में ताकत पैदा करती है। चाल में भी शिक्षा की आवश्यकता है। यदि आपको लिखने की शिक्षा मिली हो तभी आप सुन्दर अक्षर अक्षर और भाव व्यक्त कर सकते हैं। जिसको जिस काम की शिक्षा मिली हो वही वह काम सुन्दरता से कर सकता है।

बच्चे का विकास धीरे धीरे होता है। जल्दी करने से कुछ नहीं होता बहुत से लोग अपने छोटे बच्चों को जल्दी जल्दी ज्ञानी बना देना चाहते हैं और उन पर उनकी शक्ति से ज्यादा वजन डाल देते हैं। जिससे बच्चों की बुद्धि विकसित होने के बजाय कुण्ठित हो जाती है। इसी प्रकार बच्चों में रहे हुए इस जन्म या पूर्व जन्म के कुसंस्कारों को मिटाने के लिए भी बड़े धैर्य की जरूरत है। मारने पीटने या अन्य गन्दे तरीकों से यह काम नहीं हो सकता। माता पिताओं की उतावल से बच्चे की उन्नति में बाधा पड़ती है। उतावल करने से स्कूलों और कालेजों में बच्चों के चरित्र कैसे बिगड़ जाते हैं यह बात जानने वाले ही जानते हैं।

पांच धाय माताओं के अलावा अठारह देश की अठारह दासियां भी रखी हुई थी जो सुदर्शन को विविध शिक्षाएं देती थीं। भिन्न भिन्न देश की भाषा का ज्ञान कराना, बातचीत के सिलसिले में ही जुदा जुदा देशों की भाषा बालक सीख सकता था और उनके पहनाव व रीति रिवाजों का ज्ञान भी कर लेता था। आजकल तो बेचारे बच्चे अंग्रेजी के हिज्जे याद करते करते परेशान हो जाते हैं। सात समुद्र पार की विदेशी भाषा का बालक की इस नाजुक आयु में कितना बुरा असर होता है। समझ में नहीं आता कि क्यों छोटे बच्चों पर यह बजन डाला जाता है।

जब सुदर्शन आठ वर्ष का हुआ तब पाठशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया। आज कल पांच वर्ष का बच्चा हो गया कि भेजा पाठशाला को। जब सुदर्शन को अनेक बातों का ज्ञान हो गया तब पाठशाला को भेजा गया था जब सुदर्शन आठ बरस का हो गया तब लोग उसका शरीर और स्वभाव देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। उसके रंग ढंग से लोगों ने अनुमान लगा लिया कि यह होनहार बालक है। आगे क्या होता है सो यथावसर बताया जायगा।

राजकोट
२६—७—३६ का
व्याख्यान
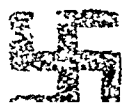
मानव धर्म
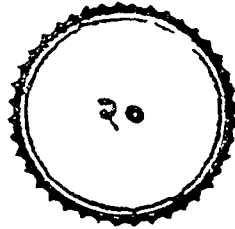
"श्रेयांस जिनन्द सुमर रे ········ प्रा० "

आज मुझे मानव धर्म पर बोलना है। किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है तथा प्रार्थना करना भी मानव धर्म है अतः इस विषय में कुछ कहता हू।

इस प्रार्थना में कहा है कि हे आत्मन्! उठ जाग। परमात्मा का स्मरण कर। आज मैं हिन्दी भाषा में ही बोलूंगा। मुझे मालूम है कि बाइयों को मेरी हिन्दी भाषा सम-

झने में दिक्कत होगी किन्तु उन्हें उत्साह रखकर समझने की कोशिश करनी चाहिये। हिन्दी देश की राष्ट्र भाषा है। बीस करोड़ व्यक्ति इसे बोलते हैं मैं आपकी भाषा अपनाता हूं अतः आप भी मेरी भाषा अपनाइयें।

परमात्मा की प्रार्थना क्यों करनी चाहिए और वह कहां से आती है यह बताने के लिए मै उदाहरण देता हूं। मान लीजिये एक बच्चे के हाथ में गन्ना है, जिसे आप शेरड़ी कहते हैं। दूसरे बच्चे के हाथ में शक्कर है। शक्कर वाला बच्चा कहने लगा देख मेरी शक्कर कितनी मीठी है। तब गन्ने वाला लड़का बोला। क्या शक्कर की बड़ाई मारता है। तेरी शक्कर आई कह से है? मेरे गन्ने में से ही तेरी शक्कर निकली है। मेरे इस गन्ने में शक्कर ही शक्कर है।

दोनों बच्चों की बात चीत से यह मालूम होजाता है कि गन्ने में शक्कर ही शक्कर है, यह बात और निखालस शक्कर दोनों ठीक है। गन्ने में से शक्कर निकालने के लिए अनेक क्रियाएं करनी पड़ती है तब निखालस शक्कर बनती है। गन्ने में दूसरी चीजें मिली रहती हैं मगर शक्कर शुद्ध है। शक्कर और गन्ने के मिठास में अन्तर है।

जिस प्रकार गन्ने में शक्कर व्याप्त है उसी प्रकार परमात्मा की प्रार्थना भी आत्मा में व्याप्त है। यह बात दूसरी है कि गन्ने में जिस प्रकार मिठास के उपरान्त कचरा होता है उसी प्रकार आत्मा में प्रार्थना के साथ साथ बहुत सारा कचरा भरा हुआ है गन्ने में से जैसे रस अलग निकाल लिया जाता है और कचरा अलग फेंक दिया जाता है उसी प्रकार यदि पुरुषार्थ किया जाय तो आत्मा का मेल-कचरा भी दूर हो सकता है और तब वह निखालस प्रार्थनामय बन जायगा। महात्मा लोगों ने आत्मा में व्याप्त प्रार्थना को पदों द्वारा हमारे सामने रखी है मगर वह निकली आत्मा में से ही है। यदि अनन्य भाव से प्रार्थना की जाय तो ऐसा अनुभव होने लगेगा कि किसी दूसरे से प्रार्थना नहीं की जा रही है किन्तु अपने भीतर विराजमान शुद्ध निरञ्जन आत्मदेव से ही प्रार्थना की जा रही है। वह भी बाहर के शब्दों द्वारा नहीं किन्तु भीतर से प्रस्फुटित हुए शुद्ध परिणामों से की जा रही है।

यदि कोई व्यक्ति यह विचार कर निराश हो जाय कि जिनके भीतर से प्रार्थना प्रस्फुटित होती है वे ही लोग प्रार्थना कर सकते हैं, मैं क्या करूं, तो यह उसकी भूल है। महात्माओं के द्वारा रचित पदों कडियों का बार बार उच्चारण करने से कभी तुम्हारे भीतर भी प्रार्थना निकलने लगेगी। प्रयत्न से सब कुछ साध्य है। प्रयत्न से ही गन्ने में से श

निकाली जाती है। जो कुछ होगा वह करने से ही होगा। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ न होगा। जब तक भीतर से प्रार्थना न निकले तब तक संतों की बनाई हुई कड़ियों को ही चूसा करो। कुछ न कुछ रस उनमें भी मिल ही जायगा।

मानव-धर्म

आज युवकों की ओर से मुझे सूचना मिली है कि मैं मानव धर्म पर व्याख्यान दूं। वैसे तो मैं प्रतिदिन व्याख्यान सुनाता हूं वे सब मानव धर्म के सम्बन्ध में ही है किन्तु आज इस विषय पर खास बोलना है। मैं इस विषय पर ठीक बोल सकूंगा या नहीं इसका निर्णय आप श्रोताओं पर अवलम्बित है। मगर यह बात निश्चित है कि हम भाड़े के टट्टू नहीं है कि जो व्याख्यान देकर ही रह जायं। हमारे व्यख्यान को कोई माने या न माने मगर हम स्वयं प्राण देकर भी उसकी बातों का पालन करेंगे।

मानव धर्म पर कुछ बोलने के पूर्व हम यह जानलें कि मानव किसे कहते है। जिसके नाक, कान, आख, हाथ, पैर आदि हों तथा जिसकी शक्ल आप हम जैसी हो वह मानव गिना जायगा तो बहुत से पशुओं को भी मानव मानना पड़ेगा। बन्दर की शक्ल मानव जैसी होती है। बल्कि एक पूंछ विशेष होती है। कई जल के प्राणी भी मानवाकृति के होते हैं। क्या उनको मानव कहा जाय? कादपि नहीं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार मनन शील को मनु कहते है और मनु की संतान को मानव। जिसे धर्म अधर्म, पुण्य पाप, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य और हिताहित का विवेक हो वह मनु है। मनु की संतति मानव है। ज्ञानवान् की संतान को मानव कहा गया है। कहने का मतलब यह है कि केवल तुम स्वयं ही ज्ञानवान् नहीं हो किन्तु तुम्हारे पूर्वज भी ज्ञानवान् थे। भगवान् ऋषभदेव की संतान में मनु नाम के कुल गुरु भी थे। मनुस्मृति के रचयिता भी मनु थे। मुसलमान भी आदम को मानते हैं और आदम की सन्तान को इन्सान कहते है। आप अपने पूर्वजों को मत भूल जाइये। उनके सस्कार आप में वंशपरम्परा से आ रहे हैं इसी कारण आप आज इस स्थिति में हैं। वेदान्त और उपनिषदों में मानव का महत्त्व बताया है। मनुष्य को अग्नि भी कहा गया है। अन्न और पानी उसके पेट में जाकर भस्म हो जाते है। पेट में जाकर अन्न पानी किस प्रकार भस्म होते है और किस प्रकार उनका रसभ ग और खलभाग अलग होता है यह विषय आज नहीं छेड़ा जायगा। मगर मनुष्य एक प्रकार की आग है। डाक्टर लोग भी अधिक बीमार व्यक्ति की पहले आग सम्हालते हैं मनुष्य एक जीवित और चलती फिरती अग्नि है, जिस में कुछ भी डाला जाय वह व्यर्थ नहीं जाता, किन्तु उसकी आकृति में परिणत हो जाता है। अन्न पानी से वीर्य बनता है और

डाल कर उसको कोरी रख देते हैं। बिना धर्म के न तो सुधार ही हो सकता है और न जीवन ही बन सकता है।

श्री अनुयोगद्वार सूत्र में उपक्रम के छः भेद बताये गये हैं १ नाम उपक्रम २ स्थापना उपक्रम ३ द्रव्य उपक्रम ४ क्षेत्र उपक्रम ५ काल उपक्रम ६ भव उपक्रम। सब उपक्रमों के वर्णन का अभी समय नहीं है अतः सम्बन्धित उपक्रमों के विषय में कुछ कहता हूं। भूत और भविष्य को छोड़कर जो वर्तमान में बरता है उसका उपक्रम, द्रव्य उपक्रम है। इसके सचित्त और अचित्त दो भेद है। सचित्त उपक्रम के द्विपद चतुष्पद और अपद में तीन भेद है। द्विपद में मनुष्य, चतुष्पद में पशु और अपद में वृक्षादिकों का समावेश होता है। इन सब का उपक्रम होता है। उपक्रम भी दो प्रकार से होता है। १ वस्तु विनाश और २ परिक्रम। वस्तु को भ्रष्ट करना यह वस्तु विनाश है और वस्तु को नाना प्रकार से सुधारना संस्कारित करना परिक्रम है। मनुष्य का शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास करना उसका परिक्रम करना है। जैसे मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता रही हुई है किन्तु जब तक कुंभकार क्रिया द्वारा उसकी शक्ति को विकसित न करे, घड़ा नहीं बन सकता। मिट्टी का उपक्रम किये बिना उसका घड़ा नहीं बन सकता। बिना उपक्रम के कोई मिट्टी में खीचड़ी नहीं पका सकता। हडिया मिट्टी की ही बनती है मगर उपक्रम करने से बनती है। बिना उपक्रम के मिट्टी का ढेला, ढेला ही बना रहेगा। इसी प्रकार मनुष्य शरीर भी एक प्रकार से मिट्टी के ढेले के समान ही है मगर उसका परिक्रम किया जाय तो यह ढेला ऐसे चमत्कार करके दिखा सकता है जिन्हें देखकर दुनिया चकित रह जाती है।

शक्ल या इन्द्रियों की बनावट के कारण ही कोई मानव नहीं कहा जा सकता। मानव तो तब कहा जायगा जब धर्म की बातों का उसमें संस्कार या परिश्रम किया जायगा। आज परिश्रम को विकास कहा जाता है। जिस व्यक्ति का जिस विषय में विकास हो वह उसी ओर प्रगति कर सकता है। जो पढ़ा लिखा है वह थोड़ी देर में बहुत कुछ लिख सकता है। मगर बे पढ़ा व्यक्ति चार हरुफ लिखने में भी बहुत समय लगा देगा। उपक्रम ही इस अन्तर का कारण है। जिसने बचपन में लिखने का खूब अभ्यास किया है वह शीघ्र लिख सकता है। बड़ी उम्र में तो ऐसा मालूम होता है मानो हमारी कलम में सरस्वती उतर आई है मगर विचार करना चाहिए कि वर्तमान की इस सफलता के पीछे भूतकाल का कितना परिश्रम रहा हुआ है। किसी किसान से लिखने के लिए कहा जाय तो वह नहीं लिख

सकेगा क्योंकि बचपन में उसका इस विषय का परिक्रम नहीं हुआ है। यदि आप सदृश पढ़े लिखे लोगों से खेती करने की बात कही जाय तो आप इस में सफल नहीं हो सकते क्योंकि इस विषय में आप का उपक्रम नहीं हुआ है। किन्तु यह न भूल जाइये कि आपका जीवन निर्वाह खेती के उपक्रम से ही होता है। कला कौशल के विकास को शास्त्रकार द्रव्य उपक्रम कहते है।

एक व्यक्ति में सम्पूर्ण उपक्रम नहीं पाया जाता। यदि व्यक्ति का सार्वत्रिक उपक्रम या विकास हो गया तब तो उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर न रह जायगा। व्यक्ति को निराश होने की जरुरत नहीं है उसे विकास के लिए हर क्षण प्रयत्न करते रहना चाहिए।

शास्त्र में मेघकुमार राजकुमार था। उसको गर्भ से लेकर आठ वर्ष तक की उम्र में होने वाली सब क्रियाएं बराबर हुई थी। फिर उसे कलाचार्य को सौम्पादिया। कलाचार्य के पास उसने लिखने से लेकर शुकुन पर्यन्त की ७२ कलाएं सीखीं। इन बहत्तर कलाओं में मानव जीवन की आवश्यक्ता सम्बन्धी सम्पूर्ण बातें आजाती है।

पहले जमाने में हर आदमी बहत्तर कलाओं में प्रवीण होता था। उसे सूत्रतः अर्थतः और कर्मतः इन कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। सूत्रतः का मतलब है पहले इन कलाओं का सामान्य अर्थ के साथ मुखपाठ कराया जाता था। बाद में उनका विवेचन समझाया जाता था। पुस्तकों द्वारा या मौखिक हर कला का सिद्धान्त बताया जाता था यह अर्थतः शिक्षण हुआ। तत्पश्चात् प्रयोग करके, परीक्षण करके उसका अभ्यास कराया जाता था, यह कर्मतः शिक्षा हुई।

आजकल कालेजों की पढ़ाई का ढंग ही निराला है। बड़ी उम्र तक छात्र थ्यारी सिद्धान्त का अध्ययन करते रहते हैं मगर उस थ्योरी को प्रेक्टीस (अभ्यास) में उतारने की कोशिश नहीं की जाती। कोरी किताबी शिक्षा से क्या लाभ जो अमल में न लाई जाय। कॉलेजों में कृषि शास्त्र का अध्ययन करके खेती करने में विद्यार्थी शरम का अनुभव करें अथवा अपने नाजुक स्वास्थ्य के कारण ऐसा न कर सकें तो इस अध्ययन का क्या फलितार्थ हुआ। जब तक पढ़ाई को क्रिया का रूप न दिया जाय तब तक वह बेकार है।

अतः मुझे अपने युवक भाइयों से कहना है कि आप लोग केवल पुस्तकीय विद्याएँ पढ़कर के ही न रह जाना मगर उनमें सीखे हुए ज्ञान को आचरण में लाने की पूरी

कोशिश करना। आज भारत गारत इसी लिए हो रहा है कि उसके युवक थोड़ा पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करके ही अभिमान में फूल जाते हैं। पुस्तकों के ज्ञान से ही वे सन्तुष्ट हो जाते हैं मगर कोरे ज्ञान से उनका व उनके कुटुम्ब का तथा देश का पेट नहीं भर सकता। ज्ञान के अनुसार क्रिया करना आवश्यक है।

सुना है एक अमरिकन व्यक्ति भारत में सिविल (ऊँची नौकरी) करके पेंशन याफ्ता होकर अपने देश को लौट गया। वहां एक दिन उन का एक भारतीय मित्र भ्रमण करता हुआ उनके घर पर आ निकला, भारतीय ने उनकी स्त्री से पूछा कि साहब कहां गये हैं। स्त्री ने जवाब दिया, बैठिये अभी आये जाते हैं। थोड़ी देर बाद एक सज्जन जांघिया पहिने हुए, हाथ में कुदाला लिए हुए और मिट्टी में सने हुए आये जिन्हें पहिचान कर भारतीय मित्र मन में बड़ा अचरज करने लगा कि एक बहुत बड़े पद पर कार्य कर चुकने वाला व्यक्ति, ऐसी शक्ल बनाकर खेत में काम करता है। वह साहब से मिलने के लिए आगे बढ़ा मगर साहब बिना कुछ बोले ही सीधा स्नान घर में चला गया। स्नान करके कपड़े पहिन कर अपने बैठक के कमरे में आकर भारतीय दोस्त को बुलाकर साहब बहादूर बातें करने लगे। बातचीत के दौरान में भारतीय ने पूछा कि कहां तो आपका वह रूआब और पोजिशन जो भारत में थी और कहां आज आप की यह दशा जो खेती करने पर उत्तर आये। साहब ने कहा ऐ मेरे दोस्त! तुम्हारे भारत देश में यही तो कमी है कि तुम लोग थोड़ासा ऊँचा पद पाकर फूल कर कुप्पा हो जाते हो। फिर उस मान मर्यादा के निर्वाह के लिए जीवन पर्यन्त कष्ट में पड़े रहते हो और शक्ति उपरान्त खर्च खाते रहते हो। तुम्हारी देखा देखी हम लोगों को भी भारत में उसी झूठे पोजिशन में रहना पड़ता है। मेरे पास धन की कोई कमी नहीं मगर हम लोग अपने काम को नहीं छोड़ते। जो धन्धा मेरे पूर्वज वंशपरम्परा से करते आ रहे हैं उसे क्यों छोड़ा जाय।

मित्रो! अमेरिका के धनवानों की तो यह बात है और भारत के धनवान् और शिक्षित लोगों की यह दशा है कि वे दूसरों के लिए बोझा रूप बन जाते हैं। भारत का सौभाग्य है कि अभी तक भारतीय किसान इस सभ्यता तक नहीं पहुँचे हैं कि खेती बाड़ी छोड़ कर ऐश और आराम का जीवन व्यतीत करें। नहीं तो भारत को बड़ी कठिनाई में पड़ना पड़ता। खान देश आदि में कुछ किसान ऐसे हैं, जो पढ़े लिखे हैं और चालाकी करने में मज़ा मानते हैं, श्रम कम करते हैं। मगर सब किसान ऐसे नहीं है।

शास्त्र कथित परिश्रम का खयाल कीजिये। ऐसा न हो कि पढ़े लिखे और बे पढ़ों के बीच एक मजबूत खाई तय्यार हो जाय! नये और पुराने लोगों के बीच मेल सधता रहे, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। नहीं तो जीवन निर्वाह कठिन हो जायगा। और काम न चल सकेगा।

शास्त्र में कही हुई बहत्तर कलाएं द्रव्य उपक्रम में हैं। कोई भाई यह कहे कि महाराज हमें द्रव्य उपक्रम से क्या मतलब है. हमें भाव उपक्रम बताइये जिससे हम हमारी आत्मा का कल्याण करें। उसको मेरा कहना है कि द्रव्योन्नति के बिना भावोन्नति नहीं होती। जिसका शरीर और मन कमजोर है वह क्या भावोन्नति करेगा? उस पर धर्म की शिक्षा का क्या असर होगा? आज शरीर का परिश्रम न किया जाने के कारण शरीर सशक्त नहीं है। अहमदनगर में राममूर्ति पहलवान ने कहा था कि मुझे कैसा ही दुबला और कमजोर पांच वर्ष का बच्चा सौंप दिया जाय मैं उसको बीसवें वर्ष में पहुंचते हुए राम मूर्ति बना दूंगा। परिश्रम से यह शक्य है। भाव परिश्रम के लिए द्रव्य परिश्रम आवश्यक है। यही कारण है कि शास्त्रों में संहनन (शरीर की मजबूती) को भी मोक्ष में निमित्त कारण माना है।

यह द्रव्य धर्म की बात हुई। भाव धर्म के लिए द्रव्य धर्म आवश्यक है। किन्तु केवल द्रव्य धर्म हो और भाव न हो तो वह द्रव्य धर्म आत्मा के लिए उपयोगी नहीं हो सकता। शास्त्र में कहा है—

'सव्वे कला धम्म कला जिणइ'

अर्थात्—धर्म कला सब कलाओं से बढ़कर है। आप कहेंगे कि जिन्दगी निभाने का सब काम द्रव्य धर्म से चल जाता है फिर भाव धर्म की क्या आवश्यकता है। भाव धर्म के बिना कौनसा काम अड़ जाता है। इसका उत्तर यह है कि जिसके लिए द्रव्य धर्म का पालन किया जाता है उसी को अगर न जाना तो द्रव्य धर्म का पालन व्यर्थ हो जायगा। आप जो कुछ करते हैं वह आत्मा ही के लिए तो करते हैं जब आत्मा को ही न पहिचाना तो जीवन धारण ही व्यर्थ हो जायगा। भाव धर्म से आत्मा की पहिचान होती है और वह अपना निजरूप प्राप्त करता है।

किसी भाई को आत्मा किसे कहते हैं यह भी न मालूम हो अतः बता देता हूं कि आपका यह शरीर कार्य है या कारण। शरीर कार्य है। इसका कारण पंचभूत हैं।

घड़ी कार्य है और उसके कल पुर्जे कारण है। यहां तक समझने में तो भूल नहीं होती है। भूल इसके आगे होती है। आगे समझिये कि यदि यह शरीर कार्य है तो इसका कर्त्ता कौन है। किसने पंच भूतों के साथ मेल साधा है। कई भाई कहते हैं कि जैसे पुरजों के सम्बद्ध होने से घड़ी चलती है। उसी प्रकार पांच भूतों के मेल से शरीर चलता है। आत्मा नामक छठे तत्व की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है। हमारा यह कहना है कि आखिर घड़ी के पुर्जे भी किसी के मिलाये बिना अपने आप नहीं मिल गये, मिलाने से मिले है। उसी प्रकार पंच भूतों का मेल अपने आप नहीं हो जाता। मेल कराने के लिए किसी कर्त्ता की आवश्यकता है। जो कर्त्ता है वही आत्मा है। ईंट और चूना पृथक् पृथक् रखे पड़े हैं। जब कोई कर्त्ता--कारीगर उनको मिलता है तब भवन बन कर खड़ा होता है। आप शरीर और पंच भूतों को तो माने और शरीर के कर्त्ता आत्मा को न माने यह कैसे हो सकता है। आपको मानना पड़ेगा।

मैंने मेरी कारेली नामक एक पाश्चात्य विदुषी के लेख का अनुवाद पढ़ा था। उसमें उसने बताया कि संसार के पदार्थों का रूपान्तर होता है, एकान्त विनाश नहीं होता। मोमबत्ती के जल जाने पर यह खयाल किया जाता है कि वह नष्ट हो गई किन्तु दर असल वह नष्ट नहीं हुई, उसका रूपान्तर हो गया, यदि जलती मोमबत्ती के पास दो वैज्ञानिक यंत्र रख दिए जायं तो उसके सब परमाणु एकत्रित हो जायंगे। जिनको मिलाकर फिर मोमबत्ती बनाई जा सकती है। पानी सूख जाने पर भी लोग खयाल करते है कि पानी नष्ट हो गया, मगर पानी नष्ट नहीं होता पानी दो हवाओं के संयोग से बनता है। सूखा हुआ पानी हवा में मिल जाता है। फिर दो हवाओं के संयोग से पानी बन जाता है। घड़े को फोड़ा जाय तो उसकी ठीकरियां हो जायंगी। ठीकरियां फोड़ी जायंगी तो बारीक रेत हो जायगी किन्तु पदार्थ बिलकुल विनष्ट न होगा। जब कि संसार की ये तुच्छ वस्तुएँ भी बिलकुल विनष्ट नहीं होतीं तब आत्मा जो कि सब का मेल साधने वाला है, कैसे नष्ट हो सकता है।

इस आत्मा को जिस धर्म की आवश्यकता है वही मानव धर्म है। मैं मानव धर्म को जैन, बौद्ध, वेदान्ती, खीस्ती, इस्लाम आदि साम्प्रदायिक अर्थ में न लेकर, उसके सामान्य सर्व साधारण रूप को बताना चाहता हूं। सामान्य रूप को कोई इन्कार नहीं कर सकता सब धर्मों ने सामान्य रूप को स्वीकार किया है जिस मजहब में धर्म की सर्व सामान्य बातें नहीं है वह एक पक्षी माना जायगा। पहले इस्लाम की बात कहता हूं। कुरान में कहा है—

ला तो अजे चोखल कुल्ला

अर्थात्:—हे मुहम्मद ! तू दुनिया को आगाह करदे कि अल्लाह की खलक को कोई न सताये।

अब विचार करने की बात है अल्ला की मखलूक कौन है। क्या हिन्दु अल्ला की मखलूक नहीं है? यदि केवल मुसलमान ही अल्ला की मखलूक हो तब तो अल्ला पक्षपाती ठहरेगा और वह सारी दुनिया का मालिक न रहेगा। कोई मुसलमान किसी हिन्दू को सताये तो वह कह सकता है कि तू तेरे मालिक को पहिचानता है या नहीं? वह सब का रक्षक है। वह किसी को न सताने की बात कहता है। हिन्दुओं के लिए भी यही बात लागू होती है। उनका परमात्मा मुसलमानों का भी परमात्मा है। एक परमात्मा की छत्र छाया में रहने वाले आपस में कैसे लड़झगड़ सकते हैं। यदि लड़ते हैं तो परमात्मा उपेक्षा करते हैं।

एक आदमी हाथ में माला लेकर फिरा रहा था। दूसरा उसके पास आकर गाली देने लगा। माला फिराने वाले ने कहा देखना नहीं है, मैं माला फिरा रहा हूं, मेरा परमात्मा तेरा नाश कर देगा। दूसरे ने कहा परमात्मा जैसा तेरा है वैसा मेरा भी है। मेरा क्यों नाश करेगा, तेरा नाश करेगा?

परमात्मा किस की तरफदारी करे। किस का पक्ष ग्रहण करे और किस का नहीं। इन्हीं बातों को लेकर आज के नवयुवकों की ईश्वर और धर्म विषयक श्रद्धा ढीली पड़ गई है। कोई तो ईश्वर का बायकाट करता है और कोई धर्म का। किन्तु इस में ईश्वर और धर्म का कोई दोष नहीं है। दोष है, ईश्वर और धर्म के स्वरूप समझने वाले व्यक्तियों का। धर्म, सब को आपस में प्रेम से रहने की बात कहता है।

अब हिन्दुओं की सर्व मान्य गीता में देखिये। उस में कहा है कि सब वेद पुराण का सार यह है:—

निर्वैरः सर्वभूतेषुयः स मामेति पाण्डवः।

अर्थात्—जो सब प्राणियों के साथ वैरभाव रहित होकर वर्ताव करता है वह मुझ (परमात्मा) को प्राप्त होता है। जो बात कुरान में है वही भाषान्तर से गीता में है।

अब जिस शास्त्र का मैं जिम्मेदार हूं उसकी (जैन शास्त्र) बात बताता हूं। उस में कहा है—

अप्प समं मन्निज्ञा छप्पि कायं

अर्थात्—प्राणी मात्र को अपनी आत्मा के समान मानो। जब प्राणी मात्र को आत्मवत् मान लिया जाय तब किसके साथ वैर विरोध किया जाय।

उदयपुर (मेवाड़) में एक वकील ने मुझ से प्रश्न किया कि जब आत्मा अमर है, अविनाशी है किसी के मारने से मरता नहीं है, फिर किसी मारने या सताने से पाप कैसे हो सकता है। उत्तर में मैंने कहा था कि आत्मा अविनाशी है इसी लिए पाप लगता है और उसका फल भोगना पड़ता है। यदि आत्मा नाशवान् हो तब तो कोई झगड़ा ही न रहे। मारने वाला और मरने वाला दोनों खत्म हो गये फिर क्या झगड़ा रहा। व्यवहार में भी मरे हुए पर दावा नहीं होता। दावा जिन्दे पर होता है। आत्मा सदा कायम रहता है। शरीर रूप खोलियां बदल जाती है। आत्मा ने शरीर धन कुटुम्ब आदि को अपना मान रखा है। उसके द्वारा प्रिय माने हुए पदार्थों को उससे जुदा करना यही पाप है, हिंसा है जो सबको अपनी आत्मा के समान समझेगा **'तत्र कः मोहः कः शोकः'** उसको क्या मोह और क्या शोक हो सकता है। यह सर्व सामान्य मानव धर्म है।

ठाणांग सूत्र में दस धर्मों का वर्णन है। इन धर्मों पर मैंने लम्बे व्याख्यान दिए हैं, जो पुस्तकाकार में प्रकट हुए हैं, और जिनको लोगों ने खूब पसन्द किया है। इसी प्रकार मनु ने भी दस धर्म बताये हैं। ठाणांग सूत्र प्रतिपादित और मनु द्वारा कथित दस धर्म सामान्य धर्म है जो मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी हैं। कोई कहीं भी रहे, किसी भी स्थिति में रहे, सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक माना गया है महाभारत में मानव का साधारण धर्म बताते हुए कहा है—

श्रद्धा कर्म तपश्चैव सत्यम क्रोध एवच।
स्वेषुदारेषुसंतोषः शौचं विद्या न सूयिता॥
आत्म ज्ञानं नितिक्षाच धर्मः साधारणो नृपः।

१ श्रद्धा रखना २ सत्कर्म करना ३ तपस्या करना ४ सत्य बोलना ५ किसी पर क्रोध न करना ६ अपनी स्त्री में संतोष मानना ७ पवित्र रहना ८ विद्याध्ययन करना ९ किसी से वैर न करना १० क्षमा धारण करना। ये दस सामान्य धर्म हैं। जिस घर में इनका पालन न होता हो वहां हा हा कार मच जाता है।

माताने सामान्य धर्म का पालन किया तब आज हम इस अवस्था में मौजूद हैं। यदि माता जन्मते ही हमको फेंक देती तो हमारी क्या दशा होती। हमारा जीवन धर्म ही के आधार पर टीका हुआ है। अतः जिस वृक्ष की शीतल छाया में बैठे हो उसकी डालियां अथवा जड मूल को मत काटो। धर्म के बल पर हमारा जीवन टिक रहा है। उसको उखाड़ फेंकना ठीक नहीं है। शरीर के लिए अन्न वस्त्र जितने जरूरी है आत्मा के लिए धर्म उतना ही जरूरी है।

आपकी शादी हो चुकी है। आप कैसी स्त्री पसन्द करते हैं। जो पति के अनुकूल वर्ताव करे उसे या जो पति को गालीयाँ देती हो उसे ? चाहते तो सभी अनुकूल आचरण करने वाली ही। बिना धर्म का पालन किये स्त्री अनुकूल वर्ताव नहीं कर सकती। धर्म का पालन किये बिना पिता संतान का पालन पोषण भी नहीं कर सकता। एक श्वास भी संसार में धर्म के बिना नहीं लिया जा सकता। धर्म का अर्थ नियम है विरुद्ध एक सांस भी न लेना मानव धर्म है। दूसरों से नियम पालन की आशा रखने वालों को स्वयं भी नियम पालन करना चाहिए।

अब मैं धर्म का एक बारीक तत्व आपके सामने रखना चाहता हू। अभी तक सामान्य धर्म का कथन किया गया है और सामान्य धर्म और नीति में अन्तर नहीं है, यह बात कोई कह सकता है। दरअसल नीति धर्म की नींव है। नीति के आधार पर धर्म रूप भवन बनाने से वह स्थायी रह सकता है। नीति विरुद्ध काम करने वाला धर्माचरण नहीं कर सकता। नीति का सहारा लेकर उस पर क्या महल खड़ा करना चाहिए यह बात मैं हितोपदेश की एक कथा के सहारे बताना चाहता हू, ताकि सर्व साधारण को सुगमता से समझ में आ जाय।

कबूतरों की एक टोली विचरती थी। टोली के कबूतरों ने विचार किया कि मुहँ मुँह विचरने से ठीक नहीं रहता अतः किसी को नेता बनाकर उसके नियन्त्रण में रहना चाहिए। चित्रग्रीव नाम के कबूतर को अपना नेता चुन लिया। वैज्ञानिकों का कथन है कि लोग जिसको अपने से बड़ा मानते हैं उसमें कोई अलौकिक गुण भी होता है। कबूतरों ने गुण देखकर उसे अपना प्रेसिडेण्ट अथवा राजा बनाया। अब सब उसकी आज्ञानुसार विचरने लगे।

एक जगह एक पारधी ने जाल लगाकर चांवल बिखेर रखे थे। और स्वयं झाड़ियों में छिपा बैठा था। चाँवल दिखाई देते थे मगर जाल न दीखता था। सब कबूतरों ने कहा वे नीचे चाँवल बिखरे पड़े हैं, चलें और चुगें। नेता ने कहा अरे भाईयों!

'अत्र निर्जने वने कुत्र तन्दुल कणानां संभवः ? निरूप्यतां तावत्, भद्रं इदं न पश्यामि' इस निर्जन वन में चाँवल के दानों का कहाँ संभव हो सकता है, जरा देखो, मैं इसमें कुशल नहीं देखता।

नेता ने सोच समझ कर बात कही मगर वे कबूतर क्यों मानने लगे। आज के युवक माने तो वे भी माने। नेता चुन लिया मगर उसकी आज्ञा पालन करने में कठिनाई मालूम देती है। एक युवा कबूतर को नेता की यह चेतावनी अच्छी न लगी। उसने कहा वृद्धों की बात सकट के समय मानी जाती है। भोजन के समय मानने से भूखों मरने की नौबत आती है। साक्षात चाँवल दीख रहे हैं, फिर उन्हें न चुगना महज मूर्खता है।

आज के युवक भी यही बात कहते हैं कि यदि हम पुराने लोगों की बातें मानने लगें तो कोई सुधार नहीं हो सकता। लेकिन जो बड़ा या नेता होता है उसका क्या कर्त्तव्य है, यह ध्यान से देखिये।

कबूतरों के नेता चित्रग्रीव ने सोचा कि ये सब लोग एक हो गये हैं अतः इन से अलग रहकर आपस में फूट डालना ठीक नही है, कहा, चलो भूख तो मुझे भी लग रही है नीचे चलकर दानें चुगें। वह मन में जानता था कि इस कार्य में संकट है फिर भी उसने सब के साथ रहना ही उचित समझा। संकट में ये लोग अवश्य मेरी बात मानेंगे।

सब उड़कर नीचे आ गये और दानें चुगने लगे। जब वापस उड़ने लगे तब सब के पैर जाल में फँस जाने से उड़ न सके। अब सब कबूतर इस युवा कबूतर को कोसने लगे कि तुमने नेता कहना न मानकर हम सब को फँसा दिया है। उस समय यदि नेता चाहता तो आपस में फूब डलवा सकता था। क्योंकि फूट डालने का सुन्दर अवसर था। किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। उसने कहा इस युवा को दोष मत दो। जब आपत्ति आने वाली होती है तब मित्र भी शत्रु का काम कर बैठते हैं। इसका उद्देश्य सबको खिलाने का था फँसाने का न था। इस में यह क्या करे जो आपति आगई। इसने अपनी बुद्धि में जैसा जँचा वैसी सलह दी थी। अब इसे गाली या उपालम्भ देने से क्या होता है। हमारी आफत उपालम्भ से नहीं मिट जाती। वह तो उपाय करने से मिट सकती है।

आजकल दूसरों पर दोपारोपण करने और उपालम्भ देने की प्रथा बहुत चल गई है मगर लोग यह नहीं देखते किसी बात के लिए हम उपालम्भ दे रहे हैं वह हमारे में तो

नहीं पाई जाती। मैंने एक लेख में पढ़ा है कि एक व्यक्ति भाषण खूब लम्बे लम्बे देता है मगर उसमें व्यभिचार करने की अपनी खुद की आदत नहीं सुधारी जाती। ऐसे लोग क्या सुधार करेंगे।

कबूतरों के नेता ने कहा कि एक दूसरे की आलोचना को छोड़ कर आपत्ति में से निकलने के उपाय के विषय में सोचो। सब ने कहा, आप ही कोई उपाय बताइये। अब हमारी बुद्धि काम नहीं करती। नेता ने कहा, क्या मेरा कहना मानोगे? सब ने कहा, पहले न माना था जिसका फल अभी भोग रहे है अब अवश्य आपकी आज्ञा शिरोधार्य करेंगे।

कष्ट भी एक शिक्षा देता है। उस समय कोई विशेष बात भी हो जाती है। नेता ने कहा सब एक मत हो जाओ। एक भी व्यक्ति अगर अलग रहा तो सब की खेर नहीं है। सब एक साथ उड़ चलो और इस जाल को ही साथ ले चलो।

आज भारतवर्ष में एकता नहीं है इसी कारण से पारधी लोग मजा उड़ा रहे हैं। आपस में फूट डलवाकर अपने घरों में घी के चिराग जलवा रहे है। यदि सब भारतीय एक हो जायँ तो क्षण भर में परतंत्रता की जाल को चीर कर फेंक सकते हैं।

सब कबूतर जाल को लेकर साथ में उड़ चले। पारधी देखता ही रह गया कि मैं इन्हें फँसाने आया था मगर ये तो मेरे जाल को ही ले उड़े है। इस वक्त इन में एक मत्य है अतः ये नीचे न गिरेंगे किन्तु जब इन में आपस में फूट पड़ जायगी तब ये अवश्य नीचे गिर जायंगे और मेरा मनोरथ सिद्ध हो जायगा। यह सोच कर वह शिकारी उनके पीछे २ दौडने लगा। नेता ने सबको चेतावनी दी कि शत्रु पीछे भागा हुआ आ रहा है अतः खूब जोर से उड़ो। ऐसा मन में मत खयाल करना कि मैं क्यों जोर लगाऊं सब लगा रहे है। ऐसा सोचेंगे तो पुनः परतन्त्रता में पड़ जाओगे। उड़ते उड़ते कबूतर बहुत आगे निकल गये। पारधी थक कर निरुत्साही हो गया और अपने घर लौट गया।

अब नेता ने कहा भाइयों! एक आपत्ति से तो छूट गये हैं मगर अभी इस जाल के टुकड़े हुए बिना हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो सकते। हम लोग उड़ना मात्र जानते हैं।

हैं। जाल के टुकड़े हम से न होंगे। अतः गंडकी नदी के किनारे मेरा हिरण्यक नाम का मूषक मित्र रहता है, उसके पास चलें। यद्यपि वह चूहा है और मैं कबूतर हू फिर भी समय कुसमय में काम आने के लिए हमने आपस में मित्रता कर रखी है। वह हमारे बंधन काट देगा।

सब कबूतर जाल लेकर हिरण्यक के बिल पर पहुँचे। हिरण्यक ने दूर से देखकर कि आज यह क्या आफत आ रही है अपने बिल का आश्रय लिया। बिल के पास आकर चित्रग्रीव ने पुकारा मित्र ! बाहर निकललो, या तो तुम्हा तो चित्रग्री हुं। आवाज पहिचान कर चूहा बाहर निकला। उसने पूछा तुम इतने बुद्धिमान होकर इस बंधन में कैसे फँस गये। चित्रग्रीव ने उत्तर दिया, भाई ! समय की बात। जब अनिष्ट होने वाला होता है तब अच्छी बुद्धि नहीं सूझती। नेता ने भी अभी भी अपने साथियों का दोष नहीं बताया। उसे तो केवल अपने साथियों के बन्धन कटवाने की धुन थी। दोष देखने की वृत्ति उसमें न थी। जो लोग काम करना जानते हैं वे दूसरों के दोष नहीं देखा करते।

चीत्रग्रीव की प्रार्थना पर चूहा उनके बंधन काटने के लिए तय्यार हो गया। चूहे ने कहा दोस्त ! मैं पहले तेरे बंधन काट दूं बाद में शक्ति रही धीरे धीरे सब के काट दूँगा। चीग्र ग्रीव ने कहा, ऐसा नही हो सकता कि मैं मुक्त हो जाऊँ और मेरे अधीन रहने वाले मेरे भाई बंधन में पड़े रहें। चूहे ने कहा प्रिय मित्र ! इस में संकोच करने कोई बात नहीं है। नीति भी यही बताती है कि—

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्र सेद्धनरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारै रपि धनै रपि ॥

अर्थ—आपत्ति के लिए धन की रक्षा करनी चाहिए। धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। किन्तु जब अपनी आत्मा की रक्षा का प्रश्न हो तब स्त्री और धन देकर भी उसका बचाव करना चाहिए।

चित्रग्रीव ने उत्तर दिया, मित्र ! नीति यह बात कहती है कि पहले अपनी रक्षा करनी चाहिए मगर धर्म कुछ और बात कहता है धर्म नीति से आगे बढ़ा है।

जिस प्रकार माता पिता का धर्म बालक को प्यार करने जितना ही नहीं है किन्तु उसका पालन पोषण और ठीक रास्ते लगा देने का है, उसी प्रकार आगे बढ़ते आओ और धर्म का निर्णय कर लो।' चित्रग्रीव ने अपने मित्र चूहे से कहा, देखो।

जाति द्रव्य गुणानाञ्च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रुहि कदा किं तद् भविष्यति॥

मेरी और इन कबूतरो की जाति एक है, द्रव्य भी एक है दो पंख मेरे हैं और दो दो पंख इनके भी हैं तथा कबूतरों के सामान्य गुण भी हम सब में समान हैं। फिर क्या कारण है कि ये लोग मुझे अपना नेता मालिक या राजा मानें। मुझे नेता मानने का इन को क्या फल मिला और मैने नेता बनकर क्या विशेषता की।

आज तो कहा जाता है कि बलवान के दो भाग। दो भाग ही नहीं किन्तु बहुत से नेता या राजा बने हुए लोग उल्टा अपने आश्रितों का शोषण करते हैं। शोषण करने वाले लोग अपने पशु बल के सहारे '**मान न मान मैं तेरा मेहमान**' के अनुसार हठात् नेता या राजा या सरकार बने हुए है। किन्तु कर्त्तव्य का पालन किये बिना राजा नेतृत्व नहीं मिल सकता।

चित्रग्रीव कहता है, दोस्त! मेरे दो शरीर हैं, एक भौतिक शरीर जो पंच भूतों से बना है और वापस उन्हीं में मिल जायगा, दूसरा यशः शरीर जो मेरी आत्मा के साथ

कायम रहेगा ! मेरे बन्धन काटकर तू मेरे इस नाशवान् भौतिक शरीर की रक्षा कर सकेगा किन्तु मेरे साथियों के बंधन काटकर मेरे अविनाशी यशः शरीर की रक्षा कर सकेगा।

मित्र की उदारता पूर्ण बातें सुनकर चूहे को बड़ा हर्ष हुआ और हर्षावेश में आकर धड़ाधड़ सब के बंधन काटकर फेंक दिए। कहने लगा कि हे चित्रग्रीव ! तेरे ये विचार त्रिलोक पति बनाने वाले है। जो केवल अपने बंधनों को न काटकर सब के बंधनों को काटने की कोशिश करता है वही तो त्रिलोक पति है। स्वयं कष्ट सहन करके दूसरों को सुख पहुँचाना यही मानव धर्म है। स्वार्थ से ऊँचा उठना ही मानव धर्म है।

चित्रग्रीव ने अपने साथियों को हिदायत दे दी कि बीती हुई घटना को याद करके कभी भविष्य में लड़ना मत **'बीति ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहि'**

आप लोग भी दूसरों को सुख पहुंचाने का प्रशस्त मार्ग अपनाइये और परमात्मा से यह प्रार्थना करिये कि—

दयामय, ऐसी मति हो जाय।
औरों के सुख को सुख समझूं सुख का करूं उपाय।
अपने सब दुःखों को सहलूं, पर दुःख देखा न जाय॥ दया०॥

राजकोट
२६—७—३६ का
व्याख्यान

नोट:—आज का व्याख्यान काठियावाड़ युवक जैन परिषद् की प्रार्थना से मानव धर्म पर दिया गया है।

सच्ची प्रभुता

प्रणमुं वासुपूज्य जिननायक, सदा सहायक तू मेरो । प्रा० ।

प्रार्थना में विचित्र प्रकार के विधान करने से उस में विशालता आ जाती है। ई भाई यह सोचकर प्रार्थना करना बन्द न करदे कि मैं प्रार्थना की विशालता नहीं मझता अतः मैं क्यों इस झंझट में पड़ूं। जो हृदय से प्रार्थना करता है उसके मन में ता विचार नहीं आता।

उदाहरण के लिए एक आदमी के हाथ में एक रत्न जड़ित अंगूठी है, वह उसकी मत नहीं जानता है। किसी जौहरी ने अंगूठी देखकर कहा, यह अंगूठी तुझे कहां से ल गई, यह बहुमूल्य है। यह बात सुनकर वह आदमी प्रसन्न होगा या नाराज ? प्रसन्न गा। वह अंगूठी को अपनी मानता है अतः उसे प्रसन्नता होती है। यदि अपनी न नता होता और किसी दूसरे की खयाल करता तब तो उसे प्रसन्नता न होती। वह मत नहीं जानता तो क्या हुआ। जौहरी की बात पर विश्वास करकर प्रसन्न होता है।

इसी प्रकार प्रार्थना की विशालता या गूढ़ार्थ समझ में न आये तो भी ज्ञानीजनों द्वारा उसकी महिमा सुनकर यदि प्रार्थना को अपनी मानते हो तो अवश्य आनन्द आना चाहिए।

भगवान् वासुपूज्य की प्रार्थना में क्या तत्त्व भरे हुए हैं, उनका रहस्य बताने की मुझ में सामर्थ्य नहीं है फिर भी अपनी अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करने का सब को अधिकार है। कोयल सब आम्रमंजारियों का गुणगान नहीं कर सकती फिर भी समय पर अपनी शक्ति के अनुसार कुछ बोलती ही है। सच्चे भक्त भी, परमात्मा की प्रार्थना के संपूर्ण रहस्य को बताने में असमर्थ होते हुए भी, निन्दा स्तुति का खयाल किये बिना, अपनी शक्ति के अनुसार कुछ कहते ही हैं। प्रार्थना में कहा है:—

खल दल प्रबल दुष्ट अति दारूण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरिय न होय प्रकटे चेरो॥

संसार में जिनको दुष्ट कहा जाता है, जिनका उद्देश्य दूसरों को कष्ट देना ही है, ऐसे दुष्ट यदि भक्तजन को अपने घेरे में ले ले, तो भी वह नहीं डरता है। भक्त उस समय यह सोचता है कि इनका घेरा मुझे कुछ और ही शिक्षा देता है। जिस प्रकार सच्चा विद्यार्थी शिक्षक की छड़ी को अपने लिए सहायक रूप समझता है, यह मेरी विद्योन्नति करने में बहुत सहायता करती है, उसी प्रकार दुष्टों द्वारा आये हुए विघ्नों को भक्त लोग प्रसाद मानते हैं। दुष्टों की तलवारें हमें परमात्मा की तरफ धकेलती है, ऐसा मानते है हमारी आत्मा सदा अविनाशी है। दुष्ट अधिक से अधिक हमारा शरीर नाश कर सकते हैं। शरीर नाश से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता वह तो नाशवान् है ही। एक दिन नष्ट होगाही। अहा! भक्तों का यह कितना ऊँचा खयाल है। वे हर हालत में निर्भय और दृढ़ चित्त रहते हैं। अतः आनन्द भी कभी उनका साथ नहीं छोड़ता। इस प्रकार की दृढ़ता और निर्भयता रखने से कभी दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़कर मित्र या शिष्य बन जाते हैं। यह बात दूसरी है कि कोई इस भव में दास होता है तो कोई परभव में मगर दृढ़चित व्यक्ति का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। कामदेव का पिशाच कुछ नहीं बिगाड़ सका। प्रह्लाद का तलवारें कुछ न कर सकीं। घानी में पिले जाने वाले मुनियों का पीलने वाले क्या बिगाड़ सके। मुनि उनको अपना मित्र ही मानते रहे। आखिर उन्हीं को पश्चाताप करना पड़ा।

मतलब यह है कि जो कष्ट, उपसर्ग या परिषह को कसौटी मानता है, घबड़ाता नहीं है, वही परमात्मा की सच्ची प्रार्थना कर सकता है । जो ऐसी भावना रखकर अखंड प्रार्थना करता है वह प्रार्थना के गुणों को समझ सकता है । वह दुःखों को दुःख ही नहीं मानता। भयभीत व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। जो कुछ करता है वह निर्भय और वीर व्यक्ति ही करता है । जो निर्भय होकर प्रार्थना करता है उसके द्वारा यह भूमि धन्य मानी जाती है । जो ऐसे व्यक्ति के दर्शन करता है या वाणि श्रवण करता है, वह भी धन्य है ।

शास्त्र चर्चा

राजा श्रेणिक मुनि के पास बैठा है। मुनि की योग्यता का अन्दाजा लगाकर ही उसने उनसे प्रश्न पूछा है। अयोग्य व्यक्ति को प्रश्न नहीं पूछे जाते। जो समाधान करने में समर्थ हों उन्ही से प्रश्न पूछने चाहिये। राजा ने पूछा, मुनिवर ! भोग भोगने की अवस्था में आपने संयम क्यों ग्रहण कर लिया।

राजा के प्रश्न से ऐसा मालूम होता है जैसे वह भोग भोगना अच्छा मानता है और संयम को बुरा मानता है। आजकल भी कई लोग संयम को बुरा बताते हैं और साधुओं की पेट भर के निन्दा करते हैं। वे साधुओं को समाज पर बोझा रूप समझते हैं। उनकी मान्यता में कुछ सचाई भी है। कारण कि बहुत से लोग साधुओं का सांग ग्रहण कर लेते हैं, साधुओं के उचित आचरण नहीं करते। साधु वेष में रहकर बुरे काम करते है। इन भ्रष्टाचारी और केवल वेषधारी द्रव्य साधुओं का आचरण देखकर सच्चे साधुओं की निन्दा करना कदापि उचित नहीं है। खरे खोटे की जांच करनी चाहिए और सड़े पान को बाहर निकाल फेंकना चाहिए ताकि दूसरे पानों को न बिगाड़ सके। कदाचित् यह कहो कि खरे खोटे का हम कैसे निर्णय करें तो मेरा उत्तर है कि विवेक से काम लीजिये। जो सत्य और झूठ का दूध पानी की तरह निर्णय करता है वह विवेक है । विवेक से काम न लेकर साधु मात्र की निन्दा करना और कहना कि साधुओं से तो हम गृहस्थ ही अच्छे हैं, वाजिब नहीं है। सच्चे साधुओं की निन्दा करना गुणों की निन्दा करना है । कच्चर मोती चले हैं अतः सच्चे मोतियों की भी उनके साथ निन्दा करना कहां तक उचित है । आप लोग आसानी से पता लगा सकते हो कि कौन साधु है और कौन असाधु। वर्ताव, आकार प्रकार

तथा चेष्टाएं देखकर साधुता असाधुता का निर्णय करना बड़ी बात नहीं है । '**आकृति गुणान्कथयति**' शरीर की आकृति ही बता देती है कि कौन गुणी है ।

मैं साधुओं से भी अपील करता हूँ कि महात्मा कोगों जागो ! जागो । आपके कारण धर्म की निन्दा हो रही है अतः सम्भलो और विचार करो । साथ में श्रावकों से भी कहना है कि सब को एक धार से पानी मत पिलाओ । विवेक से काम लो ।

राजा श्रेणिक उन मुनि को साधु ही समझता था और इसी लिए उनको वंदना की और उनकी प्रशसा करके अपने मन की शंका उनके सामने रखी ! उल्टा प्रश्न किये बिना बात का रहस्य प्रकट नहीं होता । मुनि ने भी सीधा उत्तर दिया है । आजकल के साधुओं की तरह यह न कह डाला कि चल तुझे इन बातों से क्या मतलब । तेरा काम राज्य करना है तू साधुओं की बातों को क्या जाने । किन्तु अनाथी मुनि कैसा जवाब देते हैं । यह जैन साधुओं का चरित्र प्रकठ करता है । मेरी ताकत नहीं कि मैं अनाथी मुनि का हूबहू चितार खींचकर आपके सामने रख सकूं । यदि वे साक्षात् होते तो भी उन्हें देखकर इतना आनन्द नहा आता जितना गणधरों की वाणी द्वारा उनका चरित्र सुनकर आ रहा है । अनाथी मुनि नें तो राजा श्रेणिक को ही सुधारा होगा किन्तु गणधरों की कृपा से उनके चरित्र द्वारा न मालूम कितनें लोग सुधरेंगें । बहुत भाई इस अध्ययन की प्रतिदिन स्वाध्याय करते हैं । पूज्य श्री श्रीलालजी म० सा० इस अध्ययन का प्रायः नित्य स्वाध्याय किया करते थे । वास्तव में यह अध्ययन है ही स्वाध्याय के योग्य ।

राजा के प्रश्न का मुनि ने उत्तर दिया—

अणाहोमि महाराय ! णाहो मज्झ न विज्जइ ।
अणुकंपगं सुहिं वावि, किंचि नाभिसमेमहं ।९।।

हे महाराजा ! मै अनाथ था, मेरा रक्षण करने वाला कोई न था, न कोई मेरा पालन करने वाला था अतः मैने संयम धारण लिया । साधु बन गया ।

नाथ किसको कहते है, यह पहले जान लें । जो योग और क्षेम करे वह नाथ है । '**अलब्धस्य लाभो योगः, लब्धस्य परि पालनं क्षेमः**' अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करना योग है और प्राप्त वस्तु की रक्षा करना क्षेम है । जो नहीं मिली हुई वस्तुको दिलाये और मिली हुई का परिपालन करे वह नाथ हे ।

अनाथी मुनि कहते हैं ' मेरा कोई नाथ न था, कोई मेरा रक्षण करने वाला न था, धर्म समझकर भी मेरी कोई अनुकम्पा दया करने वाला न था, संकट समय में काम आने वाला कोई मित्र भी न था अतः मैंने संयम धारण कर लिया ' ।

मुनि का उत्तर सुनकर साधारण लोग यह खयाल करते हैं कि यह कोई रखडु आदमी होगा । खाने पीने सोने बैठने आदि की कठिनता होगी अतः दीक्षा लेली है । अथवा **'नारी मुई गृह सम्पत्ति नासी, मुण्ड मुण्डाय भये संन्यासी '** के कथनानुसार स्त्री चल बसी होगी, सम्पत्ति बरबाद हो गई होगी अतः सिर मुण्डा कर साधु बन गया है ।

राजा को भी मुनि का उत्तर सुनकर आश्चर्य हुआ होगा । उसे मन में यह कल्पना आई होगी कि अभी तो इतना घोर कलियुगी समय नहीं आया है कि कोई आदमी रक्षण के अभाव में दूख पाये । आजकल भी यदि कोई दीन अनाथ जन हो तो उसे अनाथालय में भेज दिया जाता है । वह समय तो चौथे आरे का था । अतः राजा को मुनि का उत्तर सुनकर बड़ा अचरज हुआ ये मुनि ऋद्धि सम्पन्न मालूम होते हैं फिर इनके लिए ऐसी नौबत कैसे आगई । इनका कथन ऐसा मालूम देता है जैसे चिन्तामणि रत्न कहता हो, मुझे कोई रखने वाला नहीं है, कल्पवृक्ष कहे कि जगत् में मेरा आदर नहीं है और कामधेनु कहे कि मुझे जगत् में कहीं स्थान नहीं । जिनका शरीर शंख, चक्र, गदा पद्म आदि लक्षणों से युक्त हो, उनका कोई रक्षणहार नाथ न हो यह कैसे संभव हो सकता है ।

हँसते और विचार करते हुए राजा ने मुनि से कहा, ऋद्धि सम्पन्न मालूम देते हुए भी आप अपने को अनाथ कैसे बता रहे हैं । कवि लोग कहते हैं कि विधाता हंस से रूठ कर उसके रहने के कमल बन को नष्ट कर सकता है, मानसरोवर छुड़ा सकता है लेकिन दूध पानी को पृथक् पृथक् कर देने के उसकी चोंच के गुण को तो वह भी नहीं मिटा सकता । मैं नहीं जानता कि आप कौन थे किन्तु आपके देखने मात्र से स्पष्ट मालूम देता है कि आप ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति हैं । मैं इस प्रश्नोत्तर को लम्बा करना नहीं चाहता, चलिये यदि आप अनाथ हैं तो मेरे साथ आइये । मैं आपका नाथ होता हूं ।

किसी बात को ऊपर से देखकर उसका उल्टा अर्थ नहीं करना चाहिए, मुनि का उत्तर विश्वास करने लायक न मालूम होता था फिर भी राजा ने यह नहीं कहा कि आप अन्यथा भाषण कर रहे है । उसने सीधा कह डाला यदि नाथ न होने के कारण ही आपने

घर बार छोड़कर दीक्षा अंगीकार की है तो मैं आपका नाथ बनता हूं। आप मेरे साथ चलिये। मेरे राज्य में किसी बात की कमी नहीं है।

राजा श्रेणिक ने विवेक रखकर जैसा सुन्दर उत्तर दिया वैसा विवेक आप लोग भी रखिये। कोई बात आपको ठीक न जँचे अथवा आपकी समझ में न आये तो आप एक दम से किसी पर आक्षेप मतकर डालिये।

अब मैं जूनागढ़ के दीवान साहिब से कुछ कहता हूं। मुझे दीवानसा से कुछ लेना देना नहीं है, न किसी मुकद्दमा में ही उनकी सिफारिश की मुझे जरूरत है। मगर उनपर आप लोगों की अपेक्षा बोझा अधिक है। उनका बोझा हलका करने के लिए कुछ कहता हूं और जो कुछ कहूंगा वह आपके लिए हितकारी होगा अतः ध्यान से सुनिये। पच्चीस व्यक्ति जारहे हों, उनमें से किसी के सिर भार रखादो तो सब का ध्यान उसीकी ओर आकर्षित होगा। दीवान सा पर संसार का बोझा अधिक है अतः इनको लक्ष्यकर के खास कहता हूं।

सुना है कि मलावार से सागवान आदि लकाड़ियां लाई जाती हैं। जब कि लकड़ियां दरिया में (समुद्र में) पड़ी रहती हैं तब उनको एक डोरी से बांधकर एक बच्चा भी जिधर चाहे उधर उनको घूमा फिरा सकता है। किन्तु जब लकड़ियां बाहर निकाली जाती हैं तब उन्हें उठाने के लिए अनेक आदमियों की जरूरत होती है। इस अन्तर का कारण क्या है। जब तक लकाड़ियां दरिया में थी तब तक उनका आधार दरिया ही था। बाहर निकलने पर दरिया आधार न रहा। आप लोगों से मै पूछता हूं कि आप लोग संसार व्यवहार का सारा बोझा अपने सिर पर ही ले लोगे अथवा दरिया के समान किसी का सहारा ग्रहण करोगे। यदि सारा बोझा अपने ऊपर ही ले लोगे तो उसके भार से दब जाओगे अतः परमात्मा रूपी दरिया पर अपना बोझा छोड़ दीजिये जिससे आपका काम पानी में लकड़ी के समान हल्का हो जाय।

संसार व्यवहार मे किस तरह रहना चाहिए यह बात एक उदाहरण से समझाता हू। वृक्ष पर बन्दर भी बैठते हैं और पक्षी भी बैठते हैं। जब वृक्ष के टूटने का अवसर आये तब किसको दुःख होगा। पक्षी तो कह सकते हैं कि हम वृक्ष के ही सहारे नहीं हैं, हमारे पंख हैं, जब तक वृक्ष कायम है इस पर बैठते हैं जब वह टूट जाता है हम अपने पखों के सहारे उड़ जाते हैं।

इसी प्रकार इस संसार रूपी वृक्ष के सहारे दो प्रकार के आदमी बैठे हुए हैं। एक धर्म को मानने वाले और दूसरे न मानने वाले। धर्म के मानने वालों को अपना संसार गिर जाने का भय नहीं होता उन्हें आत्म विश्वास होता है कि हम केवल स्त्री पुत्र धन कुटुम्ब जाति आदि के सहारे पर ही नहीं है, किन्तु हमें परमात्मा या अपनी आत्मा का भी सहारा है जो कभी नहीं टूटता। धर्मात्मा लोग संसार का सारा बोझा अपने ऊपर नहीं समझते। वे परमात्मा के सहारे पर रहते हैं अतः संसार का भार उन पर हो तो भी वह पानी में लकड़ी के समान बहुत हल्का होगा। आप लोग भी संसार को नाशवान् मानते हुए धर्म की सेवा करोगे तो यह संसार आपके लिए भार रूप न होगा और आप इसके नीचे न दब सकोगे।

सुदर्शन चरित्र—

धर्म का सहारा किस प्रकार लेना चाहिए यह बात सुदर्शन—चरित्र द्वारा बताता हूं।

> कला बहत्तर अल्पकाल में सीख हुआ विद्वान।
> प्रौढ़ पराक्रमी जान पिता ने किया विवाह विधिठान॥ रे धन०॥

संसार की सब ऋद्धि मिल जाय किन्तु यदि शील न हो तो सब ऋद्धि धूल समान है। दूसरी ओर केवल शील मिल जाय और दुनिया की कोई ऋद्धि न मिले तो भी कुछ हर्ज नहीं है। चिन्तामणी मिल जाने पर सेर दो सेर चनों की क्या कमी रह सकती है। दुःख है कि आज कल लोग शील को बड़ा नहीं मानते भोग को बडा मानते हैं। भोग की सामग्री न मिलने पर रोने लगते हैं।

शील का अर्थ है सदाचार। सदाचार का अर्थ है पापों से बचकर रहना। संक्षेप में हिंसा, झूठ, चोरी, व्यभिचार और मदिरापान ये पाँच पाप हैं। इन पांचों में प्रायः सब पाप आ जाते हैं। जिसमें ये दुर्गुण नहीं होते उसमें दूसरा कोई पाप नहीं हो सकता। दीपक के होने पर अन्धकार नहीं रहता उसी तरह शील के होने पर कोई पाप नहीं रहता। मगर जो कुछ होता है वह पुरुषार्थ से होता है। यह कथा इसी तत्त्व पर अवलम्बित है। पूर्व भव में सुदर्शन ने अल्पकाल ही में विशेष पुरुषार्थ द्वारा बहुत विकास कर लिया था। सरसरी तौर से देखने से मालूम होता है कि नवकार के भरोसे रहने से उसकी

मृत्यु होगई। किन्तु बात यह नहीं है। आगे जिस ऋद्धि सिद्धि का वर्णन किया जायगा वह नवकार मंत्र के प्रताप से ही सुदर्शन को प्राप्त हुई है।

पांच धायों और अठारह देश की दासियों द्वारा उसका लालन पालन और सामान्य शिक्षण हुआ था। जब वह आठ वर्ष का हो गया तब उसके पिता ने विद्या पढ़ाना आरंभ कर दिया। एक कवि ने कहा है—

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंस मध्ये बको यथा॥

वे माता पिता अपनी संतान के शत्रु हैं, जो उसे नहीं पढाते। वह संतान, हसों की पंक्ति मे बगुला जैसे शोभा नहीं पाता, वैसे ही सभा में शोभित नहीं होती। आप लोग अपनी संतान को हंस जैसी बनाना चाहते हो या बगुले जैसी। यदि हंस जैसी बनाना चाहते हो तो उसे विद्या पढाओ और संस्कारी बनाओ। आप लोग कह सकते हैं कि हमारे राजकोट में सब लोग पढ़े लिखे है यहां अनेक स्कूल्स हैं अतः यह उपदेश यहां व्यर्थ है। किन्तु जो पढ़े लिखें लोग हैं उनकी विद्या कैसी है, इस तरफ भी ध्यान देना चाहिये।

सा विद्या या विमुक्तये

विद्या वह है जो मुक्त करे। बन्धन से छुड़ाये। किस के बन्धन से छुड़ाये? विषय विकार और पाप के बंधन से। आधुनिक शिक्षा ऐहिक जीवन की रक्षा करने में भी समर्थ नहीं है वह पारमार्थिक जीवन की क्या रक्षा करेगी। इस ग्रेजुएट्स एक साथ जंगल में जा रहे हों, मार्ग में कोई बदमाश उन्हें लूटने लगे तो क्या वे अपना रक्षण कर सकते है? भाग तो न जाएंगे? सुना है एक सांप के भय से साठ आदमी मर गये। यदि उनमें एक भी आत्मा बली होता और अपना भोग देकर भी दूसरों को बचा सकता तो सब की मृत्यु न होती। आजकल बातें बनाने वाले बहुत है। कहा भी है—

'आओ मियांजी खाना खाओ, करो बिस्मिल्लाह हाथ धुलाओ।
आओ मियांजी छप्पर उठाओ, हम बुड्ढे जवान बुलाओ'॥

इस कहावत में बताये हुए मियांजी खाना खाने के समय तो जवान थे मगर छत उठाने के वक्त बुड्ढे बनगये। इसी प्रकार वाक्शूर बहुत हैं मगर काम करने वाले थोड़े हैं।

बातें बनाने वाले शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक विकास कैसे कर सकते हैं। एक भाई कहते थे कि आजकल घर घर बुखार है। मैने उत्तर दिया कि जब बुखार को बुलाया जाता है तो वह क्यों न आये। खान पान, रहन सहन में संयम रखने का उपदेश दिया जाताहै उसपर तनिक भी ध्यान न दिया जाय तो बुखार क्यों न आये। यदि उपवास कर लिया जायतो बुखार न आयगा।

'विद्या वह नहीं जो डराये, दिल को कमजोर बनाये। बंधनसे छुड़ानेवाले संस्कार का नाम ही विद्या है। सुदर्शन में ऐसे ही संस्कार डाले गये थे। आठ वर्ष की उम्र होने से पूर्व बच्चे को पुस्तक देकर पढ़ाना उसके विकासको रोकना है। शास्त्र में कहा है।

'सादरेगं अट्ठवास जायेयं कलायरियं उवणवइ'

जब बच्चा आठ वर्ष से अधिक उम्रका हो जाताहै तब कलाचार्य के पास ले जाया जाताहै। इससे पूर्व खेलखेल में ही शिक्षा दी जातीहै। सुदर्शन की घर की पढ़ाई पूरी होगई तब कलाचार्य के पास बैठाया गया। केवल शादी करदेने मात्र से माता पिता का कर्त्तव्य पूरा नहीं होजाता। बालकका सार्वत्रिक विकास करना उनका कर्त्तव्य है पहले ७२ कलायें। लड़के को और ६४ कलाएं लड़की को सिखाई जाती थी। ज्ञातासूत्र में इनका जिक्र है। इन कलाओं से बच्चे का द्रव्य परिक्रम किया जाता था और उनको सुसंस्कृत बनाया जाता था। युद्ध करना भी इन कलाओं में शामिल है।

किसी भाई को यह शंका उत्पन्न हो कि युद्ध करना क्षत्रिय का काम है। सब को यह विद्या सीखाने से क्या मतलब। लेकिन शास्त्र में समुद्र पाल के लिए कहा गया है।

'बावत्तरी कलाविये सिक्खिए नीइकोविय जायगे नयसंपन्ने सुरुवे पिय दंसणे'

अर्थात्—पालित नामक श्रावक ने अपने पुत्र समुद्र पाल को ७२ कलायें सिखाई और उसे नीतिवान् बनाया। शास्त्र कहता है कि पालित केवल नाम का श्रावक न था मगर निर्ग्रन्थ प्रवचन का पंडित था। फिर भी उसने अपने पुत्र को सब कलाएं सिखाई थीं। एक बात अवश्य थी। और वह यह कि सब कलाएं धर्म के पाये पर सिखाई जाती थी पाया मजबूत हो तो उसपर चुनीजाने वाली बिल्डिंग भी मजबूत होगी। आजकल पाया

ही कमजोर है। जब धर्म की बात कही जाती है तब सिर चढ़ने लग जाता है। धर्म कोई गहन वस्तु नहीं है। विवेक पूर्वक बुरे कामों से बचना और अच्छे कामों से संबंध जोड़ना धर्म है। आंख और कान से अच्छे दृश्य और अच्छी बातें भी सुनी जा सकती है और बुरी भी। विवेक में धर्म है।

सुदर्शन थोड़े अर्से में ७२ कलायें सीखकर होशियार होगया। बड़ी उम्र वाले जिस बात को बहुत समय में नहीं सीख सकते उसी बात को, छोटी उम्र वाले जल्दी सीख सकते हैं। बड़ी उम्र वालों के दीमाग में सांसारिक प्रपंचों का बहुत भार रहता है और छोटे बच्चों का दिमाग साफ रहता है। दूसरी बात पूर्व जन्म का संस्कार भी जल्दी विद्या ग्रहण करने में कारण है। जिसने पिछले जन्म में विद्याध्ययन किया है वह इस जन्म में थोड़े परिश्रम से बहुत अधिक ग्रहण कर लेता है। बहुत से लोग घोर परिश्रम करके भी कुछ याद नहीं रख सकते। इस अन्तर का कारण पूर्व जन्म का संस्कार है। पूर्व जन्म के संस्कार के भरोसे इस जन्म के प्रयत्न को कभी न भूलाना चाहिए। इस जन्म में खूब प्रयत्न करना चाहिए ताकि भविष्य के लिए नींव बन जाय। निश्चय और व्यवहार दोनों को साथ रखकर चलना चाहिए। ऊपर चढ़ने के लिए सिढ़ी की जरूरत होती है, मगर पांव हों तब सीढ़ी काम देती है। दोनों के होने पर काम बनता है। जिस वृक्ष का बीज ही बिगड़ा हुआ हो उसका सुधार करना कठिन है। किन्तु जिसका बीज अच्छा है केवल वृक्ष में ऊपरी खराबी है उसका उपायों द्वारा सुधार शक्य है। यही बात संस्कार या पूर्व जन्म की पूंजी के विषय में भी है।

अब कोई यह कहे कि हमारा पूर्व जन्म तो बीत चुका है अतः इस जन्म में तो वही होगा जो रेख पड़ चुकी है। किन्तु यह बात ठीक नहीं है। आप आस्तिक है नास्तिक नहीं। आप मकान बनवाते हैं वह केवल अपने लिए नहीं बनाते मगर भावी पीढ़ी का भी खयाल रखते हैं। इसी प्रकार धर्म करते वक्त या विद्याध्ययन करते वक्त यह खयाल रखना चाहिए कि इस जन्म में नहीं तो आयन्दा जन्म के लिए सुकृत काम आयगा। **'कृतं न विनश्यति'** करणी का फल वृथा नहीं जाता। फल मिलने में देरी हो सकती है। सुभग द्वारा सीखा हुआ मंत्र उस जन्म में फलित न हुआ तो क्या हुआ। अगले जन्म में मंत्र के प्रभाव से ही उसे सब सुयोग मिला है। यदि सेठ भी उसे तुच्छ समझ कर मंत्र न

सिखाता, जैसा कि कुछ भाई कहते हैं शुद्र मंत्र के अधिकारी नहीं होते, तो क्या उसका अगला भव सुधर सकता है ? कदापि नहीं ! धर्मात्मा लोग ऐसा नहीं करते । वे खुद भी सुखी होते है और दूसरों को भी सुखी बनाने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं । आप लोग स्वयं शुद्ध रहो और शुद्ध विचार रखो तथा दूसरों के लिए भी यही करोगे तो कल्याण है ।

राजकोट
२८—७—३६ का
व्याख्यान

राजा का आश्चर्य
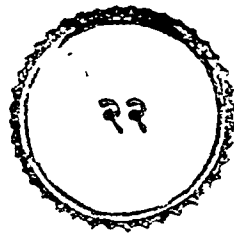
रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये ॥ प्रा० ॥

परमात्मा की प्रार्थना करते समय भक्त को मन में कैसी भावना रखनी चाहिए, यह बात इस प्रार्थना में बताई गई है। कहा गया है, हे आत्मन् तू अपनी पूर्व स्थिति को याद कर। पूर्व स्थिति का स्मरण करने से बहुत लाभ होता है, उन्नति होती है। पहले कहां किस स्थिति में रहा, इसका विचार करने से मालूम होगा कि कितनी कठिनाई से यह भव प्राप्त हुआ है। वर्तमान भव की दस बीस, पचीस पचास वर्ष की आयु को व्यर्थ न जाने देकर उचित उपयोग में लगाने की बुद्धि, पूर्व भव का संस्मरण करने से पैदा होती है। ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने पर यही विचार निश्चित रूप से आयेगा कि—

रे जीवा विमल जिनेश्वर सेविये।

मगधदेश का अधिपति राजा श्रेणिक मुनि का उत्तर सुनकर हँसने लगा और कहने लगा कि इस प्रकार के ऋद्धिसम्पन्न तुम्हारे नाथ कैसे नहीं है। यहाँ श्रेणिक शब्द से राजा का परिचय हो जाने पर भी मगधाधिप शब्द का प्रयोग इस लिए किया गया है कि मुनि के उत्तर से हँसने वाला व्यक्ति कोई साधारण आदमी नहीं है किन्तु मगध देश का मालिक है। कुछ लोग पुनरुक्ति दोष को दूर करने की कोशिश में रहते है गणधरों ने जान बूझकर पुनरुक्ति का प्रयोग किया है। माता जिस प्रकार बड़े प्रेम से बार बार एकही बात को अपने बच्चे को समझाती है उसी प्रकार गणधर भी बार बार एकबात को समझाते हैं जिससे जन साधारण भी शास्त्रों की गहन बातों को हृदयंगम कर सकें। दूसरी बात साधारण और विशेष व्यक्तियों के हँसने में भी अन्तर होता है।

हँसकर राजा कहने लगा कि आप जैसे समृद्धिसम्पन्न व्यक्ति को कोई नाथ न था यह बात मानने में नहीं आती। अब पहले यह जान लेना चाहिए कि ऋद्धि किसे कहते हैं। ऋद्धि दो प्रकार की होती है। १ बाह्य ऋद्धि २ अन्तरंग ऋद्धि। बाह्य ऋद्धि में धन धान्यादि का समावेश होता है और अन्तरंग ऋद्धि में शरीर की स्वस्थता और इन्द्रियों का पूर्ण विकसित होना है। मुनि के पास उस वक्त बाह्य ऋद्धि न थी किन्तु अन्तरंग ऋद्धि थी। उनकी आकृति बडी अच्छी थी। कहावत है कि '**यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति**' जहां सुन्दर आकृति हो वहाँ गुण निवास करते है। और आकृति गुणों को कह देती है '**आकृतिर्गुणान् कथयति**'। आकृति शुद्ध होने से गुण भी शुद्ध होते हैं। जिसकी आँखे बड़ी हो और उनमें लाल डोरे पड़े हो, कान लम्बे, प्रशस्त वक्षस्थल, चौड़ा कपाल और यथायोग्य प्रमाण युक्त इन्द्रियाँ हो, वह गुणवान भी होगा। यही बात सोचकर राजाने कहा कि ऐसे व्यक्ति का कोई नाथ न हो यह कैसे संभव हो सकता है।

इस विषय मे टीकाकार ने अपना अभिप्राय जाहिर किया है कि जहां सुन्दर आकृति हो वहां गुण निवास करते है और जहां गुण हों वहां लक्ष्मी भी निवास करती है। लक्ष्मी गुणवान् को ही वरती है, गुण हीन को नहीं। आप पूछ सकते है कि बहुत से गुण हीन और निकम्मे लोगों के पास भी लक्ष्मी दिखाई देती है, इसका क्या कारण है। इसका सामान्य उत्तर यह है कि आपको उस व्यक्ति में गुण न दिखाई देते हों किन्तु कम से कम व्यावहारिक गुण तो उसमें होंगे ही। इसके विना न तो वह लक्ष्मी अर्जन कर सकता है और न उसका रक्षण ही। यदि किसी लक्ष्मीवान् में दूसरों को अपनी मोटर की झपट में न आने देना जितना भी गुण न होतो उसके पास लक्ष्मी कैसे ठहर सकती है। फिर तो उसे

जेल की हवा खानी पड़ेगी। बहुत से पढ़े लिखे लक्ष्मीवालों की टीका किया करते हैं मगर उनमें नौकरी करने का ही माद्दा होता है, व्यापार करने के लिए जिस हिम्मत और गुणों की आवश्यकता होती है। वे उन में नहीं होते। अतः विद्यावान् होते हुए भी धनवान् नहीं बन सकते। यहां व्यावहारिक गुणों की बात चल रही है। हेय उपादेय की बात नहीं चल रही है।

हां, तो जहां गुण हैं वहां लक्ष्मी है। जहां लक्ष्मी होती है वहां आज्ञा भी चलती है। लक्ष्मीवान् के अनेक नौकर चाकर आदि होते हैं जो उस की आज्ञाओं का पालन करते हैं। आज्ञा का पालन होना ही राज्य है। जिस की आज्ञा का पालन होता है वह राजा है। राजा मुनि से कहता है कि आपकी अनाथता मालूम नहीं पड़ती। बल्कि आप ऋद्धि सम्पन्न दीख रहे हैं। खैर मै इस पंचायत में नहीं पड़ना चाहता कि पहले आप कैसे थे। यदि आपने अनाथ होने के कारण दीक्षा ग्रहण की है तब तो दुःखी होकर संयम लिया है और दुःख पूर्वक लिए हुए संयम का निर्वाह कब तक हो सकता है। अतः .

होमिणाहो भयन्ताणं, भोगे भुंजाहि संजया।
मित्तनाइपरि वुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं॥ ११॥

हे मुनिश्वर! मै आपका नाथ बनता हूं और आप मित्र ज्ञाति से परिवृत होकर भोग भोगिये। मनुष्य जन्म मिलना बड़ी दुर्लभ बात है। आपको यह मिला हुआ है अतः सांसारिक भोग भोगकर इसका सदुपयोग करिये। मै मगधाधिप हूं। मेरे यहां पर किसी बात की कमी नही है। मेरे नाथ बन जाने से आपका सब दुःख दूर हो जायगा। जिस दुःख से दुःखी होकर आपने यह संयम धारण किया है, वह दुःख, आपका नाथ बन कर मै मिटा देना चाहता हू।

क्या राजा श्रेणिक पागल था जो एक सयम धारी मुनि को संसार के क्षुद्र भोग भोगने के लिए निमंत्रित कर रहा है। राजा पागल न था। इस कथन का क्या रहस्य है और गणधरों ने इसे शास्त्र में क्यों स्थान दिया है, यह बात समझनी चाहिए। आज आप देख रहे है कि जिस व्यक्ति के पास भोग भोगने की सामग्री मौजूद है उसकी भोगों के लिए कोई मनुहार नहीं करता किन्तु जिसने भोगों का त्याग कर दिया है उसकी मनुहार करने वाले बहुत मिलेंगे। वैसे अनेक आदमी इधर उधर डोला करते हैं, उन मे कोई नहीं कहता कि चलो हमारे यहां पर रहना किन्तु यदि कोई दीक्षार्थी आ जाय तो उस को अपने

यहां के जाकर यह कहा जाता है कि हम आपका इन्तजाम कर देंगे आप क्यों यह कठिन व्रत अंगीकार कर रहे हो। यह भोग के त्याग की महिमा है। जिसने दिल से भोगों का त्याग कर दिया है उसके इर्दगिर्द भोग चक्कर काटा करते हैं किन्तु सच्चे त्यागी महात्मा वमन किये हुए को पुनः नहीं अपनाते। जो भोगों के लिए लालायित रहता है भोग उससे दूर भागते हैं। जो लाओ, लाओ, करता रहता है उसे वह वस्तु नहीं मिलती और न वैसी मनुहार ही उसकी होती है।

राजाने मुनि से कहा कि आप चलिये और मेरे राज्य में ऐश आराम कीजिये। आप यह न खयाल कीजिये कि मैंने घर बार और कुटुम्ब कबीला छोड़ दिया है अतः अब किनके साथ रह कर भोगोपभोग भोगूंगा। आपको मित्र भी मिलेंगे और ज्ञाति भी। आपने दीक्षा लेकर कोई बुरा काम नहीं किया है जिससे कि मित्र और ज्ञाति वाले आप से घृणा करने लगें। मित्र और ज्ञाति के लोग आपको आदर की दृष्टि से देखेंगे और आपका सन्मान करेंगे। वे यही कहेंगे कि अच्छा हुआ सो संयम छोड़ दिया और हमारे में आ मिले हो। मैं आपको यह बात किसी अन्यकारण से नहीं कह रहा हूं किन्तु मनुष्य जन्म की दुर्लभता का खयाल करके कह रहा हूं। इस दूर्लभ मनुष्यजन्म को भोगभोगे बिना वृक्ष खो देना ठीक नहीं मालूम देता।

आजकल भी अनेक लोगों का यह विचार है कि साधु बन कर जीवन का सत्यानाश करना है। अच्छा खाना पहनना और नवीन आविष्कार करना, इसी में जीवन की सार्थकता है। साधु तो इनके त्याग का उपदेश देते हैं अतः उनके पास जाकर वक्त जाया करना है। ऐसे लोगों की दृष्टि में भोग भोगना और दुनियां को अपनी कुछ देन दे जाना ही मनुष्य जन्म की सार्थकता है श्रेणिक राजा भी यही बात कह रहा है। वह विषय भोग में ही जीवन की उपयोगिता समझता है। यह बात तो सोलह आना सत्य है। कि मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। किन्तु इस बात में बड़ा विपाद है कि इसका उपयोग भोग भोगने में करना चाहिये अथवा भोगों का त्याग करके ईश्वरमय बन जाने में करना चाहिए।

एक पक्ष का है कि मनुष्य जन्म, अच्छे वस्त्र बनाने, कल कारखाने खोलकर जीवनोपयोगी साधन सामग्री बनाने तथा सुन्दर भवनों का निर्माण करके उनका उपभोग करने के लिए मिला है। यदि मनुष्य यह काम न करेगा तो क्या पशु करेंगे? क्या सुन्दर वस्त्रों और भवनों का निर्माण पशु करेंगे? हवाई जहाज और रेलगाड़ी का आविष्कार मनुष्य ही कर सकता है और वही उनका उपयोग कर सकता है।

दूसरे पक्ष में ज्ञानी कहते हैं कि मनुष्य जन्म की सार्थकता अच्छे वस्त्र मकान और दिगर आविष्कार करने मात्र में ही नहीं है । ये काम तो पशु पक्षी और कीड़े मकोड़े भी कर सकते हैं । मनुष्य जन्म की विशेषता इसी बात में है कि जो काम सृष्टि के अन्य प्राणी नहीं कर सकते वह काम करना । हवाई जहाज अभी चले है किन्तु पक्षी सदा से आकाश उड्डयन करते हैं और वह भी किसी की सहायत के बिना स्वतंत्रता पूर्वक करते हैं । हवाई जहाज में पेट्रोल खत्म होते ही नीचे आकर गिरजाता है किन्तु पक्षियों को पेट्रोल की भी आवश्यकता नहीं होती । मनुष्य इधर उधर से कपास ला कर कपड़े बनाने में अपनी शेखी बघारता है किन्तु कई जीव–जन्तु ऐसे है जो अपने शरीर में से ही तन्तु निकाल कर मनुष्य कृत वस्त्र से सुन्दर वस्त्र बना लेते है । आप कितना भी घने पोत का कपड़ा बनाइये सूक्ष्म दर्शक मन्त्र से उस में छेद दिखाई देंगे किन्तु मकड़ी ऐसा जाला बनाती है जिस में छेद नहीं दिखाई देता । आपके भवनों से भी बढ़ कर कीड़े सुन्दर भवन बना देते है । दीमकों की बांबी इतनी ऊंची होती है कि मनुष्य का हाथ भी नही पहुँच पाता । दीमक कहां से मिट्टी निकाल कर कहॉ चढ़ाती है और कितना सुन्दर घर बनाती है । चिंटी कैसा अच्छा मकान बनाती है । वह मकान में ऐसे २ हक् रखती है कि देखकर दंग रह जाना पडता है । उसके मकान में प्रसूतिगृह अलग होता है, भोजन रखने का गृह अलग होता है और बच्चों का घर अलग होता है । आपका मकान आपके शरीर के प्रमाण से अधिक से अधिक दस गुना बड़ा होगा किन्तु उनका मकान उनके शरीर प्रमाण से कई गुना अधिक बड़ा होता है ।

अब रही कला और आविष्कार की बात । क्या शहद की मक्खी की कला मनुष्य से कम है ? उसकी कला देखकर आधुनिक वैज्ञानिक लोग भी दंग रह जाते है । मक्खियाँ किस प्रकार एक घर बराबर बराबर बनाती है, मानों सूक्ष्म माप दण्ड लेकर ही बनाये हों । किस प्रकार मोम लगाकर उनमें शहद भरती है । कम से कम मोम लगाती है और अधिक से अधिक शहद भरती हैं । जब मोम लगाती हैं तब सब मिलकर एक साथ लगाती है और जब शहद भरती है तब भी एक साथ मिलकर ही । कितनी एकसूत्रता इनके काम है । क्या आपकी कला इनकी कला से बढ़ कर है ।

इधर के पुद्गल उठाकर उधर रखना और अपनी ख्याति या कला पर अभिमान करना मनुष्य जन्म की सार्थकता नहीं है वस्तुतः मनुष्य जन्म की सार्थकता आत्मा से परमात्मा बनने की कला में है। यह काम मनुष्य जन्म के बिना नही हो सकता और यही कारण है कि ज्ञानियो ने मनुष्य जन्म को महान् दुर्लभ बताया है। यदि आत्मा से परमात्मा बनने के लिए प्रयत्न किया जाय तो मनुष्य जन्म सार्थक है अन्यथा उसकी कोई विशेषता नहीं है। भक्त तुकाराम कहते हैं।

अनन्त जन्म जरी केल्या तपराशि तरीहान पवसी मणे देह ऐसा हा निदान।
लागलासी हाथी त्यांची केली माही भाग्यहीन ॥

अर्थात् अनन्त जन्म तक पुण्यराशि एकत्रित करने पर यह मनुष्य जन्म मिलता है। पुण्यबल से यह दुर्लभ मानव देह हाथ में आया है फिर भी भाग्यहीन व्यक्ति मिट्टी की तरह इसको खो देते हैं।

भगवान् विमलनाथ की प्रार्थना में कहा गया है कि जीव सूक्ष्म निगोद से बादर निगोद में, बादर निगोद से स्थावर योनि में अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेता है। फिर वे इन्द्रिय, ते इन्द्रिय, चतुरिंद्रिय और पंचेन्द्रिय में क्रमशः आता है। पंचेन्द्रिय में भी मनुष्य की योनि बड़े भाग्य से ही प्राप्त होती है। मनुष्य योनि के साथ आर्य क्षेत्र और उत्तम कुल का योग मिलना और कठिन है। यदि यह भी योग मिल जाय तो सत्श्रद्धा और तदनुकूल आचरण होना सब से कठिन है। मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी कठिन मंजिल को तै करने में है। धर्माचरण अथवा जीव से शिव बनने का काम इसी दुर्लभ देह से शक्य है अतः जीव से शिव बनने में ही मनुष्य देह की सार्थकता है। भोग भोगने में मनुष्य जीवन वृथा बरबाद हो जाता है कोई भी बुद्धिमान आदमी बावना चन्दन को चूल्हे में जलाना पसन्द नहीं करेगा। मानव देह के द्वारा भोग भोगना, बावना चन्दन को भट्टी में झोंकना है। यह इसका बेहतर उपयोग नहीं है। राजा श्रेणिक ने अपने विचारों के अनुसार अनाथी मुनि को भोग भोगने के लिए प्रार्थना की है। मुनि के उत्तर को सुनकर राजा आश्चर्य चकित होकर मुस्करा रहा है। और राजा की प्रार्थना सुनकर मुनि भी मुस्करा रहे है। अपना अपना पक्ष लेकर दोनों मुस्करा रहे है। मुनि तो यह विचार करके मुस्करा रहे है कि जो स्वयं अनाथ हो वह दूसरों का क्या नाथ बनेगा। और राजा इस लिए मुस्करा रहा है कि ऐसे व्यक्ति को नाथ न मिलना बड़ी ताज्जुब की बात है। राजा के द्वारा नाथ बनने के लिए की गई प्रार्थना का मुनि क्या उत्तर देते हैं यह बात आगे बताई जायगी।

सुदर्शन-चरित्र !

अब मैं सुदर्शन की बात कहता हूं। सुदर्शन की कथा साधुता की कथा है। उसे सुन कर आप भी भोगो से निवृत्त होने के लिये प्रयत्न कीजिये। एक दम प्रगति न कर सको तो धीरे २ आगे बढ़िये।

कला बहत्तर अल्प काल में, सीख हुआ विद्वान।
प्रोढ पराक्रमी जान पिता ने, किया ब्याह विधि ठान ॥१६॥धन॥
रूप कला योवन वय सरीखी, सत्य शील गुणवान्।
सुदर्शन और मनोरमा की, जोड़ी जुड़ी महान् ॥ १७ ॥ धन० ॥

संसार की वातों को गौण और आत्म-कल्याण की वातों को मुख्य कैसे बनाना यह बताने के लिए ही यह कथा है। संसार में शारीरिक मानसिक और बौद्धिक विकास की शिक्षा की जरूरत पूरी है किन्तु शास्त्र कहते है कि इन सब शिक्षाओं को गौण बनाकर आत्म—कल्याण अर्थात् आध्यात्मिक शिक्षा की जरूरत को मुख्य बनादो। आजकल इस बात मे उल्टा बर्ताव हो रहा है अतः संसार बहुत दुःखी है।

इस कथा का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है शील--सदाचार। कुछ लोग कहते है कि साधु लोग किस काम के। रोटी खाकर पड़े रहते है। यदि कोई साधु खाकर पड़ा ही रहता है और आत्म—कल्याण नही करता वह सचमुच निकम्मा है किन्तु जो साधु आत्म कल्याण और जगत् कल्याण के लिए अहर्निश प्रयत्न करते है वे भार रूप नही हैं। ऐसे महात्मा प्रकट रूप से न भी बोलते हों फिर भी वे संसार के लिए बड़े उपयोगी हैं। ऐसे महात्माओं का जहाँ चरण स्पर्श हो वहां आनन्द ही आनन्द है। आप चाहे महात्माओं को भूला दें मगर महात्मा आपको नहीं भुला सकते। उचित तो यह है कि आप सच्चे साधुओं को न भुलाओ। साधुओं की कृपा से ही आज आप इस स्थिति में हो। इतने पर भी यदि कोई कहे कि साधुओं की जरूरत नहीं है तो मैं पूछना चाहता हूँ कि चोर जार और व्यभिचारी की तो जरूरत है और साधुओं की जरूरत क्यों नहीं है। साधुओं के होने से ही संसार में शांति बनी हुई है अन्यथा सूर्य पृथ्वी को तपाकर भस्म ही बना डालता। साधुओं के सत्य के प्रभाव से पृथ्वी टिकी हुई है। '**सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः**' सत्य से पृथ्वी टिकी हुई है और सत्य के प्रभाव से ही सूर्य

तपता है। साधुओं के प्रताप से ही आज सुदर्शन का चरित्र गाया जारहा है। साधु की कृपा से ही सुभग सुदर्शन बना है। अतः साधुओं की निन्दा करना छोड़कर उनके साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लीजिये। साधु लोग संसार समुद्र में पुल के समान है। किसी नदी पर जब पुल बना दिया जाता है तब एक चींटी भी सुगमता से नदी पार कर सकती है नहीं तो हाथी भी कठिनाई से पार कर पाता है।

सुदर्शन बहत्तर कलाए सीखकर नौजवान हो चुका है। पहले के जमाने में जब तक लड़का कलाएं न सीख लेता और उसके सोते हुए सातों अंग जागृत न हो जाते तब तक उसका विवाह नहीं किया जाता था। इसके पूर्व विवाह कर देना बहुत हानिप्रद है।

बाल विवाह से न केवल आध्यात्मिक हानि होती है मगर व्यावहारिक और शारीरिक हानि भी होती है। मान लीजिये कि एक गाड़ी में पच्चीस जवान आदमी बैठे है और दो छोटे बछड़े उसमें जुड़े हुए है। क्या वे बछड़े उस गाड़ी के भार को खींच सकते हैं? और क्या ऐसी गाड़ी में सवार होने वाले दयावन् कहे जा सकते है? कदापि नहीं। इसी प्रकार किसी का विवाह सम्बन्ध जोड़ना भी संसार व्यवहार का भार है। छोटे बच्चों को इस सम्बन्ध में जोड़ देना और बाराती बन कर विवाह कराना दयावानों का काम नहीं हो सकता। समझदार और दयावान् ऐसी शादियों में शरीक नही सकते। क्या कोई भाई इस विचारों का है जो इस बात की प्रतिज्ञा ले कि मै सोलह वर्ष से कम उम्र के लड़के और तेरह साल से कम उम्र की लड़की की शादी में लड्डू न खाऊंगा? कन्या और वर को बड़ी सुशिक्षा की जरूरत है। आजकल जाहिर तौर पर लग्न होने के पूर्व ही कन्या और वर का शारीरिक सम्बन्ध होने की बातें सुनने में आती है। यह भ्रष्टाचार है। यूरोप में कुमारिकाश्रम खुले हुए है, जहां विवाह के पूर्व होने वाली संतानों का पालन होता है तथा वहीं पर कुमारिकाएँ बच्चे पैदा कर डालती है। भारत में ऐसी बात तो नहीं है फिर भी कालेजों में कुछ किस्से बनने ही है। बाल विवाह निषेध का मकसद ही यह है है कि असमय में वीर्य न नष्ट हो।

मेरे लिए कई लोग कहते हैं कि मै अंग्रेजी भाषा की टीका करता हूं। किन्तु वस्तुतः मेरा अंग्रेजी भाषा से कोई विरोध नही है। बल्कि शास्त्र में भी यह बात आई हुई है कि बच्चे की शिक्षा के लिए अठारह देश की दासियाँ रखी जाती थी। अर्थात भिन्न २ देशों की भाषाए सीखने का कोई विरोध नही है। विरोध इस बात का है कि किसी देश

की भाषा सीखने के साथ साथ उस देश की बुरी बातें न सीखना चाहिए। दूसरे देशों की अच्छाइयाँ ग्रहण करने में किसे एतराज हो सकता है? मेरा मतलब तो इतना ही है कि अंग्रेजी भाषा के साथ अंग्रेजों की वह सभ्यता और संस्कार अपने में प्रविष्ट न होने देने चाहिए जो हमारा धर्म कर्म भ्रष्ट करते हों। भारत देश सदाचार को जीवन का उच्चतम आदर्श मानता है। इस आदर्श की रक्षा करते हुए विद्यार्थी सब कुछ सीख सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि मेरे खयाल से हमारी अपनी भाषा में और विदेशी भाषा में माता और दासी जितना अन्तर है। हमारी देशी भाषा माता के समान है और विदेशी भाषा दासी के समान। यदि कोई व्यक्ति माता का आदर करना छोड़कर दासी का आदर करने लगे तो यह ठीक न कहा जायगा। हिन्द सभ्यता के अनुसार माता पिता और गुरू देव तुल्य माने गये हैं। वेदों में कहा है '**मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव**'। जैन शास्त्रों में भी कहा है '**देव गुरुजण सकासा**' अर्थात् मां देव और गुरुजन के समान है। माता का स्थान दासी से सदा ऊँचा रहता है। आज स्थिति विपरीत है। हमारी राष्ट्र भाषा जो कि माता के समान है दासी की हालत में हो रही है और अंग्रेजी भाषा उसके स्थान में माता बन रही है, यह देखकर भारत हितैषियों को दुःख होता है।

कोई भाई यह दलील पेश करे कि अंग्रेजी भाषा बहुत विकसित है अतः उसके अध्ययन में अधिक रस लिया जाता है और आदर भी किया जाता है तो मेरा उत्तर है कि मेम गोरी है और माता काली है अतः माता की अपेक्षा मेम का अधिक आदर करना क्या वाजिब है? यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा या राष्ट्र भाषा के स्थान पर माना जाता हो तो मेरा एक बार नहीं किन्तु हजार बार विरोध है। और यदि अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा की दासी मानकर अध्ययन किया जाय तो मेरा कोई विरोध नहीं है। भाषा का युवक युवतियों पर प्रभाव पड़ता है अतः इतना इशारा किया गया है।

स्त्री और पुरुष में बहुत कुछ साम्य भी होता है और बहुत कुछ वैषम्य भी। दोनों के सहयोग से काम ठीक होता है। कुछ विशेषता है। पुरुष कठोर कार्य करते हैं और स्त्रियाँ कोमल। पुरुष बाहर काम करते हैं स्त्रियाँ घर में। जिस प्रकार वृक्ष में कोमल और कठोर दोनों प्रकार के भाग होते हैं और दोनों के होने से ही वृक्ष की शोभा है उसी प्रकार स्त्री और पुरुष के सहयोग से सुन्दर जीवन बनता है। जिनके गेरुए रं.

काम हो वही उसे करना चाहिए । आज स्थिति बदल रही है । पुरुषों का काम स्त्रियों को सौम्पा जा रहा है । इससे हानि है । सुना है कि हानि को महसूस करके हिटलर ने स्त्रियों को घर लौटने और घर का काम करने की आज्ञा दी है । स्त्रियों की उन्नति अपने योग्य कार्यों के करने में ही है । इससे वे अपनी और भावी पीढ़ी महान् उन्नति साध सकती है।

स्त्रियों और पुरुषों को बहत्तर और चौसठ कलाएं सीखना बहुत जरूरी है । यदि सूर्य और चन्द्रमा में कला न होतो वे किस काम के ? इसी प्रकार जिस स्त्री पुरुष में कला न हो वह किस कामका । कला सीखे बिना गृहस्थ जीवन की उन्नति नहीं हो सकती ।

सुदर्शन बहत्तर कलाएं सीखकर घर आया । उसके सोते हुए सातों अंग जागृत हो चुके थे । घर आने से सब लोग बड़े प्रसन्न हुए । सेठने कलाचार्य को इतना पुरस्कार दिया कि उसकी कई पीढ़ीयां खाती रहें । केवल पुरस्कार ही न दिया किन्तु उसका उपकार भी माना। सेठने कलाचार्य से कहा, मैं आपका बड़ा एहसानमन्द हूं । आपने मेरे पुत्र को ऐसा योग्य बना दिया है कि यह अपना जीवन सुख पूर्वक बीता सकेगा । आपने कोरी कला ही नहीं सिखाई है किन्तु विनय गुण भी सिखाया है मैंने कच्चे सोने के समान उसे आपके सुपुर्द किया था आपने भूषण बना कर मुझे सौंपा है । आपका यह उपकार कदापि नहीं भूलाया जा सकता ।

आजकल शिक्षा पूरी कर लेने के बाद लड़के अपने पिता को ढीचर समझने लगजाते है । थोड़ा किताबी ज्ञान हांसिल करके वे अपने को समझदार होंशियार और सर्व गुण सम्पन्न मानने लग जते हैं अपने मां बाप का यथोचित आदर नहीं करते । यह शिक्षा का दोष है । उन्हें शिक्षा ऐसी मिलती है कि वे माँ बाप से अपने को श्रेष्ठ समझने लगते है वे अपनी बुनियाद को भूल रहें हैं । सुदर्शन के चरित्र से युवा और वृद्धों को नसीहत लेनी चाहिए ।

जब से सुदर्शन घर आया है तब से अनेक लोग अपनी अपनी कन्याओं के साथ सुदर्शन का विवाह करने की मंशा सेठ के सामने रख चुके हैं । किन्तु सेठजी सब को टालते रहे । वे किसी योग्यतम कन्या की फिराक में हैं । आजकल सगाई सगपन के मामले में धन को प्रथम स्थान दिया जाता है । यदि कोई व्यक्ति धनवान् है तो बस अन्य बातों की तरफ खयाल न किया जायगा । '**सर्वे गुणाः कञ्चनमाश्रयन्ते**' दुनिया के सब गुण सोने में मान लिए जाते हैं किन्तु इस विषय में शास्त्र क्या कहता है सो जरा ध्यान देकर सुनिये । ज्ञाता सूत्र में कहा है—

सरिसवयाणं सरिसत्तयाणं सरिसलावरण रूव जोवरण गुणों ववेयाणं

अर्थात्---विवाह या सगाई में वर कन्या में नीचे लिखी बातों का खयाल करना चाहिए । समान उम्र हो समान वर्ण और आकृति हो, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुण हो । यदि माता पिता शास्त्र कथित बातों का खयाल रखकर कन्या या वर का चुनाव कर लिया करें तो जोड़ी बड़ी जुड़ेगी अन्यथा जीवन क्लेश मय बनजाने की आशका रहती है । ऊपर लिखित बातों का खयाल न करके वर कन्या को जोड़ देने से तलाक देने तक का प्रश्न उपस्थित होता है अथवा ऐसा जोड़ा सदा खटपट में अपना जीवन पूरा करेगा । उस घर में सुख का निवास न होगा ।

इन सब बातों का खयाल करके ही सेठ सुदर्शन की सगाई की बात टालता रहा । अन्त में मनोरमा नामक कन्या की बात उसके सामने आई । यह कन्या सेठ की दृष्टि में सुदर्शन के योग्य जान पड़ी फिरभी सेठ ने विचार किया कि सुदर्शन की इस विषय में इच्छा है यह जान लेना चाहिए ।

सगाई करने के पूर्व लड़के लड़कियों की इच्छा जान लेने की प्रथा बहुत अच्छी है । आजकल इसका पालन बहुत कम होता है । आज तो यह कहावत मशहूर हो गई है कि—**'होवे रोकड़ा तो परणे डोकरा'** ।

मेरी जन्म भूमि थांदला नामक ग्राम में एक पुरुष की दो या तीन स्त्रियां गुजर चुकी थीं । वह दूसरी शादी करना चाहता था । जिस कन्या को उसने पसन्द किया था वह उससे शादी करने के लिए राजी न थी । बहुतेरा समझाया गया किन्तु वह न मानी । आखीर एक स्त्री के द्वारा यह युक्ति रची गई कि सोने चांदी के बहुत से जेवर साफ सुथरे कराकर के एक स्थान पर सजा दिए गये और किसी बहाने से उस कन्या को वहां बुलाकर ये जेवर उसे दिखाये गये । उसे प्रलोभन दिया गया कि यदि इस व्यक्ति से शादी कर लेगी तो इतने जेवर पहनने को मिलेंगे । जेवर देखकर भोली कन्या जाल में फंस गई । उसकी शादी उस व्यक्ति के साथ हो गई । थोड़े अर्से बाद वह कन्या विधवा हो गई और उसका जीवन बड़े कष्ट में व्यतीत हुआ ।

इस प्रकार केवल गहनों के साथ विवाह होने से जीवन बड़ा दुःखी हो जाता है । पहले जमाने की बातें देखिये । सीता, द्रौपदी आदि का स्वयंवर हुआ था । कन्या अपनी इच्छानुसार वर को पसन्द करती थी । मां बाप की इच्छा उस [illegible] थी ।

भगवान् नेमीनाथ तीनसौ वर्ष की उम्र तक कुँवारे रहे थे क्या उन्हें कन्या नहीं मिलती थी ? ऐसी बात न थी। किन्तु बिना स्वीकृति विवाह करना उन्हें इष्ट न था। आज कल लड़के लड़कियों से कौन पूछता है कि तुम्हारा अमुक के साथ विवाह करें या नहीं।

सुदर्शन के पिता ने सुदर्श से पूछा कि पुत्र ! तुम्हारे योग्य कन्या की सगाई की बात मेरे सामने आई है अतः तुम्हारी क्या इच्छा है सो बताओ। तुम्हारी स्वीकृति होते सगाई कर ली जाय। सुदर्शन क्या उत्तर देता है, यह आगे बताया जायगा।

राजकोट
२१—७—३६ का
व्याख्यान

मनुष्य शरीर
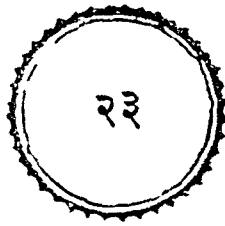
"अनन्त जिनेश्वर नित नमू ॥ प्रा० ॥……… ।"
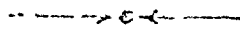
प्रार्थना के द्वारा परमात्मा की पहिचान कराने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं किन्तु जिनके मन में भ्रान्ति है उन्हें परमात्मा के होने का विश्वास ही नहीं हो सकता। जिसकी भ्रान्ति समूल विनष्ट होगई है उसे परमात्मा का विश्वास होता है। परमात्मा को स्वीकार करने का विश्वास ऐसा है जिसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। जिसे परमात्मा के प्रति पूर्ण विश्वास होगया है, जो अध्यात्मिकता का पूर्ण अनुभव कर चुका है वह इस विषय में जबान द्वारा विवेचन नहीं कर सकता। जो परमात्म स्वरूप का विवेचन या वर्णन करते हैं वे अपूर्ण है। कोई भाई मेरे से ही पूछ बैठे कि जब परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया

द्वारा शक्य नहीं है तब आप क्यों विवेचन कर रहे है। इसका उत्तर यह ही है कि मैं भी अपूर्ण ही हूं। और अपूर्ण हूं इस लिए वर्णन करता हूं और आप लोग भी अपूर्ण है अतः श्रवण करते हैं। इस प्रकार कह सुन कर अपूर्णता से पूर्णता में प्रवेश करना है। पूर्णता में पहुंचने का यह प्रयत्न है। पूर्णता कहीं बाहर से नहीं लानी है। पूर्णता हमारे भीतर छिपी हुई है, उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। सूर्य स्वयं प्रकाशी है उसी प्रकार आत्मा भी पूर्ण है। सूर्य पर जैसे बादल आ जाते है तब वह छिपा हुआ मालूम होता है उसी प्रकार आत्मा पर भी राग द्वेष रूप आवरण आजाता है तब वह अपूर्ण ज्ञात होता है। आवरण हटते ही आत्मा पूर्ण बन जाता है। आत्मा स्वयं चिदानन्द स्वरूप है।

आत्मा के ऊपर जो आवरण लगे हुए है उन्हें हटाने के लिए घबड़ाने की जरूरत नहीं है। उपाय और पुरुषार्थ के द्वारा यह शक्य है। उपाय और पुरुषार्थ करने से आत्मा के आवरण दूर होकर उसकी वास्तविक शक्ति प्रकट हो सकती है। जिन अनन्त नाथ की स्तुति की जा रही है वे भी एक दिन कर्म रूप आवरण से आवृत थे किन्तु पुरुषार्थ करके उन्होंने उस पर्दे को चीर कर दूर फेंक दिया। हम भी वैसा कर सकते हैं।

क्या पूर्णता प्राप्त करने के प्रयत्न में शरीर पालन की क्रिया को भूला दिया जाय ? शरीर पालन जरूरी चीज़ है। साधु भी शरीर पालन के लिए गोचरी करते हैं। गृहस्थों के पीछे संसार लगा हुआ है अतः सांसारिक कर्त्तव्यों को छोडकर पूर्णता प्राप्ति के प्रयत्न में कैसे लग सकते है।

भाइयों ! इस प्रकार शरीर पालन का नाम लेकर अपने असली ध्येय को भुला देना ठीक नहीं है। शरीर का पालन न किया जाय ऐसा कोई नहीं करता। किन्तु जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में देखने की चेष्टा करनी चाहिए। मुख्य को मुख्यता और गौण को गौणता देनी चाहिए।

शरीर में ज्ञानी भी रहते है और अज्ञानी भी। आत्मा परमात्मा को मानने और न मानने वाले सभी शरीर में निवास करते हैं। दोनों प्रकार के लोगों का खान पान भी समान ही है। संसार व्यवहार की बातें भी समान है। फिर ज्ञानी और अज्ञानी में बड़ा अन्तर है। वह अन्तर कौनसा है और किस विशषता के कारण, यह अन्तर है यह समझने की बात हैं। शरीर और इन्द्रियां समान होने पर भी ज्ञानी और अज्ञानी में बड़ा अन्तर है। और वह अन्तर है समझ का। ज्ञानी जगत को दूसरी दृष्टि से देखता है और अज्ञानी दूसरी

दृष्टि से। ज्ञानी संसार में रहकर सब व्यवहारों का पालन करता हुआ भी संसार के पदार्थों में आसक्त नहीं रहाता किन्तु अज्ञानी फँस जाता है। ज्ञानी हेय को हेय और उपादेय को उपादेय मानते हैं किन्तु अज्ञानी उपादेय को हेय और हेय को उपादेय समझता है। समझ का ही फर्क है। साधु भी शरीर पालन करते हैं मगर उसके द्वारा पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही शरीर पालन का नाम लेकर जो लोग असली ध्येय से दूर हटते है वे पूर्ण नहीं बन सकते। पूर्णता उनसे दूर भगती है। समझ प्राप्त हो जाने पर संसार व्यवहार पूर्णता प्राप्त करने में बाधक नहीं हो सकता। ज्ञानी को त्रिलोक का राज्य देने का लोभ बताया जाय तब भी वह अपने ध्येयको नहीं छोड़ता। वह अपने आत्मिक सुख के सामने तीनो लोक के राज्यसुख को भी तुच्छ समझता है। मतलब यह है कि अनन्त या पूर्ण बनने के लिए दिल की भ्रांति मिटाना आवश्यक है।

शास्त्र चर्चा—

राजा श्रेणिक मुनि से कह रहा है कि हे मुने ! आपको यह दुर्लभ मनुष्य शरीर मिलता है, आप इसका अपमान क्यों कर रहे हैं। आपके इन सुन्दर कानों में कुण्डल कैसे अच्छे शोभेंगे। गले में हार कितना सुन्दर मालूम देगा। आप दिव्य शरीर को संयम धारण करके खराब क्यों कर रहे हैं। आप अनाथ है तो मैं आपका नाथ बनता हू। चालिये मेरे राज्य में और भोग भोगिये।

मुनि का शरीर औदारिक शरीर है। उनको बिना मागे और बिना परिश्रम के भोग की सामग्री और सम्पत्ति मिल रही है। आप लोगों की दृष्टि में क्या कोई ऐसा मूर्ख व्यक्ति होगा जो ऐसे सुन्दर चांस (अवसर) को हाथ से खोवेगा। जिन भोगों के लिए मनुष्य लालायित रहता है और रात दिन जिनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न शील रहता हैं वे भोग अनायास ही प्राप्त हो रहे हैं। फिर भी मुनि उन ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इसके विपरीत मुनि राजा से कहते हैं कि हे राजन् ! मनुष्य जन्म की सार्थकता भोग भोगने में नहीं है मगर भोग त्याग करने में है। भागवत में कहा है—

नायं देहो देह भाजां नृलोके, कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।

हे मनुष्यो ! तुम्हारी यह देह भोग भोगने के लिए नहीं है। भोग तो गन्दगी खाकर जीवन बीताने वाले क्षुद्र प्राणी भी भोगते है। वे भी यह दावा करते हैं कि

भोग हमारे लिए हैं । उनके द्वारा भोगे जाने वाले भोगों को तुम अपना समझ कर कैसे भोगते हो ।

कदाचित् बाघ मिलकर एक कॉन्फरन्स करें और इसमें यह प्रस्ताव पास करें, कि मनुष्य हमारे खाने के लिए ही बनाये गये है अतः मनुष्य भक्षण करना हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है तो क्या आप इस प्रस्ताव को मंजूर या पसन्द कर सकते है ? कदापि नहीं । बाघ केवल हिंसा कर सकते है मगर मनुष्य में यह विशेषता है कि वह हिंसा और दया दोनों कर सकता है । दया करने में ही मनुष्य की मनुष्यता है । मनुष्य जीवन भोगों के लिए नहीं है । भोग तो पशु भी भोगते हैं और आनन्द मानते हैं

आप जिस सोने को पहिनकर अभिमान करते हैं क्या उस सोने की बनी जंजीर को कुत्ता नहीं पहिन सकता ? आप जिस मोटर या बग्घी में बैठते हैं क्या उसमें कुत्ता नहीं बैठता ? बड़े २ लार्ड और राजाओं के साथ उनके कुत्ते भी बैठते हैं । क्या इस से जमीन पर चलने वाला मनुष्य नीचे दर्जे का गिना जा सकता है । कभी नहीं । कुत्ता, कुत्ता ही रहेगा और मनुष्य, मनुष्य ही । कुत्ता तो क्या पर देवता भी मनुष्य की समता नहीं कर सकते । जितने भी तीर्थङ्कर या केवल ज्ञानी हुए है वे सब मनुष्य योनि में ही हुए है । मुसलमानों में भी जितने पयगम्बर हुए हैं वे इन्सान ही हुए हैं, फरिश्ते नहीं । मनुष्य जन्म का बड़ा महत्त्व है, वह भोग भोगने में पूरा करने के लिए नहीं है । तो क्या करने के लिए मनुष्य जन्म है ? इसका उत्तर भागवत ने इस प्रकार दिया है ।

तपो दिव्यं पुत्र कालयेन सत्वं सिद्धोयत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यमनन्तम् ॥

ज्ञानी जन कहते हैं, यह मनुष्य शरीर भोग भोगने के लिए नहीं है मगर तप करने के लिए है । केवल अनशन करलेना अर्थात् भूखे रहजाना ही तप नहीं है । अनशन तो तप का भंग है । आजकल कुछ लोग अनशन तप की निन्दा किया करते है । वे कहते हैं कि अनशन कर कर के ही जैन लोग दुर्बल और बुझदिल हो गये हैं । मेरा कहना इस का विपरीत है । मै कहता हूं कि जैनियों में जो शक्ति और तेज विद्यमान है वह अनशन तप के प्रभाव से ही है । इस विषय में अभी अधिक नहीं कहता । अभी तो यह कहता हूं कि भोजन और मैथुन तो पशु पक्षी भी करते हैं । वे तप नहीं सकते । अज्ञान पूर्वक कष्ट सहन करते हैं, यह दूसरी बात है । मगर स्वेच्छा से कष्ट सहन करना और तपस्या करना उनके बूते के बाहर की बात है । क्रियात्मक धर्म मनुष्य ही कर सकता है । देवता भी नहीं कर सकते ।

मुनि भी राजा श्रेणिक से यही बात कह रहे हैं कि हे राजन ! यह दुर्लभ मनुष्य देह भोग भोगने के लिए नहीं है। जो लोग इस देह को भोग भोगनेका साधन मानते हैं वे अनाथ हैं। तू देह को ऐहिक सुख भोगने के लिए साधन समझता है अतः स्वयं अनाथ है। जो खुद अनाथ हो वह दूसरो का क्या नाथ बनेगा।

अप्पणावि अणाहोऽसि, सेणिया ! मगहाहिवा ! ।
अप्पणा अणाहो संतो, कस्स नाहो भविस्ससि ? ॥ १२ ॥

हे मगधाधीप श्रेणिक ! तू स्वयं अनाथ है। स्वयं अनाथ होता हुआ तू किसका नाथ बनेगा ?

'**यह शरीर भोग भोगने के लिए है**' ऐसी भावना आते ही आत्मा गुलाम और अनाथ बन जाता है। भोग की सामग्री इकट्ठा करने के लिए उसे अनेक खटपटें करनी पड़ती है। किसी की खुशामद, किसी की गुलामी, किसी के द्वारा भली बुरी बातें सुनना आदि सब कुछ करना पड़ता है। मनुष्य समझता है कि उसके पास जो ऐश और अशरत के साजो सामान मौजूद है उसके कारण वह नाथ है किन्तु ज्ञानी कहते है कि बात इससे ठीक उल्टी है। जिस साजो सामान के कारण वह अपने को नाथ मानता है उसीके कारण दरअसल में वह अनाथ अथवा गुलाम बना हुआ है। उदाहरणार्थ समझिये कि एक आदमी सोने के कड़े पाहिन कर अभिमान में चकचूर हो रहा है। वह अपने को कड़ों का स्वामी या नाथ मानता है। क्या यहआदमी सचमुच अपने कड़ो का स्वामी है ? ज्ञानी कहते है, नहीं। वह कड़ो का स्वामी नहीं किन्तु कड़ों का गुलाम है। रात को कडे पाहिन कर जब वह सोता है तब उन कड़ों की फिक्र में उसे नींद नही आती है। कहीं कोई चोर आकर हाथ में से कड़े निकाल कर न ले जाय, हाथ ही न काट डाले अथवा इन कड़ों के कारण कहीं मुझे ही न मार डाले। आदि संकल्प विकल्प में नींद हराम हो जाती है। ये कडे उसके लिए हाथों में हथकड़ी और मन में भय के कारण बन गये ! कहिये, वह कड़ों का नाथ है अथवा उन का गुलाम ?

का भय नहीं था। भय की कल्पना भी न थी। किन्तु बहुमूल्य अंगूठी के कारण सेठजी का कलेजा धक् धक् कर रहा था। जरासा कहीं पत्ता हिलता कि सेठजी सशंकित हो जाते, कहीं चोर तो नहीं आ रहा है। अहा! हीरा जटित अंगूठी के नाथ बने हुए सेठजी के दिल की क्या दशा हो रही है, वह या तो वे खुद ही जानते है या कोई ज्ञानी ही जानता है। यदि कोई चोर आही जाय तो मुनि को भागना पड़ेगा या सेठजी को। अंगूठी के चले जाने से सेठजी को ही हाय तोबा करना पड़ेगा। जो नाथ होता है उसके दिल की दशा ऐसी नहीं होती। वह तो अपने निजानन्द की मस्ती में मस्त होकर बिना किसी प्रकार के भय या शंका के बेखटके अपने रास्ते चला जायगा। उसे किस बात का डर हो सकता है।

आप लोग स्त्री को परणे हो या स्त्री आपको परणी है। यदि स्त्री को आप परणे हो तो स्त्री के मर जाने पर आपको दुःखतो नहीं होगा न? यदि आपको स्त्री के मर जाने पर दुःखानुभव हुआ तो आप स्त्री के मालिक नरहे किन्तु उसके गुलाम बन गये। स्त्रियों के लिए भी यही बात है। जब स्त्री किसी को अपना पति मानती है तभी उसके मर जाने पर उसे रंडापा भोगना पड़ता है। यदि स्त्री किसी को पति न मानकर परमत्मा के साथ ही अपना सम्बन्ध जोड़तीतो उसे विधवा होने का दुःख कभी न होता। विधवा होने पर भी अनेक स्त्रियां परमात्मा से सम्बन्ध न जोड़कर सोने के दागिने से नेह करती है। दागिनों के चले जाने पर फिर कष्ट उठाना पड़ता है। मतलब कि संसार के प्राणी एक प्रकार के भ्रम जाल में फँसे हुए हैं। अशरण को शरण और शरण को अशरण मान रहे हैं। राजा श्रेणिक भी अपनी ऋद्धि सिद्धि को शरण रूप मान रहाथा और अपने मन्तव्य के अनुसार मुनि को आमंत्रित कर रहा है कि आपभी मेरे साथ चलिये और संसार के सुखोपभोग करके जीवन को सफल बनाईये।

मुनि ने साफ और सीधा उत्तर दे डाला कि हे राजन्! तू स्वयं अनाथ है वैसी हालत में मेरा नाथ कैसे बन सकता है। मुनि के उत्तर पर हम लोग विचार करें कि क्या राजा के पास कुछ कमी थी जिससे उसको अनाथ कहा गया। उसको किसी बात की कमी न थी। वह विशाल मगध देश का नरपती था। फिर भी मुनि ने उसे अनाथ बताया यह आश्चर्य की बात है। मुनि झूठ भी नहीं बोलते यह हम विश्वास रखने है। वस्तुतः बात यह है कि हमारी नाथ और अनाथ की व्याख्या दूसरी है और मुनि के मन की व्याख्या जुदी ही है। जिस वस्तु को अपना कर मनुष्य उससे चिपक जाता हो, उसके विनष्ट होने पर खेद करता हो और मिल जाने पर खुशी मनाता हो, वह वस्तु उसे अपना गुलाम बना लेती है।

ऐसी वस्तु का वह मनुष्य मालिक नहीं कहा जा सकता। व्यवहार में वह उसका मालिक या नाथ कहा जायगा किन्तु वस्तु स्थिति यह है कि वह दिल मे उस वस्तु का गुलाम बना हुआ है। किसी वस्तु का कोई सच्चा मालिक तो तब गिना जायगा जब वह जिस क्षण चाहे उस क्षण उसका त्याग कर सके। त्याग करने में दुःख न हो किन्तु खुशी हो।

बन्धुओं! जब श्रेणिक जैसा राजा भी अनाथ था तो आप किस गिनती में हैं। आप अपना खयाल कीजिये कि हम भोगों के गुलाम है या मालिक? ससार के पदार्थ किसी को कैसे नाथ बना सकते है। जो जिस वस्तु का मालिक नहीं होता वह यदि उस वस्तू को किसी दूसरे को दे डालता है तो वह चोरी गिनी जाती है। जो स्वयं नाथ नहीं है वह दूसरों को स्वामित्व प्रदान कैसे कर सकता है। क्या यह अन्याय नहीं है कि एक अनाथ दूसरे का नाथ बनने की कोशिश करें।

मीरा को उसकी एक सखी ने कहा कि तेरा सद् भाग्य है जो राणा जैसे पति मिले हैं। रहने को सुन्दर महल और सुख भोगने के लिए विशाल वैभव मिला है। मीरा तू उदास क्यों रहती है। क्या राणा और यह वैभव तुझे अच्छा नहीं लगता? उठ! मै तेरा और राणा का पारस्परिक मेल करादूं। राणा मेरी बात मानते है। सखी का कथन सुनकर मीरा हँसने लगी। सखी कहने लगी कि स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा है कि प्रणय सम्बन्धी अपना विचार वे स्वयं प्रकट नहीं करती। हँसी आदि चेष्टाओं से अपनी भावना बता देती है। मीरा! तेरी हँसी से मुझे मालूम होता है कि तू मेरी बात को स्वीकार करती है। क्यों ठीक है न? मीरा ने यह सोचकर कि कहीं यह सखी मेरे अर्थ का अनर्थ कर डालेगी स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया कि—

ससारी नो सुख काचो परणी रंडावुं पाछो।
तेने घेर केम जइयेरे मोहन प्यारा॥ मुखडा नी प्रीत लागीरे॥

आदमी को अपना पति नहीं बनाती। ऐसा पति क्यों न बनाऊं जो सदा अमर रहे। 'वर वरिये एक साँबरोजी, चूडलो अमर ह्वे जाय'।

मीरा के समान ही फक्कड़ योगी आनन्द घन ने भी कहा है:—

ऋषभ जिनन्द प्रीतम माहरा औरन चाहूं कन्त।
रीझयो साहिब संग न परिहरे भांगे सादि अनन्त॥

केवल स्त्री के साथ ही विवाह नहीं होता किन्तु भगवान् के साथ भी होता है। बूढ़े जवान बालक धनी गरीब सब भगवान् से अपना सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। भगवान् से सम्बन्ध करने में जाति पांति का भी खयाल करने की जरूरत नही होती। यह विवाह अलौकिक है। उस अलौकिक प्रीतम से प्रेम तभी किया जा सकता है जब लौकिक प्रीति से प्रेम छूट जाय। परमात्मा के साथ प्रेम जोड़ने से अखण्ड सौभाग्य प्राप्त हो जाता है। मै तो लग्न जुडवा देने वाला पुरोहित हूं अतः अधिक कुछ न कह कर जिनकी इच्छा हो उनका परमात्मा के साथ सम्बन्ध करादूं। हमने तो खुद परमात्मा से लग्न कर लिया है। मै अपने साधुओं से कहता हूं कि हम लोग परमात्मा से मेल करने के लिए घरवार छोड़ कर निकले हैं अतः कहीं ऐसा न हो कि श्रावकों या क्षेत्र विशेष के मोह में फँस जायँ और अपने मूल उद्देश्य को भुला दें।

आप लोग संसार की जिन वस्तुओं से सगाई करना चाहते हो पहले उन से पूछ तो लो कि हमें दगादेकर बीच में सम्बन्ध विच्छेद तो न कर लोगी? सब से पहले अपने शरीर ही से पूछिये कि जब तक मेरी इच्छा मरने की न हो तब तक तू मुझे छोड़ तो न देगा? हाथ कान नाक आंखे आदि सब अंगों से पूछ देखिये कि मेरी मरजी के बिना तुम बीचही में दगा तो न करोगे? यदि ये सब बीच ही में दगा दे सकते है तो इनके साथ आप कैसे बंध जाते हो क्यों इनसे प्रेम करते हो। भक्त लोग इस बात को समझते है अतः संसारकी किसी भी वस्तु के साथ वे अन्तरंग से प्रेम नहीं जोड़ते। अन्तरंग से प्रेम एक मात्र परमात्मा से ही जोड़ते है, जो कभी जुदा नहीं होता।

आप कहेंगे कि तब हम क्या करें? मेरा उत्तर है कि आप इस शरीर को परमात्मा की सेवा में लगा दीजिये। मैं यह नही कहता कि आप शरीर को नष्ट कर डालिये या आत्म हत्या कर डालिये किन्तु प्रभु की प्राप्ति के लिए इसका उपयोग कीजिये। भोगों में इसका उपयोग मत करिये। परमात्मा से प्रेम ऐसा जोड़िये कि शरीर या प्रेम दोनों में से किसी एक

को छोड़ने का प्रसग आये तो शरीर छोड़ना पसन्द करियेगा मगर प्रभु प्रेम को छोड़ने की तनिक भी इच्छा मत करियेगा। शरीर अनन्तबार ग्रहण किये और छोड़े हैं । परमात्मा का सच्चा प्रेम प्राप्त करने का अवसर विरला ही मिलता है अतः इस शरीर को अनन्त जिनेश्वर के समर्पण कर दो। भगवान् से लग्न सम्बन्ध जोड़ लो । भगवान् से सम्बन्ध जोड़ने की बात कथा द्वारा बताता हूँ।

सुदर्शन चरित्र—

रूप कला यौवन वय सरीखी सत्य शील धर्मवान् ।
सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी महान रे ॥ धन०॥ १७ ॥

सुदर्शन बड़ा हो चुका है। वह सब विद्याओं में प्रवीन होगया है। अब उसके विवाह की बातें चल रही है। पहले नियमसा था कि जब लड़का यौवन प्राप्त होता तभी उसका विवाह किया जाता था। '**काल अकाल चलाई**' अर्थात् काल और अकाल में चलने की हिम्मत जिसमें हो वह विवाह योग्य समझा जाता था। दिन में बालक जहां कहो वहां जा सकता है मगर अकाल अर्थात् आधी रात्रि में स्मशान में जाने के लिए कहा जाय तो वह न जायगा। जब बालक की उम्र इतनी हो जाय कि वह आधीरात में भी स्मशान में अकेला जासके तब वह विवाह योग्य समझा जाता है। जब बालक निर्भय युवक हो जाता है। तब विवाह लायक होता है। आजकल तो जो '**हाऊ**' से भी डरते हैं ऐसे डरपोक बच्चों की भी शादी कर दी जाती है। छोटे उम्र के बच्चों की शादी करना गोया उनके शरीर रूपी भवन की नीव में छेद करना। अज्ञान माता पिता कभी कभी अपनी अज्ञानता से बच्चों के लिए दुश्मन का काम कर डालते है।

एक दिन जिनदास सेठ ने अपने पुत्र सुदर्शन को अपने पास बुलाया और प्रेम से पूछने लगे कि अब तुम्हारी अवस्था विवाह योग्य हो गई है। हमारी इच्छा तुम्हारा सम्बन्ध कर देने की है। पुत्र ! जब तुम इस घर में नहीं जन्मे थे तब यह घर सून सान था। मेरे लिए सारा संसार ही तब शून्य जैसा था। तुम्हारे जन्म लेने से हमारा वह सुनसानपन तो मिट गया है मगर अब हम तुम तुम्हारी शादी करके घर में बहू लाना चाहते है। पौत्र के दर्शन करना चाहते है। हमारे वंश की बेल बढ़ाना चाहते हैं। पुत्र ! इस में तुम्हारी भी शोभा है। तुम हमारी यह इच्छा पूरी करो।

पिता की बात सुनकर सुदर्शन स्वाभाविक रूप से शरमा गया न मालूम विवाह की बात में कौनसा जादू भरा है कि कितना भी उद्दण्ड से उद्दण्ड व्यक्ति होगा तो भी विवाह के नाम से एक बार झेंप जायगा । सुदर्शन तो सुशील और कुलीन था । उसने गरदन नीची कर ली और कहने लगा पिताजी ! यह घर मेरे से पूर्ण नहीं है, मेरे विवाह कर लेने पर पूर्ण बनेगा, ऐसा आपका विचार है, किन्तु क्या मेरे ब्रह्मचारी रहने से घर अपूर्ण और अशोभनीय गिना जायगा ? पूज्य पिताजी ! मेरी समझ के अनुसार तो ब्रह्मचारी का घर विशेष शोभास्पद होगा । जो ब्रह्मचर्य का पालन करके जगत् का निस्तार करते है वे तो महापुरुष गिने जाते हैं । जिनदास ने कहा, प्यारे पुत्र ! यह बात श्रावक होने के कारण मैं भी मंजूर करता हूं कि ब्रह्मचर्य पालना बहुत उत्तम बात है, उसकी बराबरी कौन कर सकता है । मगर कभी कभी ऐसा होता है कि ब्रह्मचर्य का पालन भी नहीं होता और विवाह भी नहीं किया जाता । यह स्थिति अच्छी नहीं है । इससे तो यह बेहतर तरीका है कि एक स्त्री के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ लिया जाय और गृहस्थी के गाड़े को सुन्दर ढंग से चलाया जाय । वे महापुरुष धन्य है जो आजीवन कठोर शील व्रत का पालन करके प्रभुप्राप्ति में अपने आपको खपा देते है । हमारे कुल में नीति विरूद्ध किसी काम का दाग न लगे अतः पंचों की साक्षी से हम तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं । तुम्हारी स्वीकृति के बिना हम नहीं करना चाहते । अतः स्वीकृति देओ । विवाह करना गृहस्थ का धर्म है । विवाह करके स्वदार संतोष व्रत का पालन किया जाता है । स्वस्त्री के सिवाय इतर प्रकार के सब मैथुन का त्याग किया जाता है । विवाह करने वाले को कोई पापी नहीं कहता । विवाह करना मध्यम मार्ग है । पापी तो वह गिना जाता है जो लोगों की दृष्टि में में अपने को अविवाहित दिखाकर अन्य तरीकों से अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है ।

सुदर्शन ने विचार करके उत्तर दिया कि, पिताजी आप मेरा विवाह कर दीजिये । किन्तु मेरे लिए ऐसी कन्या ढूंढिये जो अत्यन्त सुन्दरी न हो किन्तु कुरूप भी न हो, कोमल भी न हो कठोर भी न हो, स्वच्छन्द भी न हो डरपोंक भी न हो । मेरे काम में विघ्न डालने वाली न हो किन्तु जिसको मैं अच्छा मानता होऊं उसे वह भी अच्छा माने । मेरी रूचि के अनुसार उसकी भी रूचि हो । मै उसे देख कर सन्तोष पाऊँ और वह मुझे देख कर संतोष पाये । मैं उसके सिवा दुनियां की सब स्त्रियों को मा बहिन मानूं और वह भी मेरे सिवा सब पुरुषों को पिता भाई माने । मेरे काम वह कर सके और उसके मैं । यदि ऐसी कोई कन्या

मिल जाय तो मैं विवाह कर लूंगा अन्यथा अविवाहित रहना पसन्द करता हू किन्तु पिताजी आपको मै इस बात की खात्री दिलाता हूं कि अविवाहित रह कर मैं अपने कुल में किसी प्रकार का दाग न लगाऊँगा ।

सुदर्शन का उत्तर सुनकर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। कहने लगा, तेरे विचारों से मैं ही प्रसन्न नहीं हूं किन्तु सारा शहर प्रसन्न है । पुत्र ! तुम्हारे लिए वैसी कन्या की खोज में हूं जैसी चाहते हो । सुदर्शन रात दिन इसी उधेड़ बुन में हैं कि ऐसी योग्य कन्या का कहीं से पता लग जाय । अनेक सम्बन्धियों को इसकी सूचना कर रखी है ।

उधर मनोरमा नामकी गुण सम्पन्न कन्या के माता पिता वर की तलाश में रात दिन एक कर रहे थे । मनोरमा सुदर्शन के समान विचार वाली थी । उसके माता पिताने भी उसे विवाह योग्य समझकर पूछा कि पुत्री ! तेरी विवाह किसके साथ किया जाय ।

बन्धुओ ! आजकल मा बाप अपने लड़कों और लड़कियों की इच्छा जाने बिना सौदा तय कर लिया करते है जिससे उनका गृहस्थ जीवन बड़ा दुःखी हो जता है । सभाव और रुचियें फर्क होने के कारण वह जोड़ा सदा असंतुष्ट रहता है और येन केन प्रकारेण जीवन को पूरा कर देते है । पुत्र के समान कन्या से भी वर के सम्बन्ध में राय पूछना उचित है । और यदि किसी कन्या की इच्छा विवाह करने की ही नहीं है तो उसे आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालने देना चाहिए । यह बात नहीं है कि कन्याए आजीवन ब्रह्मचर्य न पाल सकें । भूत कालीन और वर्तमान कालीन ऐसे कई दृष्टान्त मौजुद है कि कुमारिकाओंने जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया था और कर रही है । कन्या की इच्छा के बिना उसका विवाह नहीं किया जाता था ।

भगवान् ऋषभदेव की ब्राह्मी और सुन्दरी नामक दोनों कन्याएं जब विवाह योग्य हुईं तब उन्होंने उनके विवाह करने का विचार ते किया । भगवान के विचार को दोनों कन्याए ताड़ गई और उनके पास उपस्थित होकर कहने लगी कि पूज्य पिताजी आप हमारे विवाह की चिंता मत करिये हम आप की पुत्रियां हैं और सदा पुत्रियां ही रहना चाहती हैं । पुत्रियां मिट कर किसी की स्त्रियां कहलाना हमें पसन्द नहीं है । इस प्रकार दोनों कन्याएं आजीवन ब्रह्मचारिणी ही रहीं । कन्याएं ब्रह्मचारिणी रह कर रहीं, इसका [illegible] है । [illegible] नगर में कार्डिनल मिशन की कुमारी कन्याएं देखी जाती है कि वह लोग उनकी

भूरि प्रशंसा करते हैं। ऐसी कन्याए हमारे समाज में भी होतो क्या हर्ज है? मैं जबरदस्ती ब्रह्मचर्य पळवाने की बात नहीं करता मगर कोई कन्या स्वेच्छा से ऐसा करना चाहे तो उस के लिए यह मार्ग खुला रहना चाहिए।

आखिर सुदर्शन और मनोरमा का सम्बन्ध हो गया। दोनों ने आपसी बातचीत से एक दूसरे को समझ लिया। आजकल विवाह में बड़ी धूमधाम होती है और वृथा खर्चा भी बहुत किया जाता है किन्तु पुराने जमाने में एक ही दिन में सगाई और विवाह हो जाता था। दक्षिण देश में अभी भी यह प्रथा चालू है। यदि कन्या के पिता की सामर्थ्य है तो वह बारातियों को रोकता है और उन्हें जीमाता है अन्यथा वे चुपचाप अपने घर चले जाते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह विधि पूर्वक सम्पन्न होगया। पुत्र का विवाह हो जाने पर माता पिता का क्या कर्त्तव्य है यह बात जिनदास और अर्हदासी के चरित्र से ज्ञात होगा।

प. ट

राजकोट
३०—७—३६ का
व्याख्यान

परमात्म प्रीति

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवड़े बसो, प्यारा प्राण समान ॥ प्रा० ॥

परमात्मा से अखंड प्रेम रखना प्रार्थना का ध्येय है। कहने मात्र से ही यदि परमात्मा से अखण्ड प्रेम हो जाता होता तो अधिक खटपट की जरूरत न रहती। किन्तु ऐसा नहीं होता। परमात्मा से अखण्ड प्रेम करने के लिए सच्ची लगन की जरूरत है। लगन के बिना प्रेम नहीं हो सकता। संसार के पदार्थों के साथ प्रीति करना अन्य बात है और परमात्मा से प्रीति करना अन्य बात है। लौकिक और पारलौकिक प्रीति में बड़ा अन्तर है। लौकिक प्रीति ऊपरी भी हो सकती है। भीतर में कुछ और हो और बाहर कुछ और बात दिखाई जा सकती है और दुनिया को ठगा जा सकता है। दुनिया के लोग प्रीति का ऊपरी रंग ढंग देख कर उसे प्रीति भी मान लेते हैं। मगर परमात्मा के साथ की जाने वाली प्रीति में ढोंग या दिखावा नहीं चल सकता। परमात्मा के साथ कैसी प्रीति होनी चाहिए, और वह किस प्रकार की प्रीति से उत्पन्न होता है, यह बात इस प्रार्थना में बतलाई गई है।

प्रार्थना विषयक विवेचन में चाहे किसी को पुनरुक्ति दोष मालूम देता हो मगर यह मेरा प्रिय विषय होने से दोष की परवाह किये बिना मैं इस पर कहता रहता हूं।

प्रीति सगाई जग मां सौ करे, प्रीति सगाई न कोय।
प्रीति सगाई निरुपाधिक करी, सोपाधिक धन खोय॥

योगी आनन्दघनजी कहते है कि प्रीति करने का रिवाज संसार में बहुत है। सब कोई प्रीति करते हैं और करने के लिए लालायित भी रहते है। मगर इस बात का निर्णय करना कठिन है कि यह प्रीति सोपाधिक है अथवा निरूपाधिक। प्रीति सकाम है या निष्काम। यद्यपि यह निर्णय कठिन है फिर भी सामान्य तौर से कहा जा सकता है कि संसार के पदार्थों के साथ किया जाने वाला प्रेम सोपाधिक होगा और परमात्मा के साथ किया गया निरूपाधिक।

संसार की प्रीति सोपाधिक कैसे है, यह जानने के लिये सब से पहले शरीर पर नजर डालिये। शरीर से मनुष्य प्रेम करता है किन्तु क्या मनुष्यों ने अनेक शरीर अग्नि की भेंट नहीं किये है? जिस शरीर को अपना मानते थे उसे जला देने में अपनापन कहां रहा? वास्तव में जो चीज कभी न कभी जुदा हो सकती है उससे किया हुआ प्रेम वास्तविक नहीं हो सकता। मनुष्य ने अज्ञानवश जड़ शरीर को अपना मान रखा है किन्तु एक दिन ऐसा आता है कि उसे अपना प्राणप्रिय शरीर को छोड़ देना पड़ता है। शरीर की प्रीति सोपाधिक प्रीति हुई। आत्मा के निज गुणों के साथ की प्रीति ही सच्ची और निरूपाधिक प्रीति है क्या आप लोगों कभी इस विषय पर विचार किया है।

लोग अपने कंधों पर अर्थी को उठाकर सैकड़ो मुर्दे अपने हाथों से जला आते है और यह क्षणिक कल्पना भी करते हैं कि एक न एक दिन इस शरीर को छोड़ देना पड़ेगा फिरभी यह सोपाधिक प्रीति नहीं छुटती। किसी मनुष्य के हाथ में सोने की हथकड़ी डाली जाय तो क्या उसे दुःख न होगा? सोने की होने पर भी, है तो हथकड़ी ही और हाथों में होने से बड़ी अड़चन रहती होगी फिर भी सोने के मोह में फँसा हुआ मनुष्य उसे हथकड़ी न मानकर गौरव अनुभव करता है, यह आश्चर्य है। यदि मनुष्य में सच्ची समझ आ जाय तो वह ऐसी वस्तुओं से कभी प्रीति न करे जो बीच ही में दगा देकर अलग हो जाय। प्रीति वही सच्ची है जो सदा कायम रहे। सच्ची और विरूपाधिक प्रीति करने के लिए उपाधि और उपाधि के कारणों को त्यागना पड़ेगा। जिस प्रीति में किसी प्रकार की लाग लपेट हो,

जो प्रीति पराश्रित हो, जिसमें किसी वांछा की पूर्ति की ख्वाहिश हो तथा जो कायमी न हो वह सोपाधिक प्रीति है । किन्तु जो प्रीति स्वाश्रित हो, आत्मिक गुणों के साथ हो अथवा परमात्मा के साथ हो और कभी साथ छोड़ने वाली न हो वह निरुपाधिक प्रीति है । परमात्मा से निरुपाधिक प्रीति करने से आत्मा की अनादि कालीन भूख मिट सकती है ।

शास्त्र चर्चा

निरुपाधिक प्रीति कैसे की जाती है यह बात शास्त्र विवेचन द्वारा बताई जाती है । राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि दोनों वृक्ष के नीचे बैठे हैं । दोनों महाराजा हैं, मगर भिन्न भिन्न प्रकार के । राजा सोपाधिक प्रीति को सच्ची प्रीति मानता है और मुनि निरुपाधिक प्रीति को । जो इष्ट है प्रिय है प्रत्यक्ष आनन्द दायक है उससे प्रेम करना प्रीति है यह बात मानकर ही राजा मुनि से कह रहा है कि आप मेरे साथ चालिए और संसार का मजा लूटिये । मै आपका नाथ होता हूं । किन्तु इससे विपरीत मान्यता वाले अनाथी मुनि उत्तर देते हैं कि राजन् तू भूल में है । जिन पदार्थों के कारण मनुष्य गुलाम बना हुआ रहता है उनके होने से वह नाथ कैसे हो सकता है । तू स्वय अनाथ है, मेरा नाथ कैसे बनेगा ।

मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ । वह सोचने लगा कि मैं इनका नाथ बनने गया तो उल्टा मुझे ही अनाथ बना दिया । आश्चर्य में आकर राजा क्या कहता है यह शास्त्रीय गाथाओं द्वारा सुनिये ।

एवं वुत्तो नरिन्दो सो सुसंभन्तो सुविम्हिओ ।
वयणं अस्सुय पुव्वं साहुणा विम्हयन्नियो ॥१३॥
अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अन्तेउरं च मे ।
भुंजामि माणुसे भोए आणा इस्सरियं च मे ॥ १४ ॥
एरिसे सम्पयग्गम्मि, सव्वकाम समप्पिए ।
कहं अणाहो भवइ, मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥ १५ ॥

प्रार्थना विषयक विवेचन में चाहे किसी को पुनरुक्ति दोष मालूम देता हो मगर यह मेरा प्रिय विषय होने से दोष की परवाह किये बिना मैं इस पर कहता रहता हूं।

प्रीति सगाई जग मां सौ करे, प्रीति सगाई न कोय।
प्रीति सगाई निरुपाधिक करी, सोपाधिक धन खोय ॥

योगी आनन्दघनजी कहते हैं कि प्रीति करने का रिवाज संसार में बहुत है। सब कोई प्रीति करते हैं और करने के लिए लालायित भी रहते हैं। मगर इस बात का निर्णय करना कठिन है कि यह प्रीति सोपाधिक है अथवा निरूपाधिक। प्रीति सकाम है या निष्काम। यद्यपि यह निर्णय कठिन है फिर भी सामान्य तौर से कहा जा सकता है कि संसार के पदार्थों के साथ किया जाने वाला प्रेम सोपाधिक होगा और परमात्मा के साथ किया गया निरूपाधिक।

संसार की प्रीति सोपाधिक कैसे है, यह जानने के लिये सब से पहले शरीर पर नजर डालिये। शरीर से मनुष्य प्रेम करता है किन्तु क्या मनुष्यों ने अनेक शरीर अग्नि की भेंट नहीं किये हैं? जिस शरीर को अपना मानते थे उसे जला देने में अपनापन कहां रहा? वास्तव में जो चीज कभी न कभी जुदा हो सकती है उससे किया हुआ प्रेम वास्तविक नहीं हो सकता। मनुष्य ने अज्ञानवश जड़ शरीर को अपना मान रखा है किन्तु एक दिन ऐसा आता है कि उसे अपना प्राणप्रिय शरीर को छोड़ देना पड़ता है। शरीर की प्रीति सोपाधिक प्रीति हुई। आत्मा के निज गुणों के साथ की प्रीति ही सच्ची और निरूपाधिक प्रीति है क्या आप लोगों कभी इस विषय पर विचार किया है।

लोग अपने कंधों पर अर्थी को उठाकर सैकड़ों मुर्दे अपने हाथों से जला आते हैं और यह क्षणिक कल्पना भी करते हैं कि एक न एक दिन इस शरीर को छोड़ देना पड़ेगा फिरभी यह सोपाधिक प्रीति नहीं छुटती। किसी मनुष्य के हाथ में सोने की हथकड़ी डाली जाय तो क्या उसे दुःख न होगा? सोने की होने पर भी, है तो हथकड़ी ही और हाथों में होने से बड़ी अड़चन रहती होगी फिर भी सोने के मोह में फँसा हुआ मनुष्य उसे हथकड़ी न मानकर गौरव अनुभव करता है, यह आश्चर्य है। यदि मनुष्य में सच्ची समझ आ जाय तो वह ऐसी वस्तुओं से कभी प्रीति न करे जो बीच ही में दगा देकर अलग हो जाय। प्रीति वही सच्ची है जो सदा कायम रहे। सच्ची और विकपाधिक प्रीति करने के लिए उपाधि और उपाधि के कारणों को त्यागना पड़ेगा। जिस प्रीति में किसी प्रकार की लाग लपेट हो,

जो प्रीति पराश्रित हो, जिसमें किसी वांछा की पूर्ति की ख्वाहिश हो तथा जो कायमी न हो वह सोपाधिक प्रीति है । किन्तु जो प्रीति स्वाश्रित हो, आत्मिक गुणों के साथ हो अथवा परमात्मा के साथ हो और कभी साथ छोड़ने वाली न हो वह निरुपाधिक प्रीति है । परमात्मा से निरुपाधिक प्रीति करने से आत्मा की अनादि कालीन भूख मिट सकती है ।

शास्त्र चर्चा

निरुपाधिक प्रीति कैसे की जाती है यह बात शास्त्र विवेचन द्वारा बताई जाती है । राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि दोनों वृक्ष के नीचे बैठे है । दोनों महाराजा हैं, मगर भिन्न भिन्न प्रकार के । राजा सौपाधिक प्रीति को सच्ची प्रीति मानता है और मुनि निरुपाधिक प्रीति को । जो इष्ट है प्रिय है प्रत्यक्ष आनन्द दायक है उससे प्रेम करना प्रीति है यह बात मानकर ही राजा मुनि से कह रहा है कि आप मेरे साथ चालिए और संसार का मजा लूटिये । मै आपका नाथ होता हूं । किन्तु इससे विपरीत मान्यता वाले अनाथी मुनि उत्तर देते है कि राजन् तू भूल में है । जिन पदार्थों के कारण मनुष्य गुलाम बना हुआ रहता है उनके होने से वह नाथ कैसे हो सकता है । तू स्वयं अनाथ है, मेरा नाथ कैसे बनेगा ।

मुनि का उत्तर सुनकर राजा बहुत आश्चर्यान्वित हुआ । वह सोचने लगा कि मैं इनका नाथ बनने गया तो उल्टा मुझे ही अनाथ बना दिया । आश्चर्य मे आकर राजा क्या कहता है यह शास्त्रीय गाथाओं द्वारा सुनिये ।

> एवं वुत्तो नरिन्दो सो सुसंभन्तो सुविम्हिओ ।
> वयणं अस्सुय पुव्वं साहुणा विम्हयनयिो ॥१३॥
> अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुरं अन्तेउरं च मे ।
> भुंजामि माणुसे भोए आणा इस्सरियं च मे ॥ १४॥
> एरिसे सम्पयग्गम्मि, सव्वकाम समप्पिए ।
> कहं अणाहो भवइ, माहु भन्ते ! मुसं वए ॥ १५ ॥

मुनि के द्वारा यह कथन सुनकर कि 'राजन् तू स्वयं अनाथ है मेरा क्या नाथ बनेगा' राजा को रोष आगया । वह क्षत्रिय था । क्षत्रिय अपमान नहीं सहन कर सकता । आज कई लोग मेरे सामने कहते रहते है 'आप मर्जी आये सो कहिये, हमें बुरा नहीं

लगता है'। आपको बुरा नहीं लगता है यह अच्छी बात नहीं है। इसका अर्थ हुआ हमारे कथन का आप पर कुछ भी असर नहीं होता। यह बनियापन है। कहावत है कि—'सिंह को बोल लगता है' अर्थात् सिंह के सामने गर्जना की जाय तो वह सामने होता है।

बड़े घासीरामजी महाराज जो कि मेरे धर्मोपदेशक थे, मेवाड़ के एक ग्राम के रहने वाले थे। मेवाड़ में झाड़ियाँ बहुत हैं। उन्होंने बताया कि—'एक बार मैं करौंदे खाने के लिए जंगल में गया था। वहाँ एक वाघ मेरे सामने दौड़ आया। मुझे तब भय लगा था किन्तु यह सुन रखा था कि—'वाघ की आंखों से आंखे मिलाये रहने से वह आक्रमण नहीं करता' मैं भी उस वाघ की आंखों से अपनी आंखे मिलाकर खड़ा हो गया। सिंह मेरी ओर ताकता रहा और मैं सिंह की ओर। एक पलक भी न मारी। अन्त में वाघ हार कर धीरे २ लौटने लगा। मैंने यह भी सुन रखा था कि सिंह को बोल लगता है और वह ललकारने पर सामना करता है। इस बात की जांच करने के लिए मैंने ललकार लगाई कि तुरंत सिंह वापस मेरा सामना करने के लिए आगया। मैं सोचने लगा कि अब की बार यह मुझे जिन्दा न छोड़ेगा किन्तु मैंने उसी प्रकार उसके समक्ष एक टकी लगा कर देखना जारी रखा जिस प्रकार प्रथम अवसर पर रखा था। अब यदि यह चला जायतो आयन्दा कभी ललकार न किया करूंगा। थोड़ी देर तक मुझ से दृष्टि मिला कर धीरे धीरे सिंह अपने रास्ते खिसक गया।

मतलब यह है कि सिंह को बोल लगाता है। आप लोगों को भी बोल लगना चाहिए मगर आप लोगों ने बनिया वृत्ति धारण कर रखी है अतः वचन नहीं लगता। राजा श्रेणिक क्षत्रिय था। वह यह बात सहन न कर सका कि 'वह अनाथ है'। 'किसी गरीब आदमी को अनाथ कहा जाता तो बात मानी जा सकती थी किन्तु मुझ जैसे ऋद्धि सम्पन्न व्यक्ति को अनाथ कह डालना कहां तक उचित है'। इस प्रकार सोचता हुआ राजा रजोगुण युक्त होगया। 'यदि अनजान में ये मुनि मुझे अनाथ कह देते तो भी मुझे दुःख न होता किन्तु जानते हुए इन्होंने मुझे अनाथ कहा है, यह कैसे सहन करूं'।

शास्त्र राजा के मनोभावों का चित्र खींचता है। शास्त्र प्रति पादित गाथाओं में जो रहस्य भरा है उसका उद्घाटन करने में मैं असमर्थ हूं फिर भी मुझे जो बात मालूम होती है वह आपके समक्ष रखता हूं। गाथाओं पर ध्यान देने से यह प्रकट होता है कि राजा शूर था मगर क्रूर न था। सिंह शूर भी होता है और क्रूर भी। सिंह साधु असाधु का खयाल

किये बिना जो भी सामने पड़ जाता है उस पर हमला कर देता है। उसमें विवेक की कमी होती है। श्रेणिक राजा शूर तो था ही किन्तु विवेकी भी था। यही बात बताने के लिए शास्त्र में कहा है कि राजा संभ्रान्त हुआ फिर भी कोई अनुचित लफ्ज न बोला। सभ्यता पूर्वक अपनी बातको मुनि के समक्ष रखी है। यह अर्थ मै अपनी बुद्ध्यानुसार कर रहा हूं। शास्त्र अनन्त अर्थ वाले हैं अतः कोई महापुरुष दूसरा अर्थ करें तो कर सकते है।

राजा श्रेणिक सुसंभ्रान्त और बहुत विस्मित हुआ। वह विचारने लगा कि 'इस जीवन में मुझे अभी तक किसी ने अनाथ नहीं कहा था। जब मैं घर छोड़ कर चला गया था और विपत्ति में पड़ गया था तब भी मैंने अनाथता का अनुभव नहीं किया था बल्कि अपने पुरुषार्थ से सब विघ्न बाधाओं को पार करके आगे बढ़ता रहा। मुनि के वचन अश्रुत पूर्व हैं। या तो ये मुनि मुझे पूरी तरह नहीं जानते या जैसा कि इनकी आकृति से प्रकट होता है ये महान् ऋद्धि सिद्धि शाली रहे हों, और इनके सामने मै अनाथ जँचता होऊँ'।

मनुष्य जब अपने से छोटी वस्तु को किसी के पास देखता है तब वह उसे तुच्छ मानता है। जिसके पास हीरे के दागिनें हों उसे सोने के जेवर तुच्छ मालूम होते हैं। जिस के पास सोने के दागिनें दिखाई देते है, वह चांदी वाले को और चांदी वाला पीतल वाले को अकिञ्चन तुच्छ मानता है। राजा भी इसी तरह विचार करने लगा कि 'कहीं ये मुनि मुझसे अधिक सम्पत्ति के स्वामी रहे हों और इस कारण मुझे अनाथ कहते हो। इन की शारीरिक ऋद्धि ने तो मुझे आश्चर्य में डालही रखाहै। अतः इनके समक्ष अपनी ऋद्धि का वर्णन कर के इनके भ्रम को मिटा देना चाहिए।

आप लोग समझते होंगे कि हम तत्त्वके जिज्ञासु है किन्तु मै कहता हूं अभी आप में तत्व समझने की योग्यता ही नही है। जो डरपोक है—हां मे हां मिलाता है, खरे खोटे का निर्णय नहीं कर सकता वह तत्व नही समझ सकता। किसी ने किसी को नीच कह दिया वह यदि चुपचाप उसको सहन करले तो इसमें कायरता है। किन्तु नीच कहने वाले से यह पूछना कि भाई! आपने मुझे नीच कैसे कहा, मेरे में नीचता की कौनसी वात दिखाई दी है? यदि वह नीचता का कोई काम बतादे तो उसे दूर करने की कोशिश करना और नीच कहने वाले का उपकार मानना और यदि वह नीचताका कोई काम हमारे द्वारा किया गया न वता सके तो आयन्दा ऐसे शब्द से न पुकारने के लिए हिदायत कर देना, वीरता है। ऐसे साहस वाला व्यक्ति तत्वका जिज्ञासु हो सकता है। कमजोर दिल के आदमी तत्वजिज्ञासु नहीं वन सकते।

राजा श्रेणिक साहसी व्यक्ति था अतः मुनि से कहने लगा कि 'मुनिराज ! मैं मगधेश हूं। मैं मगधेश का नाम मात्र का राजा नहीं हूं किन्तु राजा होने के लिए जिन रत्नों की जरूरत होती है वे अश्व रत्न आदि मेरे यहां है। मेरे यहां हाथी झूम रहे हैं। जितना जनसमुदाय मेरी सेवा करने वाला है उतना शायद ही किसी के हो। मैं अपने घोड़ों का खर्च डाका डाल कर नहीं चलाता हू किन्तु बड़े २ नगरों के आयकर से चलाता हूं। बड़े २ राजाओं ने अपना अहोभाग्य समझ कर अपनी कन्या मुझे समर्पित की है। जो कन्याएं मेरी रानी बनी हैं वे भी अपने भाग्य की सराहना करती हैं कि मुझ जैसा पति उन्हें प्राप्त हुआ है। कई राजा ऋद्धि सम्पन्न होने पर भी रोगी रहते हैं अतः सुखानुभव नहीं कर सकते किन्तु मैं मनुष्य सम्बन्धी भोग भी बखूबी भोगता हूं। कई राजा (गूमड़ा) के समान होते हैं। फोड़ेपर दवाई लगाई जाती है और मक्खियाँ उड़ाई जाती हैं उसी प्रकार उनका राज्यभिषेक करके चँवर उड़ाये जाते हैं। उनकी आज्ञा का कोई पालन नहीं करता। किन्तु मेरी आज्ञा अखण्ड चलती है। किसी की क्या ताकत है कि मेरी आज्ञा न माने। मुझे आपने अनाथ कहा है, इस बात का अचरज तो है ही, साथ में आप जैसे निर्ग्रन्थ मुनि भी झूठ बोलते हैं, इस बात का भी बड़ा ताज्जुब है। जिस प्रकार पृथ्वी द्वारा आधार न देना, सूर्य द्वारा प्रकाश न करना, आश्चर्यजनक है उसी प्रकार मुनि द्वारा झूठ बोलना भी आश्चर्यजनक है। मुनियों के लिये मेरे दिल में यह धारणा है कि वे झूठ नहीं बोला करते किन्तु आप मुझे अनाथ कह कर सरासर झूठ बोल रहे हैं। मुनिवर ! आपको झूठ न बोलना चाहिए'।

राजा ने मुनि से कहा तो यह कि आप झूठ मत बोलिये किन्तु कितनी विवेक भरी वाणी में। 'मा हु भंते ! मुसं वये' 'हे भगवान् ! झूठ मत बोलिए'। वाणी में विवेक की बड़ी जरूरत है। आदमीकी पहिचान उसकी बोलीसे होती है। इसके लिए एककथा प्रसिद्धहै।

राजा भोजके समय में एक अन्धा आदमी था। वह राजासे मिलना चाहता था किन्तु अपने अन्धेपन और फटे पुराने कपड़ो की बात सोचकर चुप रह जाताथा किन्तु उसे राजासे मिलने की अत्युत्कट इच्छा थी अतः रात दिन इसी फिराक में रहताथा कि राजा से भेट हो जाय। एक दिन उसने सुनाकि राजा भोज इसी रास्ते से निकलने वालाहै वह मार्ग में जाकर खड़ा हो गया। अंधे को रास्ते में खड़ा देखकर राजाके सिपाहीने उसे दूर खड़ा होने की बात कही। वह थोड़ा इधर उधर खिसक गया और वापस बीचरास्ते में खड़ा हो गया। जो जो सिपाही उसे हटने के लिए कहता उसके देखते हट जाता और उसके वहां

से चले जाने पर अन्धा अपने स्थान पर आकर खड़ा हो जाता। ऐसा होते २ राजा स्वयं आ गया और अन्धे को देखकर पूछा कि कहो अन्धराज ! मार्ग में कैसे खड़े हो ? अन्धे ने कहा महाराज ! आपकी मुलाकात के लिए खड़ा हूं। राजाने पूछा कि क्या तुम्हें दिखाई देताहै जिससे तुमने मुझे पहिचान लिया। अन्धेने कहा, हजूर ! जरा भी नहीं दिखाई देता। राजा ने पुनः प्रश्न किया, तब मुझे तुमने कैसे पहिचान लिया कि मैं ही राजा हूं। अन्धेने कहा 'आपकी बोली से जान लिया कि आप ही राजा होंगे। आपके पहले अनेक सिपाहियों ने मुझसे रास्ते में से हट जाके लिए **'चल बे अन्धे रास्ते में से हट जा'** शब्द कहे थे किन्तु जब आपके मुख से **'अन्धराज'** शब्द सुना तो मैंने अन्दाजा लगा लिया कि ये राजा ही होंगे। बड़े आदमी बड़े आदरवाची शब्दों का प्रयोग किया करते हैं। दूसरों के लिए किये गये शब्द प्रयोग से प्रयोग करने वाले के छोटे बड़े दिल का पता लग जाता है। राजाने उसकी इच्छा पूरी करके उसे विदाई दे दी।

राजा भोजने अन्धे को अन्धा तो कहा मगर कितने विवेकभाव आदर के साथ कहा। यही बात श्रेणिक के लिए भी लागू होती है। झूठ बोलने से रोकने के लिए कितने आदर वाची संबोधन से संबोधन किया। कहावत है कि— **'वचने का दारिद्रता'** अगर देने को कुछ न हो तो मीठे शब्द बोलने में क्यों कमी रखते हो।

तुलसी मीठे वचन तें, सुख उपजे चहुं ओर।
वशीकरण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर॥

फारसी में भी कहा है—

बन के अजीज़ रहना प्यारी जबां दहन में।

हे प्यारी जीभ ! अन्य कोई मित्र हो या न हो मगर तू यदि मेरा मित्र बनकर रही तो शेष लोग अपने आप ही मेरे मित्र बन जायंगे।

आप लोग दूसरे लोगों को अपना मित्र बनाना चाहते हो मगर पहले अपनी जीह्वा को अपना मित्र बनाइये। उसे काबू में करिये। आपकी जीह्वा को अपना मित्र बनाइये। उसे काबू में करिये। कहीं आपकी जीह्वा आपके लिए दुश्मन का काम तो नहीं कर रही है इस बात का पूरा ध्यान रखिये। आप लोग साधुओं के व्याख्यान सुनते हैं फिर भी आपकी जबान से यदि जहर के समान बातें निकलें तो इस में आपका दोष है या हमारा ? आपकी जीह्वा से अमृत क्यों नहीं निकलता। मान लीजिये, आपने किसी

पूर्वज ने स्वप्न में आपको यह बताया कि आपके घर में एक तरफ सोना और दूसरी तरफ कोयला गड़ा है। देवयोग से आपके हाथ में कुदाला भी आगया। आप सोने की तरफ खुदाई करेंगे या कोयले की तरफ? यदि कोयले की तरफ खुदाई करेंगे तो कोयला हाथ पड़ेगा और हाथ काले होंगे सो अधिकाई में। हाथ मुँह में लगेंगे सो मुख भी काला होगा। आप कहेंगे हम सोना कहां छोड़ने वाले हैं, हम इतने मूर्ख नहीं है जो सोने को छोड़ कर कोयले की तरफ नजर करें। बन्धुओं! यही बात मैं भी आप से कहना चाहता हूं कि आप अपनी जबान से हित, मित और मनोहारी शब्दों का उच्चारण करके सोना निकालिये। अहितकारी और दुःख पहुँचाने वाले लब्जों का उच्चारण करके कोयला निकाल कर अपना मुख काला मत करिये।

बहिनों को भी मेरी खास आग्रह पूर्वक सूचना है कि वे गन्दे और भद्दे शब्द अपनी पवित्र जबान से न निकालें। कई स्त्रियाँ अपने लड़के को 'खोजगया' लक्कड़ में-गया' आदि शब्दों से पुकारती है। यदि लड़के का खोज चला गया या वह कक्कड में पहुँच गया तो तुम्हारा क्या हाल होगा, यह तो सोचो। यह सब अज्ञानता का चिह्न है। आप लोग साधुओं की सत्संग करती है फिर भी ऐसे वचन बोलती है, यह जानकर दुःख होता है। भोजने अंधे को अन्धराज कहा था अतः वह राजा माना गया किन्तु टुच्चे सिपाहियों ने '**ओ बे अन्धे**' कहा था अतः सिपाही ही समझे गये। जिसके पास जैसी वस्तु होती है वह दूसरों को वही देगा अन्य वस्तु कहां से लायगा। एक कवि कहता है—

ददतु ददतु गालीर्गालिवन्तो भवन्तः;
वयमिह तदभावात् गालिदाने ऽसमर्थाः।
जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमानं,
नहि शशक विषाणं कोऽपि कस्मै ददाति॥

अर्थ—आप हमें गाली दीजिये, क्योंकि आप गाली वाले हैं। हमारे पास गाली नहीं है अतः हम आपको गाली देने में असमर्थ है यह बात जगत् में विदित है कि जो वस्तु जिसके पास होती है दूसरों को वही वस्तु देता है। खरगोश का सींग कोई किसी को नहीं देता क्योंकि उसके होता ही नहीं है।

जापे जैसी वस्तु है वैसी दे दिखलाय।
वाको बुरा न मानिये वो लेन कहाँ से जाय॥

कोई मुझसे आकर कहे कि अमुक आदमी गालियां दे रहा था तुम बदले में गालियां क्यों नहीं देते तो मैं उस भाई से यही कहूंगा कि मेरे हितैषी दोस्त ! मैं गालियाँ देने में असमर्थ हूं मेरे दिमागरूपी खजाने में गालियों का स्टाक नहीं है। जो चीज मेरे पास नहीं है वह मैं कहां से और कैसे दूं ? कोई खरगोश से कहे कि तू तेरा सींग मुझे दे दे। वह बेचारा सींग कहां से दे ? उसके सींग प्रकृति ने पैदा ही नहीं किये। गधे से कहा जाय कि गाय जैसे सींग मारती है वैसे तू भी मारा करतो वह कहां से मारेगा ? जिसके मगज में गालियां या दुष्ट शब्द भरे पड़े हैं वही अनुकूल संयोग मिलने पर अपना स्टाक खाली करता है किन्तु जिस सत्पुरुष के मन में बुराई का अंश भी नहीं है वह गालियां कहां से देगा ? मतलब कि जिसके संस्कार अच्छे हैं वे लोग वाणी पर नियन्त्रण रखते हैं।

आप लोग हमारी संगति करते हो फिर गालियां बोलो यह अच्छी बात नहीं है। बचपन से आप लोग साधुओं की सेवा करते हैं। आपने क्या कभी साधुओं के मुख से गाली सुनी हैं ? फिर आप कहांसे सीख गये। साधुओंके संस्कार आपमें क्यों नहीं आपाये।

वाणी पर काबू रखने के विषय में पूज्यश्री श्रीलालजी महाराज एक दृष्टान्त दिया करते थे। वह यह है। एक लखारा गदही पर चूड़ियां लादकर हाट में ले जाया करता था। आजकल तो अनेक प्रकार की रबर और कांच की चूड़ियां चली है और इस प्रकार बहनों के हाथ भी विदेशी माल ने पकड़ रखे है किन्तु पहले जमाने में लाख की चूड़ियां पहनती थीं। जब गदही धीरे चलती और हाट पहुँचने में देरी मालूम देती तब वह लखारा उसे जल्दी चलाने के लिए कहता 'चल मेरी मा, चल मेरी बहिन, चल मेरी काकी आदि' लखारे के ये संबोधन सुनकर राहगीर लोग हंसने लगते। एक श्रोताने पूछा कि ओ लखारे। तुम गदही को मा बहिन और काकी कह कर कैसे पुकारते हो ? उसने खुलासा किया कि 'भाई ! यदि मैं गाली देकर गदही हांका करूं तो मुझे गाली देने की आदत हो जायगी। तुम जानते हो कि मेरा धधा चूड़ियां पहनाने का है। चूड़ियां पहिनने के लिए स्त्रियां ही आया करती हैं। यदि मेरे मुख से मा बहिन आदि शब्द न निकाल कर अन्य बेजा शब्द निकला करें तो आनेवाली स्त्रियां मेरे यहां आना छोड़ देंगी और इस प्रकार मैं बेरोजगार हो जाऊंगा।

बहुत से लोग गाय, घोड़े, बैल, ऊंट आदि को हांकते वक्त बड़ी बुरी गालियां निकालते हैं। यह बात गालियां बोलने वालों की जड़ता सूचित करतीहै। पशु गालियों का अर्थ नहीं समझ सकते। बोलने वाले अपनी मुराद पूरी करते हैं। वाणी से मनुष्य की

संस्कारिता प्रकट होती है अतः अच्छी वाणी बोलनी चाहिए। आप लोग श्रावक और व्यापारी हो अतः ध्यान रखो कि कहीं आपकी वाणीसे आपके श्रावकत्व और व्यापारीपन में धक्का तो नहीं लग रहा है।

श्रेणिक राजाने मुनि को झूठ न बोलने के लिए उपालम्भ तो दिया है मगर उपालम्भ देने के लिए जिस सभ्यता, नम्रता और विवेक का प्रयोग किया है उसपर खयाल कीजिए।

सुदर्शन चरित्र

> रूप कला यौवन वय सरस्वी सत्य शील धर्मवान्।
> सुर्दशन् और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी महान् रे धन ॥१७॥
> श्रावक व्रत दोनो ने लीना पोषध और पचखान।
> शुद्ध भाव से धर्म अराधे, अढलक देवे दान रे धन ॥१८॥

सुर्दशन और मनोरमा का विवाह संपन्न हो चुका है। आज विवाह प्रथा को महज एक सामान्य वस्तु माना जाता है किन्तु विचार करने से ज्ञात होता है कि इसके पीछे गहरे तत्व छिपे हुए है। यह प्रथा भगवान ऋषभदेव ने चालू की है। मनुष्यों को मर्यादित और समाज में शान्ति रखने के लिए ही भगवान ने यह रिवाज दाखिल किया कि सब कोई अपना जोड़ा चुन ले और जीवन पर्यन्त उसके साथ अपना निर्वाह करे। सब से पहला विवाह स्वयं भगवान ऋषभदेवने सुमंगला के साथ करके यह परम्परा जारी की है।

यह बात समझने की है। विवाह करने का अधिकार किसको है और किसके साथ है? आजकल रुपयों का रुपयों के साथ विवाह होता है। रूप; शील और गुण में जो समान नहीं होते है उनको केवल धन देखकर जोड़ दिया जाता है। कुजोड़ या बेजोड़ विवाह करके प्रेम की कैसे आशा रखी जा सकती है। प्रेम की जड़ में पहले ही आग लगादी जाती है। पुरुष मन माने कार्य करने लगे और कहने लगे कि पुरुषों को सब कुछ करने का अधिकार है तो यह पुरुषों की ज्यादती है। पुरुषों ने ही लग्न की मर्यादा को भंग किया है। शास्त्र कहता है कि जो मर्यादा का पालन करता है वह पुरुषोत्तम है। जो मर्यादा का लोप करता है वह अधम पुरुष है विवाह में योग्य जोड़ा होना चाहिए। आजकल तो कहा जाता है कि 'लाकड़ा में माकड़ा जोड़ना है, कारीगर जैसे चाहे जोड़दे'।

वर और कन्याओं का विवाह जोड़ने के लिए रुपयों की मांग करना कितना भद्दा और अनुचित रिवाज है यह लग्न है या विक्रय चाहे विलायत जाने के नाम पर चाहे पढ़ाई के नाम पर, रुपये मांगना वर विक्रय ही गिना जायगा। क्या जाति वाले इन बातों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकते। लड़की वाला खुश होकर अपनी कन्या को कुछ भी दे यह बात दूसरी है मगर पहले से ही सौदा तै करना, बुरी बात है। इस प्रकार के सौदे में संतान के प्रति करुणा बुद्धि नहीं रह पाती। मुख्य बात लेन देन हो जाती है। रूप गुण और शील आदि गौण बन जाते हैं। भगवान् ने दूसरे व्रत में 'कन्नालिए' अर्थात् कन्या सम्बन्धी झूठ बोलने का निषेध किया है। इस में पुरुषों को पहले क्यों नहीं लिया, स्त्रियों को क्यों लिया गया? इसका कारण यह है कि नारी जाति माता का रूप लेती है। उसका आदर होना चाहिए।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

जहां नारियों का आदर सत्कार होता है वहा देवता रमण करते है। लक्ष्मी वहीं रहती है और वहीं आनन्द भी।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो गया है। विवाह इस लिए होता है कि जो काम स्त्री या पुरुष अकेले नही कर सकते वह दोनों मिलकर करें। कोई भाई यह पूछे कि ऐसा कौनसा काम है जो स्त्री या पुरुष अकेले नहीं कर सकते तो उसके लिए दृष्टान्त के रूप में सब से प्रथम काम प्रश्नकर्त्ता की उत्पत्ति का ही रखता हूं। क्या प्रश्न करने वाला भाई अकेली स्त्री या अकेले पुरुष से उत्पन्न हुआ है? कदापि नहीं। जगत् की भावी पीढ़ी का निर्माण स्त्री पुरुष के जोड़े से ही होता है। प्रकृति ने बड़ी खूबी के साथ स्त्री पुरुष को जोड़ा है। स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक है। दोनों मिलकर ही संसार चला सकते है।

यदि स्त्री और पुरुष के स्वभाव में मेल न हो तो घर अखाड़ा बन जाता है। एक पुरुष बड़ा उदार है। किसी को अपने घर पर भोजन कराने के लिए ले आता है। यदि स्त्री भी उदार और सेवा भावी हो तब तो ठीक है नहीं तो वह कर्कशा नारी दूसरे पुरुष को देखते ही कहने लगेगी कि मैं क्या तुम्हारी दासी हूं जो तुम्हारे आलतू फालतू लोगों के लिए रोटियाँ बनाती रहूं ऐसे पुरुष को अपने दोस्तों या दया पात्र लोगों के लिए बाजार की [illegible] करनी पड़ेगी। बहुत सी स्त्रियां इतनी भली होती है कि उन्हें दूसरों को खिलाने में [illegible] आता है। इसी प्रकार स्त्री अच्छी हो और पुरुष [illegible] हो तो भी काम नहीं चलता।

जैन रामायण में इस विषय की एक कथा है। राम लक्ष्मण और सीता वन में जा रहे थे। सीता ने लक्ष्मण से कहा कि लक्ष्मण मेरा मुँह कैसा हो रहा है, देखते हो। लक्ष्मण ने कहा जीहां देखता हूं आप को प्यास लग रही है। इतने में एक घर दिखाई दिया। राम ने कहा, यहां तलाश करो, पानी मिल जायगा। तीनों उस घर में गये। यह घर ब्राह्मण का था। उस समय ब्राह्मण कहीं बाहर गया हुआ था। ब्राह्मणी घर में थी। वह तीनों को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई। उसे इतना आनन्द मानों घर में देवता आगये हों ब्राह्मणीने एक चटाई डालदी और बैठनेके लिए प्रार्थनाकी। मीठी बातोंसे ही ब्राह्मणीने उनकी प्यास बुझादी। फिर ठंडा जल भर कर लाई और सब को पिला दिया। सब बातें कर रहे थे कि इतने में ब्राह्मण देवता बाहर से घर आ गये। तीनों को देखकर ब्राह्मण बहुत क्रुद्ध हुआ। तीनों के कपड़े धूल में भरे हुए थे ही। उसने सोचा न मालूम ये कौन है। ब्राह्मणी से कहने लगा 'न मालूम किन किन को घर में बुलाकर बैठा लेती है। मैं अनेक बार हिदायत कर चुका हूँ मगर तू ध्यान नहीं देती। आज इसके लिए मैं तुझे दण्ड दूँगा' यह कहकर ब्राह्मण चूल्हे में से जलती हुई लकड़ी लाया और उससे ब्राह्मणी को जलाने लगा। ब्राह्मणी सीता के पीछे पीछे छिपने लगी और बचाव के लिए प्रार्थना करने लगी। रामचन्द्र ने ब्राह्मण से कहा कि भाई यह क्या करता है। मगर वह लातों का आदमी बातों से कैसे मान सकता था। जब वह न माना और ब्राह्मणी को जलाने के लिए भागता ही रहा तब लक्ष्मण की आंखें लाल हो गईं और उन्होंने उसकी टांग पकड़ कर आकाश में फेंक दिया। राम कहने लगे, लक्ष्मण! यह ठीक नहीं किया। हम लोगों ने इस के घर आकर सत्कार पाया है और पानी पिया है। लक्ष्मण ने कहा, फेंक दिया है मगर वापस सभाल लूंगा, मरने न दूंगा। ज्योंही वह ब्राह्मण नीचे गिरा लक्ष्मण ने झेल लिया। उनकी शक्ति देखकर ब्राह्मण का दिमाग ठंडा हुआ।

कहने का भावार्थ यह है कि स्त्री भली हो और पुरुष नीच होतो भी काम नहीं चलता। राम जैसों का भी उस घर में अपमान हो जाता है। अतः विवाह में जोड़ी समान स्वभाव और गुणवाली होनी चाहिए। किन्तु पैसे के लोभी दलाल लोग जोड़ी नहीं देखते। वे तो अपनी दलाली सीधी करने के लिए मनमानी झूठी सच्ची बातें भिड़ाकर काम को पार लगा देते हैं। फिर बींद जानों या बींदनी। पूज्यश्री श्रीलालजी म० एक गांव में पधारे थे, जहां एक बूढ़ा शादी करना चाहता था। पूज्यश्री ने उस बूढ़े को समझाकर शादी न करने की प्रतिज्ञा दिलादी। इस बात से दलाल लोग बहुत नाराज हुए और कहने लगे कि महाराज हमारी चालीस पचास हजार की रोजी पर आपने लात मार

दी। बन्धुओं! इसमें महाराज का क्या दोष था। बुरे काम करने वाले संतों पर भी दोषारोपण कर देते हैं।

सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी बड़ी योग्य थी। दोनों का स्वभाव रूप गुण के आदि समान थे। दोनों के धार्मिक खयालात भी समान थे। जहां पति पत्नि में धार्मिक विश्वास में अन्तर होता है वहां सच्चा प्रेम नहीं हो सकता। वह प्रेम शारीरिक होगा आत्मिक नहीं। आत्मिक प्रेममें भावों और विश्वासों की एकता अनिवार्य है। आनन्द श्रावक ने भगवान महावीर से व्रत अंगीकार किये और घर आकर अपनी स्त्री शिवानंदा से कहा कि तुम भी जाओ और व्रत अंगीकार करलो। शिवानंदा गई और व्रत लेलिए। इस प्रकार जहां आपस में प्रेम और धर्म की साम्यता होती है वही आनन्द होता है। सुदर्शन मनोरमा की जोड़ी भी ऐसी ही है। आगे क्या होता है सो यथावसर बताया जायगा।

राजकोट
३१—७—३६ का
व्याख्यान